सेवाधर्म और सेवामार्ग

रचयिता—

श्री पण्डित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल
साहित्य-रत्न, एम. ए., एम. एल. ए.

प्रकाशक
महेन्द्र, सञ्चालक
साहित्य-रत्न-भण्डार,
सिविल लाइन्स, आगरा।

द्वितीय संस्करण	गङ्गा-दशहरा १९९६ मई १९३९	मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक
साहित्य प्रेस,
सिविल लाइन्स, आगरा।

दो शब्द

मैं पढ़ता था जब पालीवालजी की पुस्तक 'सेवामार्ग' प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक का मेरे हृदय पर क्रियात्मक प्रभाव पड़ा और मैंने अपने को उसका ऋणी पाया। पुस्तक का पहला संस्करण तभी समाप्त हो गया था। दूसरे संस्करण के लिए मैंने पालीवालजी से बार-बार अनुरोध किया—पर उन्हें उसे दुबारा लिखने का अवसर वर्षों तक न मिल सका। १६३४ में मेरे विशेष अनुरोध से आपने पुस्तक को पूरा कर दिया और प्रकाशित करने का मुझे अधिकार भी दे दिया। परन्तु अपनी निजी कठिनाइयों के कारण मैं बहुत चाहते हुए भी १६३८ से पहले उसे प्रकाशित न कर सका। एक ही वर्ष में पुस्तक का पहला संस्करण समाप्त हो गया—इससे उसकी उपयोगिता का अनुमान लगाया जा सकता है। युक्तप्रान्त की सरकार ने इसे अपने समस्त पुस्तकालयों में रखना स्वीकार किया है। दूसरे प्रान्त तथा अनेक देशी रियासतें भी इस विषय पर विचार कर रही हैं।

सेवा समितियों के स्वयंसेवकों, कालेज स्कूल के विद्यार्थियों और अन्य सेवाभाव से काम करने वाले व्यक्तियों के लिए इस पुस्तक में अमूल्य उपदेश हैं। ग्रामसुधार का काम करने वालों के लिए तो यह पुस्तक अनिवार्य है। यदि वास्तव में इन लोगों ने इस पुस्तक से लाभ उठाया तो देश का कल्याण होगा—इसमें सन्देह नहीं।

—महेन्द्र

आत्म-निवेदन

सेवा-धर्म मेरी पैत्रिक सम्पत्ति है। मेरे पूज्य पिता पण्डित ब्रजलाल पालीवाल का जीवन सेवामय था। उनके जीवन का अधिकाँश भाग दूसरों की निःस्वार्थ सेवा में ही बीता। गौओं और गरीब किसानों की रक्षार्थ वे अपना समय और अपनी सम्पत्ति लगाते तथा शक्तिशाली भूस्वामिओं से लड़ाई मोल ले कर अपना जीवन खतरे में डालते थे। भूखों को अन्न तथा नङ्गों को वस्त्र बाँटते थे। सब की चिकित्सा मुफ्त करते थे। वैद्यक करते हुए भी उन्होंने जवीन भर में फीस की पाई तक नहीं ली और न कभी किसी को दवा ही बेची। अमीरों को नुस्खा लिख देते थे, गरीबों को दवा भी अपने पास से देते थे। गरीबों का इलाज करने के लिए दस-दस बारह-बारह मील तक पैदल जाते थे, और अमीरों का इलाज करने के लिए उनकी सवारी से काम लेते। पीड़ितों की सहायता करने की उनकी प्रवृत्ति इतनी प्रबल थी कि चालीसा के अकाल में उन्होंने पितामह की अनुपस्थिति में खत्ती खोल कर भूख से तड़पने वाले गाँव वालों को बाँट दी। अन्न, वस्त्र, दवा आदि से सुपात्रों की सहायता करने के लिए वे अपनी चिकित्साधीन अमीरों से दान लेते और घर के कपड़े वर्त्तन वगैरः उठा ले जाते।

बचपन में रामचरितमानस का मेरे हृदय पर बड़ा प्रभाव

पड़ा। रामायण में जब मैं यह पढ़ता था कि राम और लक्ष्मण गुरुजनों से पहले उठकर उनको यथा योग्य प्रणाम करते और फिर भाँति-भाँति से उनकी सेवा करते थे और अपने इन्हीं गुणों के कारण वे उनके परम प्रिय बन गये, तब मैं पुलकित हो उठता और निश्चय करता कि मैं भी इन महान् पुरुषों के पद चिह्नों पर चलूँगा। और अपने इस निश्चय के अनुसार मैं अपने चरित्र और अपनी सेवाओं द्वारा अपने गुरुजनों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता। आज भी यह स्मरण करके मुझे अत्यन्त हर्ष और सन्तोष होता है कि मैं सदैव अपने पूज्यों का प्रियपात्र रहा।

स्वर्गीय पिताजी ने मेरी इस सुप्रवृत्ति को और भी पुष्ट किया। वे कहते "तुम अँग्रेजी पढ़कर क्या करोगे? व्यायाम करो और हनूमान बनकर सबलों से निबलों की रक्षा करो!" मैंने न तो अंग्रेजी पढ़ना ही छोड़ा और न हनूमान ही बन सका परन्तु सबलों के अन्याय से पीड़ित निबलों की सेवा-सहायता करना मेरे जीवन का लक्ष्य बन गया।

सम्भवतः सन् १९१७ की बात है। उन दिनों मैं आगरा कालेज में पढ़ता था। उन्हीं दिनों आगरा में प्लेग का प्रकोप हुआ। पण्डित ठाकुरप्रसाद शर्मा एम०ए०, एल-एल०बी० वर्त्तमान एग्जीक्यूटिव आफीसर मेरे सहपाठी थे। उनके तथा श्रीयुत निरञ्जनलाल पोद्दार प्रभृति मित्रों के सहयोग से एक सेवा-समिति स्थापित हो चुकी थी। जिसने प्रकाशन कार्य में सब से पहले मेरा "विद्या पढ़ो" शीर्षक ट्रैक्ट प्रकाशित किया था। कुछ रात्रि-पाठशालाएँ कायम की थीं तथा पुस्तकालय, वाचनालय और अध्ययन मण्डल भी स्थापित किये थे। प्लेग में भी इस समिति के सदस्यों ने यथाशक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन किया।

इस प्रकार कई सुहृद-मित्रों के चिरस्मरणीय सम्पर्क और सहयोग से मुझे पहले-पहल संगठित रूप से सेवा-कार्य करने का

सुअवसर मिला और मिली सेवा-कार्य की व्यावहारिक शिक्षा तथा मेरी सेवा-सम्बन्धिनी सुभावनाओं को स्थायी शक्ति।

इन्हीं सुभावनाओं से प्रेरित होकर मैंने संवत १९७४ में लाहौर के फोरमैन क्रिश्चिन कालेज के प्रधानाध्यक्ष फ्लेमिङ्ग साहब की "Suggestions for Social Helpfulness" नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद किया जिसे साहित्य-रत्न-कार्यालय ने "सेवा-मार्ग" के नाम से प्रकाशित किया। समालोचकों ने सोत्साह उसका स्वागत किया। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में ही नहीं, "लीडर" और "माडर्नरिव्यू" आदि में भी उसकी पूरी-पूरी प्रशंसा की गई। सेवा-धर्म की दृष्टि से भारत में पिछली दो दशाब्दियों में, दो शताब्दियों के बराबर काम हुआ है। फलतः १९३० में मैं यह अनुभव करने लगा कि इस समय सेवा का सन्मार्ग बताने तथा सुझाने वाली पुस्तक की परम आवश्यकता है। फ्लेमिङ्ग साहब की पुरानी पुस्तक से अब काम नहीं चल सकता—उसकी सामायिकता और उपयोगिता बहुत कुछ बढ़ाई जा सकती है।

संयोग से इन्हीं दिनों श्रीयुत महेन्द्र जी से मेरी बातें हुईं। श्रीयुत महेन्द्र "सेवा-मार्ग" के परम प्रशंसकों में से हैं। "सेवा-मार्ग" के स्वर्ण-लेखनी-समिति वाले अध्यायों को पढ़कर उन्होंने मुझे जो पत्र लिखा था उसीसे पहले-पहल मेरा और उनका परिचय हुआ था। उन्होंने मुझसे कहा कि यदि मैं सेवा-मार्ग को फिर लिख दूं तो वे उसका नवीन संस्करण प्रकाशित कर देंगे। मैंने उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जिसके फल स्वरूप सन् १९३० के अगस्त मास में, झाँसी जेल में मैंने सेवा-मार्ग को स्वतंत्र रूप से लिखना शुरू कर दिया! प्रस्तुत सेवा-मार्ग का बीमारों की सेवा वाला अध्याय वहीं लिखा गया है।

उसके बाद झंझटों के झंझावात ने कुछ समय के लिए तो

सचमुच ही मेरी साहित्यिक मृत्यु कर दी। कई साल तक कुछ भी न किया जा सका। सन् १९३४ जनवरी-फरवरी में कई साल बाद जब कुछ सांस लेने का अवसर मिला तब उसी का लाभ उठा कर इतने दिनों के अध्ययन के फल "सेवा-मार्ग" को पूरा किया।

प्रस्तुत पुस्तक मूल पुस्तक से बिलकुल स्वतंत्र है। स्वाध्याय द्वारा सेवा वाला अध्याय एक प्रकार से बिलकुल नया है। गाँवों की सेवा वाले अध्याय तो बिलकुल नये हैं।

जल्दी में निश्चय ही अनेक त्रुटियाँ रह गई होंगी। कुछ त्रुटियों को तो मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ। परन्तु मुझे आशा और विश्वास है कि पुस्तक जैसी है वैसी ही उस उद्देश्य को पूरा करने में बेकार नहीं साबित होगी जिसके लिए वह लिखी गई है।

ग्राम सुधार की आवश्यकता का अनुभव कर और उसकी विशेष चर्चा देख कर गाँव वालों की सेवा और सेवकों की शिक्षा वाले अध्याय विशेष रूप से लिखे गये हैं। मेरा विश्वास है कि गाँवों में काम करने वाले व्यक्तियों के लिये यह पुस्तक उपयोगी साबित होगी।

निवेदक
श्रीकृष्णदत्त पालीवाल

विषय-सूची

BIBLIOGRAPHY.

इस पुस्तक के लिखने में निम्नलिखित पत्रों तथा पुस्तकों से सहायता ली गई है—

Suggestion for Social Helpfulness by Dr. Flemings.

Report of the Royal commission on Agriculture.

Evidence taken in the United Provinces and in the Punjab by the above commission.

Village uplift in India by F. L. Brayne, M. C., I. C. S.

Review of Rural welfare Activities in India 1932 by C. F. Strickland C. I. E.

Village Schools in India by Mason Olcatt. Ph. D.

Experiments in Rural Education by A. B. Van Doren.

Social Efficiency by S. N. Pharwani M. A.

Municipal Efficiency by the same author.

Home course in Personal Efficiency by Harrington Emerson.

The Equipment & the Social worker by Elizabath Macadon M. A.

Fundamentals of National Progress by J. N. Gupta. M. A., I. C. S.

Literary Digest, New york. U. S. A.

Modern Review, Calcutta.

तथा कई हिन्दी और अंग्रेजी के मासिक, साप्ताहिक और निक पत्र।

सेवकों की शिक्षा

सेवा की आवश्यकता को अनुभव करते ही सेवकों की शिक्षा का प्रश्न उठ खड़ा होता है। वास्तव में, दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कृत में एक श्लोक है, जिसका अर्थ यह है कि सेवा-कार्य इतना गहन है कि योगियों के लिए भी आसान नहीं—उनके लिए भी वहाँ तक पहुँचना कठिन है। परन्तु सेवा-कार्य में केवल चित्त की वृत्तियों के निरोध से तथा नम्रता, अहंभाव-हीनता, स्वार्थशून्यता, सुशीलता, धैर्य, कष्ट-सहिष्णुता आदि गुणों से ही काम नहीं चल सकता; उसके लिए विशेष शास्त्रों के अध्ययन और विशेष प्रकार की शिक्षा की भी अनिवार्य आवश्यकता है।

अपने अर्वाचीन रूप में समाज-सेवा का भाव स्वयं अपनी बाल्यावस्था में है। इसलिए यदि अभी लोगों ने सेवकों की शिक्षा की आवश्यकता की गुरुता को नहीं समझ पाया है, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं! फिर भी पाश्चात्य देशों में समाज-सेवा के कार्य के लिए सेवकों की विशेष शिक्षा की आवश्यकता अनुभव कर के अनेक स्कूलों, कालेजों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा उसकी आयोजना कर दी गई है।

नगर-सेवा के लिए सेवकों की शिक्षा की आवश्यकता बताते हुए आचार्य शिवराम मेहताजी कहते हैं कि "हर शख्स इस बात को मंजूर करता है कि कोई भी डाक्टर केवल सद्भावों—अच्छे इरादों के बल पर चिकित्सा का काम योग्यता-पूर्वक नहीं कर सकता—चिकित्सा करने के लिए उसे विशेष प्रकार की शिक्षा और अध्ययन की, डाक्टरी पढ़ने की आवश्यकता होती है।" इसी तरह अच्छे वकील होने के लिए एल-एल० बी० पास करने और उसके बाद भी एक साल तक ट्रेनिंग पाने की, कार्य सीखने की, जरूरत होती है! तो क्या नगर या ग्राम-सेवा का काम ही इतना सरल है कि उसको सम्यक् रूप से करने के लिए किसी प्रकार की तैयारी, अनवरत उद्योग, शिक्षा और अध्ययन की आवश्यकता नहीं? सच बात तो यह है कि अपने नगर के प्रति सचाई से अपने कर्त्तव्य के पालन करने का काम डाक्टरी और वकालत के काम से कहीं अधिक जटिल और कठिन है। सेवा का काम अवैतनिक होने के मानी यह नहीं है वह सदस्य सफल उद्योगों के इस नियम की अवहेलना कर सके। उद्योग की सफलता के लिए आवश्यक सहानुभूति के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि उद्योग पर्याप्त तथ्यों और वैज्ञानिक सत्यों के आधार पर किया जाय।

प्रोफेसर हे (Haye) ने भी अपनी Introduction to Sociology नामक पुस्तक में इस विषय की विवेचना की है। पुस्तक के पिचानवे पृष्ठ पर उन्होंने उन पाठ्य-क्रमों का उल्लेख किया है, जो १९१२-१३ की सर्दी में कोलन (Cologne) के नगर-सेवा की शिक्षा देने वाले स्कूल में पढ़ाये जाते थे। वे विषय ये हैं—

१ नागरिक-शास्त्र, २ कानून, ३ शासन-सम्बन्धी कानून,

४ स्थानीय-आज्ञाएँ, ५ दीवानी जाब्ते की कार्रवाइयाँ, ६ अर्थ-शास्त्र, ७ साख और विनिमय, ८ कर, ९ राजस्व, १० अङ्क-शास्त्र, ११ निरीक्षण के ढङ्ग, १२ मजदूरों सम्बन्धी कानून, १३ मजदूर-सङ्घ तथा मजदूरों की अन्य सभाएँ, १४ सामाजिक बीमा, १५ लोक-सेवा-कार्य, १६ सामाजिक प्रश्न, १७ आग का बीमा, १८ आरोग्य-संरक्षण शास्त्र, १९ नगर बसाने की योजना, २० स्कूल, २१ भौगोलिक तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी माप-खोज, २२ रासायनिक उद्योग-धन्धे, २३ लोहे की मशीनों के कारखाने, २४ कोयला और खानें, २५ बिजली की प्रक्रिया, २६ कृषि-प्रबन्ध, २७ रैन और वैस्टफल का आर्थिक विकास, २८ राइन-लैण्ड की कलाएँ और वहाँ का इतिहास, २९ पैरिस और उसके रहस्य।

परन्तु इस विषय का बहुत ही सुन्दर और विशद वर्णन श्रीमती एलीजावेथ मैकडम एम० ए० (Elizabeth Macadam M.A.) ने अपनी The Equipment of the Social worker नामक पुस्तक में किया है। आप स्वयं एक सुप्रसिद्ध लोकसेविका हैं, जिन्होंने सेवकों की शिक्षा का काम भी किया है। महिला विद्यालय बस्ती (Women's University Settlement) ने लोकसेवकों की शिक्षा के लिए जो योजना बनाई थी, उसके अनुसार पहले आपने स्वयं शिक्षा ग्रहण की। फिर आपने लिवरपूल की विक्टोरिया सैटिलमैन्ट की वार्डन (अध्यक्षा) का काम किया। फिर यहीं के विश्वविद्यालय में आपने "समाज-सेवा-कार्य की क्रिया और तरीकों की" लैक्चरार (अध्यापिका) मुकर्रर हो गईं। १९१९ में आप सामाजिक अध्ययन के लिए विश्वविद्यालयों की सम्मिलित कौंसिल की अवैतनिक मन्त्राणी मुकर्रर हुईं और साथ-ही-साथ स्त्रियों की एक सभा की पदाधिकारिणी हो गईं। इस महिला-सभा की शाखाएँ ग्रेटब्रिटेन भर

में फैली हुईं थीं और महिला वोटरों की शिक्षा इन सभाओं का एक मुख्य कार्य था। इस प्रकार आपने समाज-सेवकों की शिक्षा-सम्बन्धी आन्दोलन को, विद्यार्थी, व्यावहारिक कार्यकर्त्ता, अध्यापक, सामाजिक अध्ययन के लिए सदस्य, विश्व-विद्यालयों की सम्मिलित कौंसिल के सेक्रेटरी और औसत नागरिक, सब की दृष्टि से देखा है।

मिस मार्गरेट सीवेल (Margaret Sewell) से आपने सेवकों की शिक्षा-सम्बन्धी आन्दोलन का प्रारम्भिक इतिहास भी प्राप्त कर लिया; जो इस प्रकार है—

पहले-पहल उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में, उन कौंसिलों और सोसाइटियों, कालेज मिशनों और सैटिलमेंटों की स्थापना हुई, जिन्होंने गम्भीरता तथा विचारपूर्वक सामाजिक रोगों को दूर करने के लिए संगठित उद्योग प्रारम्भ किया। इसी समय लोगों ने यह समझा कि समाज-सेवा का कार्य वैयक्तिक धर्म का ही भाग नहीं है, प्रत्युत एक सामाजिक कर्त्तव्य है। इसी समय लोगों ने यह समझा कि हमें उन कठिनाइयों को हल करना है, जो हल किये जाने के लिए हमारे सामने उपस्थित हो रही हैं और जिनके हल करने के लिए मस्तिष्क और हृदय दोनों के गुणों की आवश्यकता है। इस समय तक इङ्गलैण्ड निवासी गरीबी के रोग की चिकित्सा और रोक के सम्बन्ध में विधेयात्मक विचार सोचने लगे थे और ये विचार सामाजिक कानूनों के रूप में प्रकट होने लगे थे। बीसवीं शताब्दी के शुरू में सार्वजनिक स्वास्थ्य, किराये के मकानात, नौकरी की स्थिरता, तथा नैतिक, सामाजिक और अपराधों-सम्बन्धी स्वास्थ्य की चिकित्सा के नये आदर्शों से प्रेरित हो कर अभूतपूर्व सामाजिक कानून बने, जो महायुद्ध छिड़ने तक बनते रहे।

समाज-सेवा के नये भाव के कारण समाज-सेवा करने वाली संस्थाओं की बाढ़-सी आ गई। इन संस्थाओं के कार्य के सिलसिले में लोगों ने महसूस किया कि समाज-सेवा के कार्य से नये ढंग की पब्लिक सर्विस का अस्तित्व हो गया है और इस सर्विस के लिए शिक्षा का कार्य भी धीरे-धीरे प्रारम्भ हो रहा है। जहाँ लोगों ने यह अनुभव किया कि कहे जाने योग्य कार्य तो समाज-सेवा का ही मार्ग है, वहाँ समाज-सेवी कार्यकर्त्ताओं ने भी यह अनुभव किया कि कार्य के साथ-साथ हमें उन अवस्थाओं पर भी ध्यान देना होगा, जिनमें कार्य किया जाता है और कार्यकर्त्ताओं के शरीर तथा उनके मस्तिष्क पर इन अवस्थाओं का जो प्रतिघात होता है, उसकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। ये अवस्थाएँ और प्रतिक्रियाएँ दिन-पर-दिन अधिकाधिक जटिल होती जा रही हैं और इन अवस्थाओं की उन्नति करने और प्रतिक्रियाओं का सुधार करने का काम ललितकला का-सा काम हो गया है, जिसके लिए विशेष ज्ञान और शिक्षा की आवश्यकता है। सद्भावना, दया, सहज कार्यकुशलता और अनुभव सभी आवश्यक हैं। इनके बिना ज्ञान शुष्क और थोथा है; परन्तु ये गुण भी ज्ञान बिना अन्धे और बेतुके हो जाते हैं। इसलिए यदि समाज-सेवा के कार्य को एक धन्धे की तरह अपना समुचित महत्त्व प्राप्त करना है, जैसा कि उसे करना चाहिए तो इस बात की आवश्यकता है कि इस कार्य की शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए।

समाज-सेवा का बहुत-सा काम तो आजकल प्रत्येक सभ्य देश की सरकारें स्वयं करती हैं। सरकारी महकमे के कार्यों के लिए निम्नलिखित कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता पड़ती है; फैक्टरी इन्सपेक्टर, नेशनल इंश्योरेंस और व्यापार बोर्ड के

अनुसार काम करने वाले इन्सपेक्टर, बच्चों के इन्सपेक्टर, सैनीटरी इन्सपेक्टर और हेल्थ विजीटर, नौकरी-विनिमय सङ्घों और बाल-नौकरी कमेटियों के सेक्रेटरी और क्लर्क, बच्चों की सावधानी रखने वाली कमेटियों और बच्चों की संस्थाओं के संगठन कर्त्ता, बुढ़ापे की पेंशनों के हकदारों के दावों की जाँच, म्यूनिसिपैलिटी वगैरः के मकानों के प्रबन्धक और किराया इकट्ठा करने वाले, महिला पुलिस, प्रोवेशन अफसर तथा रिलीविङ्ग अफसर।

गैर-सरकारी संस्था में निम्नलिखित कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता होती है—

कारखानों, उद्योगालयों तथा व्यापारिक दफ्तरों में सेवा-कार्य करने वाले, समाज-सेवा करने वाली कौंसिलों के मंत्री या आर्गेनाइजर, अस्पताल के आल्मनर*, दातव्य सङ्घ, बाल-हित एजेंसी, क्लब, सामाजिक इन्स्टीट्यूट्स, छुट्टी के फण्ड, ग्राम्य-संघ, गिरजाघरों और धार्मिक-संस्थाओं के सामाजिक काय करने वाले और सैटिलमेण्टों के कार्यकर्त्ता।

इन सब तथा इस प्रकार के अन्य कार्यकर्त्ताओं का नाम सिविल सर्वेन्टों और पार्लियामेन्ट के मेम्बरों के साथ लिये जाने पर बहुत से लोग चौंकेंगे, फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि सामाजिक प्रबन्ध में ये कार्यकर्त्ता भी अपना काम करते ही हैं। और जिस प्रकार बड़े से बड़े अफसर को विशेष शिक्षा की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार इन्हें भी समाज-सेवा-कार्य के लिए विशेष शिक्षा की आवश्यकता है।

---

* आल्मनर उस व्यक्ति को कहते हैं, जो सहायता पाने वाले व्यक्ति की दशा की जाँच करके उसकी पात्रापात्रता का निर्णय करता है तथा उससे मिलते-जुलते रह कर उसकी निगरानी करता रहता है।

समाज-सेवा के कार्य के ऊपर जो नमूने दिये गये हैं, उनसे पाठक यह भी समझ गये होंगे कि इस कार्य से समाज-सेवक अपनी जीविका का प्रश्न भी हल कर सकते हैं। जिस प्रकार लोग जेल-विभाग वगैरः में महीनों और वर्षों मुक्त एप्रैन्टिसी करते रहते हैं, उस प्रकार यदि समाज-सेवा के कार्य की व्यावहारिक शिक्षा लेने के लिए कुछ समय दें, तो अपनी आत्मिक उन्नति के साथ-साथ आजीवन समाज-सेवा करते रहने के लिये जीविका का प्रबन्ध भी कर सकते हैं और इस प्रकार अपना इहलोक और परलोक सम्हाल सकते हैं। प्रत्येक संस्था को योग्य प्रचारकों की, भजनीकों की, संगठन कर्त्ताओं और संचालकों की, क्लर्कों और मन्त्रियों की आवश्यकता है। अनेक लोक-सेवी कार्यकर्त्ता इन बातों की दक्षता प्राप्त कर के आजीवन अपना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण करते हुए समाज-सेवा का पवित्र कार्य कर सकते हैं।

यद्यपि पाश्चात्य देशों में भी सेवकों की शिक्षा का काम पहले गैर-सरकारी व्यक्तियों और संस्थाओं ने ही शुरू किया, परन्तु इङ्गलैण्ड के विश्वविद्यालयों ने उसे शीघ्र ही अपना लिया। वास्तव में नये ढङ्ग से सेवा-कार्य के सञ्चालन और सङ्गठन में वहाँ के विश्वविद्यालयों ने प्रमुख भाग लिया और इस सम्बन्ध में जितने मुख्य आन्दोलन वहाँ हुए, वे अधिकतर विश्वविद्यालय के लोक-सेवी तथा उदारमना स्त्री-पुरुषों की ओर से ही उठाये गये।

गैर-सरकारी व्यक्तियों में सब से पहले साउथवर्क की वोमेन्स यूनीवर्सिटी सैटिलमेण्ट ने सेवकों की शिक्षा का कार्य शुरू किया। इस सैटिलमेण्ट की स्थापना आक्सफोर्ड तथा कैम्ब्रिज के वोमेन्स कालेजों (स्त्रियों के कालेजों) ने की थी। पीछे से लन्दन

विश्वविद्यालय इसमें शामिल हो गया था। इस वस्ती का उद्देश्य साउथवर्क जैसे दरिद्र तथा कठिन जिले में समाज-सेवा का काम करना था। इस वस्ती में कुछ कार्यकर्त्ता स्थायी रूप से रहते थे और कुछ थोड़े समय के लिए। इनमें अधिकांश समाज-सेविकाएँ अपने घरों में रहते हुए प्रति दिन या प्रति सप्ताह इस वस्ती के काम में भाग लेती थीं। थोड़े ही समय में इन समाज-सेविकाओं ने यह अनुभव किया कि दीनों की सेवा के कार्य में सद्भावना के साथ-साथ ज्ञान और शिक्षा की भी परम आवश्यकता है।

कार्य करने के लिए इन लोक-सेविकाओं ने अपने छोटे-छोटे मण्डल बना लिए थे। प्रत्येक मण्डल अलग-अलग अपनी-अपनी विशेष कठिनाइयों का अनुभव कर रहा था। इन पर विचार करने के लिए मण्डल की बैठकें होतीं, जिनमें प्रत्यक्ष कठिनाइयों और वैयक्तिक उदाहरणों का वर्णन किया जाता और फिर उन पर विचार तथा विवाद होता। कभी-कभी मण्डल की अध्यक्षा निबन्ध पढ़ कर सुनाती। जून १८९० में अध्यक्षा ने अपने निबन्ध में कहा कि "यहाँ कुछ भी समय काम करने के लिए जो श्रीमती आवें, उन्हें पहले किसी पूर्ण तथा सङ्गठित कार्य के सिल-सिले में नियमित शिक्षा-क्रम प्राप्त कर लेना चाहिये, तभी वे सेवा तथा सहायता के सच्चे सिद्धान्तों को समझ सकेंगी; तभी वे जान सकेंगीं कि गरीबों की जरूरतें क्या हैं, और उन जरूरतों को पूरा करने के लिए कौन-कौन-सी एजेंसियाँ पहले ही से काम कर रही हैं? इसके साथ-ही-साथ वे उन लोगों से परिचय भी प्राप्त कर लेंगी, जिनमें उन्हें काम करना है और यह भी तय कर लेंगी कि काम की किस विशेष दिशा की ओर उनका झुकाव सब से अधिक है और वे किस कार्य के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं?"

इस नियमित शिक्षा-क्रम का श्रीगणेश इस प्रकार किया गया। अध्यक्षा ने इन प्रारम्भिक भाषणों में पहले से विद्यमान

सेवा-संस्थाओं का वर्णन किया। मिस्टर बर्नार्ड बौसैन क्वैट ने सैटिलमेण्ट में आकर चार व्याख्यान दिये। पाँच कान्फ्रेंसें की गईं। दान और सेवा के इस कार्य को अधिकतर स्त्रियाँ ही करती थीं।

१८६३-६४ में शिकागो (अमेरिका) में सैटिलमेण्टों की जो कान्फ्रेंस हुई थी, उसके एक निबन्ध में कहा गया कि सैटिलमेण्ट साल में तीन मरतबा अपने यहाँ अर्थ-शास्त्र, गरीबों के कानून, स्थानीय शासन, शिक्षा, सफाई, सङ्गठन, सहायता, मितव्ययिता के सिद्धान्तों पर व्याख्यान कराये जायँगे।

पाठ्य-क्रम नियत कर दिये जायँगे और विद्यार्थियों से जिन विषयों का वे अध्ययन कर रहे हैं, उन पर लेख लिखाये जायँगे। इस पुस्तक-ज्ञान के साथ-साथ अनुभवी कार्य-कर्त्ताओं की अधीनता में उनसे व्यावहारिक काम भी कराया जायगा। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की शिक्षा का क्रम तैयार करते समय, समस्त कार्य-कर्त्ताओं को, लोगों के जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं का अध्ययन करने और परोपकार तथा लोक-सेवा के कार्य के विविध पक्षों के देखने का भरपूर अवसर मिले इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जायगा। गरीबों को केवल उसी समय देखना, जब उन्हें सहायता की आवश्यकता होती है, या उनके केवल एक ही वर्ग को देखना भ्रमोत्पादक है। पीड़ितों की सेवा और सहायता के कार्य का पीड़ा को रोकने के कार्य से क्या सम्बन्ध है तथा व्यक्ति के कार्य को राष्ट्र के कार्य से किस प्रकार सम्बन्धित करना चाहिये, इत्यादि बातें बताना भी आवश्यकीय है।

सन् १८६३ में इस सैटिलमेण्ट ने ऐसी दो महिलाओं को छात्र-वृत्तियाँ दीं, जो समाज-सेवा के कार्य की शिक्षा प्राप्त करना

चाहती थीं; पर अर्थाभाव से कर नहीं सकती थीं। इसी समय शिक्षा-कार्य का सङ्गठन तथा विज्ञापन किया गया। इसी साल की रिपोर्ट में "व्याख्यानों का कार्यक्रम" छपा जिसकी भूमिका में कहा गया कि लोक-सेवी कार्य-कर्त्ताओं की इस शिक्षा का उद्देश्य समाज-सेवा के कार्य को उन्नत करना और शिक्षित कार्य-कर्त्ताओं की माँग को पूरा करना तथा कार्य के लिए कार्य-कर्त्ताओं को तैयार करने के लिए अब तक जितना उद्योग किया गया है उससे अधिक व्यवस्थित उद्योग करना है। इसके बाद रिपोर्ट में योजना का ढाँचा दिया गया है और स्थानीय तथा बाहर के विद्यार्थियों को शिक्षा पाने के लिए निमन्त्रित किया गया है तथा शिक्षा की फीस नियत की गई है। अनेक निवासी जो विद्यार्थी की हैसियत से आये भरती कर लिये गये। सैटिलमेण्ट में तीन टर्मों तक साप्ताहिक व्याख्यान कराये गये। कुछ व्याख्यान अध्यक्षा ने स्वयं दिये और कुछ हितैषी विशेषज्ञों ने स्वेच्छा से दिये। उदाहरणार्थ अर्थ-शास्त्र के अनन्य आचार्य रालफ्रेड मार्शल की विदुषी पत्नी ने "मजदूर और उनकी मजदूरी" पर कई व्याख्यान दिये। डाक्टर लौंगस्टाफ ने "लन्दन के स्थानीय शासन" पर दो व्याख्यान दिये। "प्रारम्भिक शिक्षा" पर मिस्टर जी० ए० पी० ग्रेब्ज ने चार व्याख्यान दिये। पूअर लॉ कान्फ्रेंस की सैन्ट्रल कमेटी के आनरेरी सेक्रेटरी मि० चाँस ने "गरीबों के कानून" (Poor Law) पर चार व्याख्यान दिये। "फैक्टरी एक्टों", "मितव्ययिता", "हिसाब-किताब रखने", "सार्वजनिक स्वास्थ्य" तथा "गरीबों की सहायता के सिद्धान्तों और ढंगों" पर भी व्याख्यान कराये गये। १८६४ में कार्य-कर्त्ताओं का शिक्षा-सम्बन्धी अनुभव व्याख्यानों तथा लीफ-लेटों द्वारा दूसरे प्रान्तों तक पहुँचाया गया। इसी साल फीफर विक्वैट के ट्रस्टियों ने इस सैटिलमेण्ट को उन स्त्रियों की छात्र-

वृत्ति के लिए तीस हज़ार रुपये दिये, जो लोक-सेवा-कार्य की शिक्षा ग्रहण करना चाहें। इस दूरदर्शी दान से इस महत्वपूर्ण कार्य की नींव सदा के लिए जम गई। १८६५ में तीन टर्मों तक पूरी व्याख्यान-माला फिर कराई गई, जिन्हें सुन कर श्रोता-गण यह कहने लगे कि यदि ये व्याख्यान केन्द्रीय स्थान पर कराये जायें, तो अधिक कार्यकर्त्ता उनसे लाभ उठा सकते हैं। इसी समय सैटिलमेन्ट, दान-व्यवस्था सोसाइटी तथा नेशनल यूनियन आफ वोमैन वर्कर्स ने मिल कर "सम्मिलित व्याख्यान कमेटी" नाम की एक कमेटी वनाई जिसका उद्देश्य लन्दन के केन्द्र में उपर्युक्त व्याख्यान-मालाओं का प्रबन्ध करना था। १८६७ की दो टर्मों में इस कमेटी की ओर से व्याख्यान कराये गये। इसके कुछ समय बाद ही कमेटी ने अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाना चाहा और उसने एक वैतनिक लैक्चरार मुकर्रर कर दिया, जो लन्दन में ही नहीं प्रान्त भर में व्याख्यान दे सके। १६०१ तक इस कमेटी की ओर से व्याख्यान दिलाये जाते रहे। १६०१ में इस कमेटी के स्थान पर "सामाजिक अध्ययन-कमेटी" नाम की एक कमेटी बनी, जो लन्दन दान-व्यवस्था की एक उप-समिति थी। इसी "सामाजिक अध्ययन-कमेटी" ने कालान्तर में पहले "अर्थ शास्त्र और समाज-शास्त्र के स्कूल" का रूप धारण किया और अन्त में वह स्कूल राजनीति-विज्ञान और अर्थशास्त्र के लन्दन स्कूल का एक विभाग बन गया।

लोक-सेवियों की शिक्षा के कार्य से इङ्गलैण्ड के विश्व-विद्यालयों का सम्बन्ध सन् उन्नीस-सौ-तीन से प्रारम्भ होता है। इसी समय सर एडवर्ड ने, उस समय लिवरपूल विश्व-विद्यालय में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर गौनर की छत्र-छाया में समाज-सेवकों की शिक्षा का प्रबन्ध करने की योजना सोची और सन् १६०४ में उन्होंने यूनिवर्सिटी, स्त्रियों के

विक्टोरिया सैटिलमेएट और लिवरपूल की सैएट्रल रिलीफ और दान-व्यवस्थापक सोसाइटी के सम्मिलित उद्योग से "स्कूल ऑफ सोशल साइंस" स्थापित किया। शुरू में यूनीवर्सिटी से इस स्कूल का सम्बन्ध यूनीवर्सिटी परिवार-समुदाय के एक सम्मानित सदस्य का-सा न हो कर एक गरीब नातेदार का-सा था। स्कूल की अपनी अलग कार्यकारिणी कमेटी थी। यह कमेटी ही उसकी विवरण-पत्रिका बनाती थी, वही विश्वविद्यालय के अनुशासन से स्वतन्त्र परीक्षा का प्रबन्ध करती थी। कमेटी ही कठिनाई के साथ स्कूल के लिए रुपया इकट्ठा करती थी। स्कूल के विद्यार्थी विश्वविद्यालय के रजिस्टर्ड विद्यार्थी नहीं माने जाते थे। और विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जो व्याख्यान देते थे, स्वयं अपनी स्वेच्छा से देते थे। विश्वविद्यालय ने स्कूल को केवल स्थान दिया था और उसकी कमेटी के लिए अपने प्रतिनिधि चुन दिये थे; परन्तु क्योंकि प्रोफेसर गोनर स्कूल कमेटी के चेयरमैन थे इसलिए पब्लिक की निगाह में स्कूल विश्वविद्यालय का ही था। इसके चार साल बाद बरमिंघम विश्वविद्यालय ने आगे कदम बढ़ाया और पहली बार लोक-सेवा-कार्य की शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों के नाम अपने रजिस्टरों में दर्ज किये, उनकी शिक्षा की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली और सफल विद्यार्थियों को डिप्लोमा दिया। इसके बाद ब्रिस्टल तथा लीड्स के विश्वविद्यालयों ने समाज-सेवा-कार्य की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। स्काटलैएड के एडिनबर्ग और ग्लासगो के विश्वविद्यालयों ने इसी दिशा में प्रयोग करना शुरू किया। एडिनबर्ग के पाक-शास्त्र और गृह-प्रबन्ध-शास्त्र के स्कूल ने १६११ में स्त्रियों के लिए लोक-सेवा-कार्य की शिक्षा का प्रबन्ध किया।

महायुद्ध से पहले सेवकों की शिक्षा के कार्य की उन्नति की गति बहुत धीमी थी। बीसवीं शताब्दी के शुरू के सालों में

तो सामाजिक कानूनों का प्रवाह बह रहा था और नये ढंग के सरकारी तथा गैर-सरकारी सामाजिक प्रयत्नों के लिये वैतनिक संगठन कर्त्ताओं की हैसियत से कार्यकर्त्ताओं की माँग दिन-पर-दिन बढ़ने लगी। शुरू में स्त्रियाँ ही इस कार्य की ओर झुकीं और स्त्रियाँ भी वे जो निःशुल्क सेवा-कार्य करना चाहती थीं।

महायुद्ध के समय, लोक-सेवकों की शिक्षा के कार्य को आशातीत उत्तेजना मिली। इस समय शिक्षित कार्यकर्त्ताओं की माँग उनकी पूर्त्ति से बहुत बढ़ गई। इसलिए सरकार के विश्व-विद्यालयों के समाज-सेवा-कार्य की शिक्षा देने वाले विभागों को स्वीकार करके उनको प्रोत्साहन देने के लिए बाध्य होना पड़ा। युद्ध-सामग्री के मन्त्रि-मण्डल के लोक-सेवी विभाग (Welfare Department of the Ministry of Munitions) के लिए नवशिक्षित कार्य-कर्त्ताओं की पर्याप्त संख्या प्राप्त करना असम्भव हो गया, तब उसने उन विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ देना शुरू किया, जो विश्वविद्यालय के लोक-सेवकों की शिक्षण-पाठशालाओं में दी जाने वाली शिक्षा को प्राप्त करें। तात्कालिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए, पीड़ित-सहायता-कार्य के लिए कार्यकर्त्ताओं की विशाल सेनाओं को शिक्षा दी जाने लगी। लोक-सेवा-कार्य की शिक्षा पाना फैशन में शुमार हो गया। जून सन् १९१७ में एक कान्फ्रेन्स ने फैक्टरियों में लोक-सेवा-कार्य तथा मजदूरों के सेवा-मण्डलों के काम की शिक्षा देने का विशेष प्रबन्ध किया।

शिक्षा-क्रम का नमूना

१९१७ में ज्वाइण्ट यूनीवर्सिटी कौंसिल ने "विश्वविद्यालयों में सामाजिक अध्ययन और शिक्षण" पर एक रिपोर्ट तैयार की, जिसको P. S. King & son ने प्रकाशित किया है। इस

रिपोर्ट में कहा गया कि इस समय निम्नलिखित तीन प्रकार के विद्यार्थी अण्डर ग्रैजुएटों से अधिक हैसियत रखते हैं—

(क) ग्रैजुएट, (ख) अनुभवी कार्यकर्त्ता जिसे पहले बहुत ही कम या कुछ भी सैद्धान्तिक शिक्षा नहीं मिली, (ग) वह विद्यार्थी जो मैट्रीक्यूलेट है अथवा किसी ऐसे कार्य में लगना चाहता है, जिसमें यदि और गुण हों, तो विश्वविद्यालय की डिग्री आवश्यक नहीं है। अधिकाँश स्कूल इन तीनों प्रकार के विद्यार्थियों की शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं, यद्यपि कुछ स्कूलों में छात्रवृत्ति ग्रैजुएटों को ही मिलती है।

ग्रैजुएटों के अलावा दूसरे लोगों के लिए शिक्षा-क्रम दो साल का पूरा समय चाहता है। पहली साल सामाजिक विषयों के आम अध्ययन के लिए और दूसरी साल कार्य-विशेष की शिक्षा के लिए।

शिक्षा-क्रम में, कक्षाओं में या व्याख्यानों में सम्मिलित होना तथा-समाज-सेवा के विविध कार्यों में अमली हिस्सा लेना, दोनों शामिल हैं। पिछली बात से विद्यार्थियों को मजदूरों के जीवन का, सार्वजनिक विभागों के सञ्चालन का तथा सेवा-कार्य के लिए गैर-सरकारी सङ्घों का निजी ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

कक्षाओं में जिन शास्त्रों की सैद्धान्तिक शिक्षा दी जाती है, वे भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न हैं; परन्तु आमतौर पर अर्थ-शास्त्र, आर्थिक इतिहास, सामाजिक और राजनैतिक दर्शन, मनोविज्ञान, पब्लिक के शासन आदि—सिद्धान्त सब जगह पढ़ाये जाते हैं। स्वास्थ्य-सुधार, मकानात के प्रबन्ध, बेकारों के लिए काम तलाश करने तथा पीड़ितों की सहायता आदि का कार्य सेवकों से कराया जाता है, उनसे सामाजिक अवस्थाओं की खोज तथा अनुसन्धान का काम भी लिया जाता है। भिन्न-भिन्न

सेवा-कार्य सेवकों को ले जाकर दिखाये जाते हैं। इन निरीक्षणों से विद्यार्थियों को बहुत लाभ पहुँचता है। जो लोग अपना पूरा समय सेवा-कार्य की शिक्षा ग्रहण करने के लिए नहीं दे सकते उनके लिए डन्डी और ग्लासगो में शाम को शिक्षा दी जाती है। शिक्षा समाप्त होने पर परीक्षा ली जाती है और परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर डिप्लोमा या सार्टीफिकेट दिया जाता है। इस शिक्षा में डेढ़-सौ रुपये से लेकर साढ़े-चार-सौ तक व्यय पड़ता है।

श्रीमती एलिजावेथ मैकडम का कहना है कि सेवकों की शिक्षा-सम्बन्धी आन्दोलन के पहले तीस साल तो केवल प्रयोग के साल थे इसलिए अब आकर शिक्षा के उद्देश निश्चित् हो पाये हैं।

सामाजिक शास्त्रों और विज्ञानों के अतिरिक्त लोक-सेवियों को सामाजिक कानूनों के विवेचनात्मक अध्ययन की, उनके इतिहास, उनके नियम तथा परिणामों की जानकारी प्राप्त करने की भी परम आवश्यकता है। अमेरिका के स्कूलों में सेव्य-व्यक्तियों, परिवारों और समुदायों के अध्ययन की शिक्षा भी दी जाती है। सेव्यों के घरों का निरीक्षण करने, पीड़ितों की सेवा-शुश्रूषा तथा सहायता करने तथा क्लबों के सङ्गठन और सञ्चालन आदि का काम भी सिखाया जाता है। कुछ स्कूलों में व्यवसायों के प्रबन्ध, दफ्तर और कमेटी के काम, तथा सार्वजनिक व्याख्यान देने की भी शिक्षा दी जाती है।

शिक्षा का सब से अच्छा क्रम यह है कि पहले समाज-शास्त्रों में ग्रैजुएट की उपाधि ली जाय फिर दो साल तक सेवा-कार्य की विशेष शिक्षा प्राप्त की जाय।

श्रीमती एलिजावेथ मैकडम के कथनानुसार बीस वर्ष पहले का विद्यार्थी लगभग सोलहो आने व्यक्तियों के सौभाग्य और

दुर्भाग्य के प्रश्न में निमग्न रहता था, परन्तु अर्वाचीन विद्यार्थी व्यक्तियों की दशा सुधारने अथवा उनके दुःख दूर करने के इन हेय और बेकार ढंगों से ऊब जाते हैं और आर्थिक पुनस्संगठन की बड़ी-बड़ी योजनाओं में ही विश्वास करते हैं। यह प्रगति प्रत्येक लोक-सेवी के लिए विचारणीय है और स्वाध्याय की आवश्यकता को और भी अधिक पुष्ट करती है।

सुशिक्षित लोक-सेवी अपना कार्य-सम्बन्धी ज्ञान केवल पुस्तकों से ही नहीं प्राप्त करेगा, बल्कि वास्तविक जीवन से प्राप्त करेगा। वह चीजों को जैसी कि है वैसी देखता है, जैसी वे मानी जाती हैं, वैसी नहीं देखता। उसका व्यावहारिक अनुभव उसके व्याख्यानों को सजीव और यथार्थ बना देगा। वह वास्तविक जीवन की प्रयोग-शाला में कक्षा के हलों की परीक्षा करेगा और इन अवस्थाओं को हल करने के साथ-साथ इतिहास, समाज-दर्शन और अर्थ-विज्ञान की व्याख्या पर ध्यान देगा।

पहली साल में आमतौर पर पहली तिमाही में व्यावहारिक कार्य को अधिक महत्व देना चाहिए। दूसरी में कम तथा तीसरी में और कम। दूसरी साल विशेष शिक्षा के लिए रहनी चाहिए। स्टाफ के कम से कम एक मेम्बर में तो इतनी योग्यता होनी ही चाहिए कि वह विद्यार्थियों को व्यावहारिक कार्य की शिक्षा दे सके। व्यावहारिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यह है कि लोक-सेवी को सेव्यों की अवस्था का पूर्ण तथा सहानुभूति पूर्ण ज्ञान हो जाय—इस ज्ञान के महत्व पर जितना जोर दिया जाय, थोड़ा है। संसार के नामी-नामी विद्वानों ने इसी प्रकार सामाजिक अवस्थाओं और समस्याओं का ज्ञान प्राप्त किया है। श्रीमती सिडनी वैब और श्रीमती एलीजरशल ने मजदूरों की दशा का अध्ययन करने के लिए स्वयं फैक्टरी में जा कर काम

किया। जो मिस जिअलसन सन् १६२४ में नौरविच की तरफ से ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की मेम्बर चुनी गईं, उन्होंने गृह-सेविका का कार्य स्वयं करके गृह-सेविकाओं की दशा का ज्ञान प्राप्त किया। अमेरिका के नामी जेल-सुधारक मिस्टर मौट औसवोर्न जेल की दशा का अध्ययन करने के लिए स्वेच्छापूर्वक जेल में रहे।

खास तौर पर ग्राम्य-समस्याओं की शिक्षा के प्रबन्ध के लिए अभी तक पाश्चात्य देशों में भी तुलनात्मक दृष्टि से बहुत ही कम काम किया गया है; यद्यपि ग्रेटब्रिटेन और अमेरिका दोनों के विश्व-विद्यालयों में लोक-सेवकों की शिक्षा का कार्य एक अविच्छेद्य अङ्ग हो गया है।

हमारे देश में अभी लोक-सेवा की शिक्षा का कोई उल्लेखनीय प्रबन्ध नहीं है। यहाँ तो विश्व-विद्यालयों ने इस ओर ध्यान तक नहीं दिया।

हाँ, ग्राम-सेवकों की शिक्षा के लिए कुछ गैर-सरकारी उद्योग, अवश्य किये गये हैं। जिनमें यंगमैन क्रिश्चियन ऐसोसिएशन के मद्रास के ग्राम-सेवा-केन्द्रों की शिक्षा का प्रबन्ध, कवीन्द्र रवीन्द्र के शान्तिनिकेतन का प्रबन्ध, प्रेम-महाविद्यालय वृन्दावन तथा काशी विद्यापीठ की ग्राम्य कार्यकर्त्ताओं की सेवा-कार्य की शिक्षा देने वाली कक्षाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

मिस्टर एफ. एल. ब्रेन ने इस सम्बन्ध में पञ्जाब के गुरुगाँव जिले में विशेष उद्योग किया है। उन्होंने गुरुगाँव में ग्राम-शास्त्र की शिक्षा का स्कूल (School of Rural Economy) खोला है। इस स्कूल का सब से पहला उद्देश्य विद्यार्थियों को मेहनत का महत्त्व सिखाना है। दूसरा उद्देश्य है सेवा का आदर्श विद्यार्थियों के मन में अङ्कित करना, जिससे उनमें स्वयं अपनी

तथा दूसरों की सहायता करने की इच्छा उत्पन्न हो। तीसरा उद्देश्य, जो वास्तविक शिक्षा दी जाती है उसके जरिये, उन्हें इस बात का विश्वास दिला देना है कि ग्राम-जीवन की सब समस्याओं का हल हमारे पास मौजूद है। इस स्कूल के पहले विद्यार्थियों में ब्यालीस अध्यापक थे, चार पटवारी और एक प्राइवेट विद्यार्थी; परन्तु पीछे से सरकार ने पटवारियों को स्कूल में शिक्षा पाने से रोक दिया। शुरू में एक साल की पढ़ाई रक्खी गई। यह साल प्रयोग का साल था। स्काउटिंग और सहयोग, शिक्षा के आधार-स्तम्भ हैं, क्योंकि संस्थापक की सम्मति में इन्हीं से स्वावलम्बन, सहयोग और समाज-सेवा की शिक्षा मिलती है। स्कूल के कुएँ के आस-पास काफी जमीन है और स्कूल के पास इक्यावन एकड़ का फार्म है। अन्य विषय ये पढ़ाये जाते हैं—

अमली खेती।

आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा।

बालकों की सेवा।

सार्वजनिक स्वास्थ्य।

गृह आरोग्य और स्वच्छता-शास्त्र।

ग्राम-आरोग्य-संरक्षण और सफाई का काम, जिसमें गाँव को साफ करने का अमली काम करना पड़ता है।

महामारी-विज्ञान।

सेवकों की शिक्षा।

पशुओं की नस्ल सुधारने और पशुओं के इलाज का सीधा काम।

सब के लिए खेल। अँगरेजी खेल। गाना। व्याख्यान देना। ग्राम्य-प्रचार और मैजिक-लैन्टर्न का उपयोग।

विद्यार्थी गाँवों में दौरा करके व्याख्यान देते हैं और गाँवों की सफाई वगैरः का अमली काम करते हैं। वे अपना काम खुद ही करते हैं, जिससे वे मेहनत की इज्जत करना सीखें। वे नाटक लिखते और खेलते हैं क्योंकि प्रचार का सब से अधिक विश्वासोत्पादक साधन नाटक ही है। इस स्कूल में गाँव के पथ-प्रदर्शक तैयार किये जा रहे हैं; जो हाकिम, सर्वज्ञ, जालिम या नवाब न होंगे, सेवक, सहायक और उपदेशक का काम करेंगे। इन पथ-प्रदर्शकों को ये काम करने पड़ेंगे—

(१) आर्डर छोड़ कर बैङ्क का सब काम। (२) फसल के शत्रुओं, चूहों, कुतरा कीड़ों, सेइयों वगैरः के मारने का काम। (३) सार्वजनिक स्वास्थ्य का काम। टीके लगवाने लायक लोगों की फेहरिस्त बनाना और लोगों को टीका लगवाने के लिए तैयार करना। खाद के गड्ढे खोद कर तथा घरों में खिड़कियाँ बनवा कर गाँवों की सफाई करना। जन्म-मृत्यु के रजिस्टरों का निरीक्षण। हैजा रोकने का काम। (४) मैजिक-लैन्टर्न द्वारा या उसके बिना ही उपदेश देना। प्रदर्शनी गाड़ी सहित या उसके बिना भी, खेती, सहयोग, आरोग्य, उत्थान आदि के सिद्धान्त गाँव वालों को सिखाना। (५) खेती के लिए उन्नत हलों तथा दूसरे औजारों का प्रदर्शन और उनको बेचना। उन्नत बीज, रहट, हिसार के साँड़, फूल लगाने का शौक वगैरः का प्रचार करना। (६) लोगों को अपने लड़के-लड़कियों को मद्-रसे भेजने के लिए राजी करना; संक्षेप में ग्रामोत्थान सम्बन्धी सब काम करना।

ये ग्राम-पथ-प्रदर्शक गाँवों में जा कर गाँव वालों के बीच में ही रहेंगे। इनके काम का फल देख कर इन्हें दण्ड या पुरस्कार मिलेगा। ये पथ-प्रदर्शक गाँव के बच्चे-बच्चे को जानते होंगे और

गाँव का बच्चा-बच्चा इन्हें जान जायगा। ये उपदेश देंगे, प्रदर्शन करेंगे, सलाह देंगे, गाँव वालों की राय मालूम करेंगे, उन्नति की गाड़ी मूढ़ विश्वासों के गड्ढों में कहाँ रुकती है यह जानेंगे। उनके सन्देहों और कठिनाइयों को रफा करेंगे, उनकी समस्याओं को हल करेंगे, उनकी तकलीफों के दूर करने का उपाय बतावेंगे। अब तक हमारा काम कागजी था। अब हमें इन पथ-प्रदर्शकों से यह मालूम हो सकेगा कि ग्रामोत्थान सम्बन्धी हमारी योजनाओं के बारे में गाँव वालों की क्या राय है? उनको हमारी तरक्की की कोशिशों में क्या-क्या ऐतराज हैं। हम अपनी भद्दी योजनाओं को प्रत्येक गाँव की परिस्थिति के अनुसार सुधार सकेंगे और ग्रामवासियों के मूढ़ विश्वासों के किले के मर्मस्थलों पर हमला कर सकेंगे।

इसी तरह स्त्रियों को गृह-प्रबन्ध की शिक्षा देने के लिए एक स्कूल है।

गाँवों और ग्रामीणों की सेवा

"गाँवों और ग्रामीणों की सेवा का कार्य परमपिता परमात्मा का कार्य है।"

—शाही कृषि कमीशन के सामने
गवाही देते हुए महामना मालवीयजी

"चल उठ, यहाँ आँखें मूँदे हुए, और गोमुखी में हाथ डाले हुए क्या जप कर रहा है? यदि तुझे ईश्वर के दर्शन करने हैं तो वहाँ चल, जहाँ किसान जेठ की दोपहरी में हल जोत कर चोटी का पसीना एड़ी तक बहा रहा है।"

—गीताञ्जलि में रवीन्द्रनाथ ठाकुर

"सूबे की आर्थिक दशा की हमने जो जाँच की है, उससे हमें पक्का विश्वास हो गया है कि किसानों की दशा सुधारने की बहुत सख्त जरूरत है।"

—यू० पी० बैङ्किङ्ग एनक्वाइरी कमेटी रिपोर्ट

"मेरा विचार है कि जिस स्त्री-पुरुष में मनुष्यता का तनिक भी भाव है, उसे गावों और ग्रामीणों की सेवा के शुभ कार्य में सहयोग देना चाहिए।"

—पण्डित मदनमोहन मालवीय

ग्रामीणों की सेवा का महत्व

हिन्दुस्तान ग्रामों का देश है। इसके नब्बे फीसदी के लगभग निवासी गाँवों में ही रहते हैं। गरीबी, अज्ञान, बीमारी आदि से ये सदैव ग्रसित रहते हैं। इसलिए हिन्दुस्तान में लोक-सेवकों का कार्य बहुत अंश तक गाँवों और ग्रामीणों की सेवा का कार्य हो जाता है। इस बात से कोई भी समझदार व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता कि हमारे देश में गाँवों और ग्रामीणों की सेवा के कार्य से बढ़ कर पुण्य और धर्म का दूसरा कोई कार्य नहीं है!

हर्ष और सन्तोष का विषय है कि हमारे देशवासी जनता, और सरकार दोनों ही, इस कार्य के महत्व को समझने लगे हैं। शाही कृषि कमीशन ने भी गाँवों और ग्रामीणों की सेवा के शुभ कार्य पर काफी जोर दिया है। देश के लोकसेवी नेता तो बहुत दिनों से इस पुण्य कार्य की ओर जनता और सरकार का ध्यान आकर्षित करते रहे हैं। साथ ही अनेक सज्जनों ने इस शुभ कार्य का श्री गणेश भी कर दिया है। इनका वर्णन यथासमय आगे आवेगा ही। अधिकारी इस कार्य के महत्व को भली भाँति समझने लगे हैं। पञ्जाब की सहयोग समितिओं के भूतपूर्व रजिस्ट्रार मिस्टर सी० एफ० स्ट्रिक लैण्ड सी० आई० ई० ने अपनी Review of Rural welfare Activities in India 1932 नामक पुस्तक में पन्द्रहवें पृष्ठ पर लिखा है कि आवश्यकता इस बात की है कि सब सरकारी महकमों के बड़े अफसर इस बात को महसूस करलें कि गाँवों और ग्रामीणों की सेवा का कार्य राजविद्रोहात्मक आन्दोलन के दमन के काम से कम महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि गाँवों और ग्रामीणों की सेवा

का काय राजविद्रोहात्मक आन्दोलन को रोकने के लिये सर्वोत्तम उपाय है।

शहरों का कर्त्तव्य

गाँवों के प्रति शहरों के कर्त्तव्य की चर्चा करते हुए आचार्य शिवराम एन फेरवानी ने लिखा है कि अन्याय से अन्त में पतन और मृत्यु का सामना करना पड़ता है। शहरों को इस बात की ओर ध्यान देना चाहिए। शहर को पास-पड़ोस के गाँवों से बहुत अवलम्ब मिलता है। वहीं से उसको भोजन मिलता है। इसलिए अगर शहर अपनी पैदा की हुई चीजों और अपनी संस्कृति से गाँवों को अवलम्ब नहीं देंगे। यदि वे गाँवों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करेंगे, और गाँवों के जीवन के ह्रास को जारी रहने देंगे, तो वे गाँवों का ऋण न चुकाने के दोष के भागी होंगे, जिसके दण्डस्वरूप स्वयं शहरों का पतन अनिवार्य है। शहर अपने शरीर के लिए खुराक गाँवों से ही लेते हैं; परन्तु क्या वे गाँवों के लिए जरूरी औजार बना कर और उनके जीवन को उन्नत करने का प्रयत्न करके गाँवों के इस ऋण से उऋण होने का प्रयत्न करते हैं? शहर वाले गाँवों से जितना लाभ उठाते हैं, उसका शतांश भी लाभ उन्हें नहीं पहुँचाते। परिणाम स्वरूप देश को दुहरी हानि उठानी पड़ रही है। आचार्य वास्वानी का यह कथन बिलकुल ठीक है कि नगरों को रक्ताधिक्य का रोग है और देहातों को क्षयी का। शहरों को गाँव वालों की परवाह करनी चाहिए। जब तक शहर वाले अपने जिले के गाँवों के ऋण से उऋण नहीं होंगे, तब तक शहर का जीवन सुखमय और शान्त नहीं हो सकता। इस समय तक तो शहर वाले हरामखोरी से काम ले रहे हैं। उन्हें यह भी पता नहीं कि देहातों में भी हमारे ही जैसे मनुष्य, हमारे भाई रहते हैं और भाई भी ऐसे जो हमारे अन्नदाता हैं।

शहर वाले क्या कर सकते हैं ?

आचार्य फेरवानी का कहना है कि शहर वालों का कर्त्तव्य है कि जो लोग गाँवों से आ कर मजदूरी के लिए शहरों में बसते हैं, उनके लिये अच्छे घरों का प्रबन्ध करें। बम्बई का उदाहरण देते हुए उन्होंने दिखाया है कि बम्बई म्यूनिसिपैलिटी के नियमानुसार शहर में घोड़ों के अस्तबल के लिए, कम-से-कम पिचहत्तर फीट जगह, भैंस के लिये साढ़े बासठ फीट और बैलों के लिए पचास फीट जगह रखना लाजिमी है, लेकिन मनुष्यों के लिए सिर्फ पच्चीस फीट जगह काफी समझी गई है। इस पर भी तुर्रा यह कि घोड़े, बैल वगैरः आम तौर पर जमीन पर रहते हैं और मनुष्यों को इतनी कम जगह में दुखने-तिखने पर टँगा रहना पड़ता है। घरों का ठीक इन्तजाम न होने की वजह से गाँव वाले मजदूर अपने स्त्री-बच्चों को नहीं ला सकते, जिसके फलस्वरूप वे चकलों में तरह-तरह की बीमारियों और शराब खोरी वगैरः के शिकार होते हैं। एक ही घर में बहुत से परिवारों के रहने से, और सब परिवारों के सोने, नहाने और टट्टी जाने का अलग इन्तजाम न होने से लज्जा नष्ट हो कर दुराचार फैलता है। आचार के साथ-साथ स्वास्थ्य का भी नाश होता है। मजदूरों की दशा को जाँच करने के लिए मिस्टर ह्विटली की अध्यक्षता में जो शाही कमीशन आया था, उसकी रिपोर्ट से घरों में इन्तजाम की कमी से होने वाली घातक हानियों का पता भली भाँति चल सकता है। मिस मारगरेट रीड एम० ए० (Margaret Read) ने अपनी The Indian Peasant Uprooted नामक पुस्तक में इन हानियों का बहुत ही अच्छा संक्षिप्त परन्तु व्यवस्थित वर्णन किया है। कमीशन की रिपोर्ट के अठारह भागों में वर्णित हानियाँ एक ही पुस्तक में दे दी गई

हैं। आचार्य फेरवानी का कहना है कि नगर निवासियों का कर्त्तव्य है कि वे इन गाँववासी मजदूरों के लिए ऐसे घरों का अच्छा इन्तजाम करें, जिनमें उनके पूरे परिवार भली भाँति रह सकें और इस प्रकार अपने ऋण से कुछ अंश तक उऋण हों।

इसके अतिरिक्त शहरों का यह भी कर्त्तव्य है कि वह अपनी प्रयोगशालाओं में ऐसे प्रयोग करें जिनसे किसानों को अपने खेतों की पैदावार बढ़ाने में मदद मिले। इस सम्बन्ध में १९२६ के शाही कृषि कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में सरसठवें पृष्ठ पर कहा है कि "हम ग्रामीणों में गाँव सुधार के कार्य का नेतृत्व करने को शक्ति पैदा करने और उनमें ग्राम-सेवा के भाव भरने की आवश्यकता पर ज्यादा से ज्यादा जोर देना चाहते हैं। और अपना यह विश्वास स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विश्व विद्यालय बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। उनका सर्वोच्च कर्त्तव्य यह है कि वे अपने विद्यार्थियों में सार्वजनिक सेवा का ऐसा भाव और अपने साथियों की भलाई के कामों की ओर उनमें इतना उत्साह भर दें कि जिससे जब वे अपनी शिक्षा समाप्त करके सामाजिक-जीवन में प्रविष्ट हों, तो वह सेवा-भाव और उत्साह उन्हें जिस ग्रामीण-समाज में उनका जन्म हुआ है, उसके जीवन में पूरा क्रियात्मक भाग लेने के लिए प्रेरित करे।

नगर-निवासियों को चाहिए कि वे खेती के बेहतर औजारों की खोज करके उन औजारों को बनावें, जिससे खेतिहरों की जिन्दगी की कठिनाई और एकरसता कुछ कम हो। शहर वालों को ऐसे घरेलू धन्धों को भी उत्तेजना देनी चाहिए जिनको गाँव

वाले खेती से बचे हुए समय में कर के चार पैसे पैदा कर सकें। संक्षेप में शहर वालों को अपने गाँव निवासी भाइयों की अपनी बुद्धि से तथा अपने हस्त-कौशल और मशीन-सम्बन्धी कौशल से सहायता करनी चाहिए, जिससे उनके जीवन में अधिक सामञ्जस्य हो और वे अपने जीवन को थोड़ा-बहुत सुखमय बना सकें।

नगर-निवासियों का कर्त्तव्य है कि वे अपने सर्वोत्तम शिक्षा-शास्त्रियों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करें कि वे सफरी शिक्षकों का एक दल बना कर छुट्टियों में देहातों में शिक्षा का प्रचार करें।

व्यक्तिगत रूप से या कई व्यक्ति मिल कर भी नगर-निवासी ग्राम-निवासियों की बहुत कुछ सेवा कर सकते हैं। छुट्टियों में कोई भी नगर-निवासी अकेला भी कुछ साथियों के साथ गाँवों में जा सकता है और वहाँ जा कर गाजे-बाजे से या चित्रों से गाँव वालों के चित्त को प्रफुल्लित कर सकता है। उनसे उनके सुख-दुःख की बातें पूछ सकता है और उनके दुःखों को दूर या कम करने के उपायों को सोच सकता है। इस प्रकार के संसर्ग से गाँव वालों और शहर वालों में परस्पर सद्भाव उत्पन्न होगा और इस प्रकार की यात्राओं से शहर वालों के चरित्र तथा उनके मानसिक और आत्मिक स्वास्थ्य पर भी बहुत अच्छा असर पड़ेगा।

यदि कोई नगर-निवासी अपने शहर के अड़ोस-पड़ोस के गाँवों की दशा की जाँच करे, तो उसे सेवा के असंख्य क्षेत्र और अवसर मिल जावेंगे, जिन्हें वह स्वयं या कुछ साथियों की संगठित शक्ति से पूरा कर सकता है। गश्ती पुस्तकालय, गश्ती शिक्षक, अस्पताल सभी बातों की गाँव वालों को जरूरत है।

कार्य की विशालता

गाँवों और ग्रामीणों की सेवा का कार्य बहुत ही विशाल है। इस कार्य की विशालता सर्वमान्य है। शाही कृषि कमीशन और बैंकिङ्ग जाँच कमेटी आदि विषय के विशेषज्ञों तक ने यह स्वीकार किया है कि ग्रामोत्थान का कार्य तभी पूरा हो सकता है, जब सरकार और जनता मिल कर अपनी समस्त शक्ति से उसके लिए उद्योग करें। तात्पर्य यह है कि इस क्षेत्र में सेवा के इतने अवसर हैं कि किसी भी सेवाव्रती को यह कहने का मौका नहीं मिल सकता कि हम सेवा तो करना चाहते हैं परन्तु क्या करें, हमें सेवा का अवसर ही नहीं मिलता।

सरकारी साधनों का सदुपयोग

गाँवों और ग्रामीणों की भलाई के लिए बहुत से सरकारी विभाग काम कर रहे हैं; परन्तु अपने अज्ञान और बेबशी के कारण बेचारे ग्रामीण उनसे भरपूर लाभ नहीं उठा पाते। जो लोग गाँवों और ग्रामीणों की सेवा करना चाहते हैं, वे और कुछ नहीं तो इन साधनों से ग्रामीणों को भरपूर लाभ पहुँचवा-कर ही उनकी बहुत कुछ भलाई कर सकते हैं।

कृषि-विभाग को ही ले लीजिये

यह महकमा केवल किसानों की भलाई के लिए, खेती की तरक्की के लिए है; परन्तु कितने किसान उससे लाभ उठा पाते हैं? सेवा-व्रती यदि इस महकमे से ही किसानों को भर-पूर लाभ पहुँचवाएँ तो किसान और महकमा दोनों ही उनका उपकार मानें। कृषि-विषयक खोज का काम अभी न तो हिन्दुस्तान जैसे बड़े देश की जरूरतों के लिए काफी पैमाने पर ही किया जा रहा है और न जितना किया जा रहा है, उससे

किसानों को भरपूर लाभ पहुँच रहा है। लोक-सेवी लोकमत निर्माण करके महकमे को अपने कार्य का विचार करने के लिए प्रेरित कर सकते हैं और खोज के फलों को देशी-भाषाओं में अनुवादित करने तथा उसके सम्बन्ध में पत्रों में लेख लिख कर पढ़े-लिखे किसानों के पास पहुँचा सकते हैं और इन लेखों तथा पुस्तिकाओं को पढ़ कर, सुना कर अथवा व्याख्यानों और बात-चीत द्वारा अपढ़-कुपढ़ किसानों को भी उपयोगी बातों का ज्ञान करा सकते हैं।

ग्रामीणों की सेवा का एक-एक ही काम ऐसा है, जिसको अपने हाथों में ले कर कोई भी लोक-सेवी किसानों के हजारों-लाखों का नुकसान बचा सकता है और उन्हें हजारों-लाखों का ही फायदा पहुँचा सकता है। इलाहाबाद के अमेरिकन कृषि विद्यालय के मिस्टर सैमहिगिन बोटम का कहना है कि जङ्गली जानवरों से खेती को जो नुकसान पहुँचता है, वह कुल पैदावार का दस से लेकर बीस फी सदी तक है! हिन्दुस्तान की कुल पैदावार अगर दस अरब की भी कूती जाय, तो जङ्गली जानवरों से होने वाला नुकसान कई अरब माल तक पहुँच जाता है। अगर कोई या कुछ लोक-सेवी इस सवाल को अपने हाथ में लेकर जङ्गली जानवरों से होने वाले नुकसान सिर्फ आधा घटवाने में सफलता प्राप्त करें, तो वे अपने देश तथा ग्रामीणों को कम-से-कम एक अरब रुपये साल का लाभ पहुँचावेंगे। और इतनी प्रत्यक्ष सेवा में ऐसा कौन है जिसकी आत्मा को पूर्ण सुख और सन्तोष न हो? जङ्गली जानवरों से होने वाले नुकसान की भीषणता का वर्णन करते हुये हिगिनबोटम साहब ने कहा था कि देश के बहुत से भागों में तो उड़ने वाली लोमड़ियों, सेइयों, गीदड़ों, गिलहरियों, चूहों, जङ्गली शूअरों, हिरनों, छूटे फिरने वाले मवेशियों, तोतों, जङ्गली कबूतरों, मोरों तथा

बन्दरों वगैरह की वजह से मुनाफे के लिए बागवानी करना कतई गैर मुमकिन है। उन्होंने स्वयं एक बाग लगाया, उसमें बीस रखवाले रक्खे फिर भी पचास फीसदी पैदावार जानवरों ने बरबाद करदी। फलतः जो बाग पाँच-सौ छः-सौ रुपये साल पर उठता था, वह अब तीस रुपये साल पर भी नहीं उठता।

कृषि विषयक शिक्षा के लिए जो कुछ प्रबन्ध है, वह बहुत ही अपूर्ण और सदोष है। उसके दोषों को दूर कराने तथा उसका पर्याप्त प्रबन्ध कराने का प्रयत्न करके लोक-सेवक गाँव निवासियों को बहुत कुछ लाभ पहुँचा सकते हैं।

प्राइमरी शिक्षा का प्रश्न कृषि-विषयक शिक्षा के प्रश्न से भी पहले आता है। यद्यपि इस प्रश्न का विस्तारसहित वर्णन अपढ़-कुपढ़ों की सेवा वाले अध्याय से सम्बन्ध रखता है, फिर भी, प्राइमरी शिक्षा का गाँव निवासियों की उन्नति से कितना सम्बन्ध है इसकी चर्चा कर देना यहाँ आवश्यक प्रतीत होता है। संयुक्त-प्रान्त के सार्वजनिक शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर का कहना है कि जब तक गाँव वालों को अच्छी शिक्षा नहीं मिलती, तब तक किसानों के जीवन के आदर्श को ऊँचा करने और उनकी आर्थिक दशा सुधारने के प्रयत्न अधिक सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। इसी प्रान्त के कृषि-विभाग के डाइरेक्टर मिस्टर क्लार्क का कहना है कि विगत कई वर्षों से कृषि-विभाग के अफसरों ने इस बात को स्पष्ट देख लिया है कि खेती की उन्नति उस समय तक कदापि नहीं हो सकती, जब तक किसानों यानी गाँव निवासियों में प्रारम्भिक शिक्षा का पर्याप्त प्रचार नहीं हो जाता।

कृषि-विषयक शिक्षा के प्रबन्ध के सम्बन्ध में संयुक्त-प्रान्त की आवश्यकता की चर्चा करते हुए इस प्रान्त के एक भूतपूर्व

मिनिस्टर राजा जगन्नाथ बख्श सिंह ने शाही कृषि-कमीशन के सामने गवाही देते हुए कहा था कि जो जिले खेती में सब से आगे बढ़े हुए हैं उनमें तो कम-से-कम हर एक हलके में बुलन्दशहर स्कूल के ढङ्ग का एक स्कूल होना चाहिए। सरदार कृपालसिंह ने भी यही राय दी थी कि एक कालेज प्रान्त भर के लिए काफी नहीं है। कौंसिल आफ स्टेट के भूतपूर्व मेम्बर और संयुक्तप्रान्त की सहयोग-समितियों के भूतपूर्व रजिस्ट्रार माननीय श्यामविहारी मिश्र की राय है कि, जहाँ तक हो सके वहाँ तक, गाँव के प्रत्येक स्कूल में एक कृषि-शिक्षक रहना चाहिए। यदि इतना न हो सके तो कम-से-कम प्रत्येक मिडिल स्कूल में ही कृषि का एक शिक्षक अवश्यमेव होना चाहिए। गांवों के स्कूलों में पढ़ने-लिखने और हिसाब के अलावा किसी प्रकार की साहित्यिक शिक्षा की ऐसी आवश्यकता नहीं। उसमें तो उद्योग-धन्धों की शिक्षा के साथ-साथ कृषि-विषयक शिक्षा की प्रधानता होनी चाहिए। निःशुल्क रात्रि पाठशालाओं और फुरसत की ऋतुओं पाठशालाओं की, जो उस समय खुलें, जब किसानों की खेती के काम की भीड़ न हो, गांवों में भारी आवश्यकता है।

प्रारम्भिक स्कूलों में प्रकृति-पाठ का प्रबन्ध होना चाहिए। और प्रत्येक मिडिल स्कूल के साथ कुछ खेत लगे रहने चाहिए, जिनमें लड़के बागवानी तथा खेतों की कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकें।

सैमहिगिन बाटम साहब का कहना है फिलीपाइन द्वीप, कनाडा और अमरीका की दक्षिणी रियासतों के जिन स्कूलों में उन्होंने कृषि-विषयक शिक्षा दी है; किसानों के जीवन की काया-पलट करदी है। गाँवों की कृषि-पाठशालाओं के जरिये ही

वहाँ के वयस्क किसानों ने नये और वैज्ञानिक तरीकों का महत्त्व पहचान कर खेती करना सीखा और अपनी तरक्की की, परन्तु हिन्दुस्तान में अभी तक एक इस प्रकार का शिक्षा-क्रम ही नहीं तैयार हो सका, जो गांवों के लिए उपयोगी हो। अब तक गाँवों के मदरसे में जो पढ़ाई पढ़ाई जाती है वह शहरों के मदरसों के ही काम की है। सब से पहले इस बात की आवश्यकता है कि ग्रामीण-जीवन के उपयुक्त ग्रामीण-शिक्षा का कार्य-क्रम तैयार किया जाय। जब तक अच्छी तरह सोच-विचार कर तैयार किया हुआ कोई निश्चित शिक्षा-क्रम न हो तब तक अपार रुपया खर्च करने पर भी कहने योग्य तरक्की नहीं हो सकती। प्रत्येक कृषि-कालेज और केन्द्रीय कृषि-पाठशाला में कृषक-महिला-विभाग होना चाहिए जिनमें स्त्री अध्यापिकाएँ कृषक महिलाओं को गृह-प्रबन्ध-शास्त्र की शिक्षा दें जिससे वे घर को साफ-सुथरा और सुखमय रख सकें, बच्चों का लालन-पालन सुचारु रूप से कर सकें, अच्छा और स्वास्थ्यप्रद भोजन तैयार कर सकें। जब तक हिन्दुस्तान के गाँवों की बालाएँ और महिलाएँ उन घरों से सन्तुष्ट रहेंगी, जिनमें कि वे आज-कल रहती हैं, तब तक हिन्दुस्तान की तरक्की की बहुत कम आशा है। हिन्दुस्तान के गाँवों की उन्नति के लिए कोई भी योजना क्यों न तैयार हो जाय, गाँवों की लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा उस योजना का मुख्य आधार होगी। ग्रामीण स्त्रियों की शिक्षा द्वारा ही गाँवों की दशा उन्नत की जा सकती है। इसलिए कृषि-कालेजों और केन्द्रीय कृषि-पाठशालाओं में ऐसे क्वार्टरों का प्रबन्ध रहना चाहिए, जिनमें विवाहित विद्यार्थी सपत्नीक रह सकें और वहाँ पति-पत्नी दोनों साथा-साथ शिक्षा पा सकें। संयुक्त प्रान्तीय जमींदार ऐसोसिएशन की राय है कि प्रत्येक जिले में कम-से-कम एक कृषि-पाठशाला अवश्य होनी

चाहिए। अमेरिका में केन्द्रीय सरकार-द्वारा सञ्चालित कृषि विषयक अनेक संस्थाओं के अतिरिक्त प्रत्येक रियासत में एक-एक कृषि-कालेज, तथा कृषि-विषयक खोज-विभाग है और इन खोज-विभागों के आधीन एक-एक फार्म है।

जो एकाध कृषि-कालेज और पाठशाला हैं भी, उनकी शिक्षा विशेष उपयोगी नहीं सिद्ध हुई। रायबहादुर लाला ईश्वरी-सहाय की राय है कि इन कालेजों और स्कूलों में जो विद्यार्थी पढ़ने जाते हैं वे केवल सरकारी नौकरी करने के उद्देश से जाते हैं। खेती की शिक्षा पाकर स्वयं खेती करने के लिए बहुत कम जाते हैं। माननीय लाला सुखबीरसिंह की राय है कि इन कालेजों और पाठशालाओं में पढ़े हुए अधिकांश विद्यार्थी बेकार मारे-मारे फिरते हैं, और सरकारी नौकरी की तलाश में रहते हैं। कुछ साल तक तो यह क्रम रहा कि जितने विद्यार्थी पास हुए उन सब ने सरकारी नौकरी करली, जो बच रहे वे उसकी ताक में बैठे रहे। चौधरी मुख्तारसिंह एम० एल० ए० का कहना है कि कृषि-विषयक शिक्षा की सुविधा के विस्तार की अत्यन्त आवश्यकता है। वर्त्तमान प्रबन्ध न तो काफी ही है, न किसी काम का ही।

लोक-सेवक इस बात का प्रयत्न करें कि कृषि-विषयक शिक्षा की आवश्यकता की पूर्ति का पर्याप्त प्रबन्ध हो। वे इस बात पर भी विचार करें कि वर्त्तमान शिक्षा-क्रम में क्या-क्या सुधार होने चाहिए? उसमें जो दोष बताये जाते हैं वे हैं या नहीं? इनके अलावा भी उनमें कुछ दोष हैं या नहीं? उनमें जितने दोष हैं वे कैसे दूर किये जा सकते हैं। यूरुप और अमेरिका के कई देशों में किसानों को उनके फार्मों पर कृषि-विषयक शिक्षा दी जाती है। यह शिक्षा-पद्धति वहाँ बहुत ही उपयोगी साबित

हुई है। लोक-सेवी प्रयत्न करके इस या इसी प्रकार की उपयुक्त पद्धति को यहाँ भी जारी करा सकते हैं। वे बड़े-बड़े किसानों और छोटे-छोटे जमींदारों के लड़कों को इस बात के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं कि वे कृषि-पाठशाला और कृषि-कालेज में शिक्षा पाकर स्वयं खेती कर के दूसरों के लिए आदर्श बनें। कृषि-विभाग की ओर से प्रचार और प्रदर्शनों द्वारा कृषकों को खेती के उन्नत और वैज्ञानिक ढङ्गों का ज्ञान कराते हैं; परन्तु अभी प्रचार के ये प्रयत्न बहुत ही अपर्याप्त हैं। कृषि-विभाग द्वारा प्रकाशित कृषि-विषयक समाचार-पत्र का प्रचार चार करोड़ की आबादी में एक हजार भी नहीं। "पायोनियर" में एक लेखक ने लिखा था कि एक बड़े सरकारी अफसर ने लेखक से कहा कि अभी तो एक फीसदी किसानों को भी यह पता नहीं कि कृषि-विभाग नाम की भी कोई संस्था है। इस विभाग के डिप्टी डायरेक्टर डाक्टर पार ने स्वयं यह स्वीकार किया था कि पाँच फीसदी से ज्यादा किसानों तक कृषि-विभाग की पहुँच नहीं। इन्हीं डाक्टर पार का कहना है कि प्रदर्शन के कार्य की मुख्य रेखाएँ इस प्रकार हैं—(१) बीज बाँटना, (२) उन्नत औजारों का प्रचार तथा किसानों को खेती के उन्नत तरीके बताना, (३) प्राइवेट फार्मों का संगठन, (४) मौजूदा कुओं की तरक्की और ट्यूब वेल लगवाना। (५) प्रदर्शन फार्मों को स्वयं पर्याप्त बनाना। इन फार्मों से बड़े-बड़े लोगों को—उन लोगों को ही—फायदा होता है, जो फार्म खोल सकते हैं, छोटे किसानों को इनसे कुछ फायदा नहीं पहुँचता। लोक-सेवक उत्तम बीज बाँटने में विभाग की सहायता कर सकते हैं। किसानों को उत्तम बीज के, उन्नत औजारों के और खेती के उन्नत ढंगों के लाभ समझा कर उन्हें अच्छा बीज बोने, अच्छे औजारों से काम लेने, और उन्नत ढङ्ग से खेती करने को प्रेरित कर के उनके

लिए विभाग द्वारा उत्तम बीज, उत्तम औजार आदि का प्रबन्ध कर सकते हैं।

चारे, ईंधन, अनाज आदि के सम्बन्ध में रेलवे से लिखा-पढ़ी कर के इन चीजों के किराए कम कराने का प्रयत्न करना भी ग्रामीणों की बहुत महत्त्वपूर्ण सेवा है। क्योंकि इन चीजों का किराया ज्यादा होने की वजह से किसानों को काफी नुकसान पहुँचता है।

वर्षा-मौसम वगैरः बताने वाले महकमे से किसानों को जितना फायदा पहुँचना चाहिए, उतना फायदा अभी तक नहीं पहुँच पाता। लोक-सेवी पत्रों में इस महकमे की रिपोर्ट शीघ्राति-शीघ्र प्रकाशित कर के तथा हाट-बाटों, डाकखानों, बाजारों तथा मदरसों और मवेशी-खानों पर इन रिपोर्टों को लिख कर टँगवाने या छपी रिपोर्ट चिपकवाने का प्रबन्ध कर के ग्रामीणों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकते हैं। लोक-सेवक किसानों की ओर से यह बात भी उठा सकते हैं कि कृषि-विभाग को किसान जितने पत्र भेजें उन पर डाक महसूल नहीं लगना चाहिए। बेचारे बहुत से ग्रामीणों को यह भी पता नहीं कि ऐसे कौन-कौन से कानून हैं, जिनमें उनके हितों की थोड़ी-बहुत रक्षा होती है। उदाहरण के लिए एग्रीकलचरल लोन्स एक्ट और युजरियस लोन्स एक्ट का कितने किसानों को पता है? कितने किसान इनसे फ़ायदा उठाते हैं? लोक-सेवकों का कर्त्तव्य है कि वे किसानों को उन सब कानूनों का ज्ञान करा दें, जो उनके फायदे के हैं और इन कानूनों से फायदा उठाने में किसानों को मदद दें। तकावी से किसानों को बहुत फायदा होता है। आड़े वक्त में तकावी उनके काम आती है; परन्तु ग्रामीणों के अज्ञान और बेबसी के कारण तकावी किसानों के लिए वरदान

साबित होने के बदले एक अभिशाप साबित हो रही है। बैङ्किङ्ग कमेटी की रिपोर्ट ने इस बात को मञ्जूर किया है कि तकावी का कुल रुपया किसानों तक नहीं पहुँच पाता। उसका कुछ हिस्सा बीच वाले लोग खा जाते हैं। फिर तकावी की वसूली के वक्त किसानों को जो भेंट देनी पड़ती है, और जो मुसीबत उठानी पड़ती है वह अलग। यदि लोक-सेवक किसानों को उनके अज्ञान और बेबसी के कारण होने वाली हानि से बचा लें, तो प्रत्येक किसान को माली लाभ पहुँचे और किसानों को हजारों का फायदा हो। उच्चाधिकारी भी इस काम में लोक-सेवकों को सहायता देंगे। इस विषय के एक विशेषज्ञ का कहना है कि तकावी का दस फीसदी पटवारी, कानूनगो, माल क्लर्क और तहसील के चपरासी की अन्टियों में चला जाता है। वह देर में मिलती है, सो अलग। अगर लोक-सेवक प्रयत्न करके यह दस फीसदी बचा दें, तो किसानों को कितना लाभ हो? ग्रामीण लोग उनके कितने कृतज्ञ हों?

सहयोग समिति विभाग

जो बात तकावी के लिये कही गई है, वही सहयोग समितियों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। सिद्धान्ततः इस बात को सभी मानेंगे कि सहयोग-समितियाँ दीन-हीन ऋण-ग्रस्त किसानों के लिए ईश्वरीय विभूतियाँ हैं; परन्तु अपने अज्ञान और अपनी बेबसी के कारण इन ईश्वरीय विभूतियों से भी किसानों को बहुधा लाभ के बदले हानि उठानी पड़ती है। यहाँ तक कि सहस्र कसानों ने सहयोग-समिति से एक बार कर्ज लेकर भविष्य के लिए सहयोग-समितियों से कर्ज न लेने की शपथ भी खा . अर इस प्रकार बहुत-सी सहयोग-समितियाँ

टूट गई। अगर कोई या कुछ लोक-सेवक किसानों को सहयोग-समितियों के लाभ समझा कर उन्हें सहयोग-समितियाँ कायम करने के लिये प्रेरित करें और समितियों के उच्चाधिकारियों से मिल कर किसानों को उन हानियों से बचा लें, जो निम्न-कार्यकर्त्ताओं की गलती और बदनीयती की वजह से किसानों को उठानी पड़ती हैं, तो वे भारी पुण्य के भागी बनें और उन्हें जीवन भर के लिए सुन्दर सेवा-कार्य मिल जाय। अपढ़ और अज्ञानी होने के कारण, कानून की बारीकियाँ न जानने के कारण कभी-कभी किसानों का इन समितियों द्वारा भी बहुत नुकसान होता है। लेखक को किसानों को होने वाले इन नुकसानों का निजी अनुभव है। इन किसानों का करुण-क्रन्दन सुन कर उसने हार्दिक दुःख अनुभव किया है। इसलिए वह निजी ज्ञान के आधार पर यह कह सकता है कि सेवा का यह कार्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। और की तो बात ही क्या है, संयुक्त-प्रान्तीय सरकार के महकमे माल के मेम्बर स्वयं मिस्टर लेन ने यह कहा है कि किसान लोग तकावी वसूल करने वालों को पाँच से लेकर दस रुपये तक देकर अपना पिण्ड छुड़ाते हैं। ऐसे उदाहरण भी देखने में आये हैं कि किसान देता कुछ है, उसको रसीद कुछ दी जाती है। जहाँ रसीद में रकम ठीक लिख दी जाती है, वहाँ जिस किश्त की पहले रसीद नहीं दी गई थी, उस किश्त की वसूलयावी में मौजूदा रकम दर्ज कर ली जाती है। जिस किसान पर कोप हो, भेंट न मिलने के कारण और किसी कारण से, उसे सबक सिखाने के लिए, दूसरे किसानों को भड़का कर सब का कर्ज उसी से वसूल करने की चेष्टा की जाती है! ये बातें होती हैं और हो सकती हैं। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। ऐसी दशा में स्वयं स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में लोक-सेवकों को सेवा के लिए सहस्रों सुअवसर मिल

सकते हैं और लोक-सेवकों का कर्त्तव्य है कि वे अपने प्रयत्नों से सहयोग-समितियों को किसानों के लिए पूतना न बनने दें। उन्हें ईश्वरीय विभूति बनाए रक्खें।

संयुक्तप्रान्तीय बैङ्किङ्ग जाँच कमेटी का कहना है कि तकावी देते वक्त शुरू की जो जाँच होती है, उसकी वजह से गरीब और सुपात्रों को तकावी नहीं मिल पाती। उन लोगों को मिलती है, जो या तो पटवारी की भेंट-पूजा दे दें, या उसके मित्र हों, या उसकी मित्रता खरीद लें।

तकावी के लिए सिफारिश करने से पहले सिफारिश की फीस ले ली जाती है। जमीन की सही कराते वक्त अलग देना पड़ता है, और कर्ज लेते वक्त अलग। सिपाही, नवीस खजाञ्ची सभी को उनका हक देना पड़ता है। कर्ज अदा करते वक्त अमीन और चपरासी को खाना देना पड़ता है। उच्चाधिकारियों के बहुत कुछ देख-रेख रखने पर भी ये बुरी बातें बन्द नहीं हो सकीं। जिसका परिणाम यह है कि तकावी में कर्ज का खर्चा पचीस फीसदी कूता जाता है। यानी अगर कोई किसान दो सौ रुपये की तकावो ले तो उसके पास डेढ़ सौ ही पहुँचते हैं। अकेले संयुक्तप्रान्त का तकावी का सालाना बजट साढ़े बारह लाख है। इसमें से बैङ्किङ्ग कमेटी के हिसाब से तीन लाख सालाना बीच वाले हड़प जाते हैं। इन बुरी बातों से किसानों को बचा कर देश भर के ग्रामीणों को करोड़ों साल का लाभ पहुँचाना कोई कम महत्वपूर्ण सेवा कार्य नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार संयुक्तप्रान्तीय सरकार ने १९२६ के शाही कृषि-कमीशन के सामने जो आवेदन पत्र पेश किया था, उसके तीन-सौ इकहत्तरवें पैराग्राफ में कहा है कि, "कई सहयोग समितियों में बार-बार गड़बड़ी हुई। इनमें डेढ़ सौ समितियाँ

तो बदायूँ जिले में तोड़नी पड़ीं। बनारस और सुल्तानपुर में भी कई समितियों का यही हाल हुआ। अनेक मैनेजिङ्ग डाय-रेक्टरों पर बेईमानी करने का मुकदमा चलाना पड़ा। जिन समि-तियों में स्वयं सरकार के साथ और सरकार की जानकारी में यह होता है, उनमें अपढ़-कुपढ़ और सब तरह से अपाहिज किसानों के साथ क्या होता होगा, इसकी कल्पना करना कोई कठिन काम नहीं है।

लोक-सेवक ग्रामीणों को बेहतर जीवन व्यतीत करने के लिए, अच्छा बीज पैदा करने और बेचने के लिए, खेती के उत्तम औजार खरीदने और बेचने के लिए, कम ताकत वाले गन्ना पेरने के कोल्हू की मशीनें लगाने के लिए, नई मशीनों से रबी की फसल पर दायें चलाने के लिए, पम्पों और ट्यूबवेलों से खेतों की सिंचाई करने के लिए, शहरों में दूध पहुँचाने के लिए, गाँवों से दूध इकट्ठा करने वाली योजनाओं को कार्य रूप में परिणत करने के लिए, पक्के कुओं को सुधार कर उनको अधिक उप-योगी बनाने के लिए सहयोग-समितियों की स्थापना करने को प्रेरित और प्रोत्साहित कर सकते हैं।

सिंचाई के महकमे से

ग्रामीणों का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। नहर के महकमे से जहाँ किसानों को असीम लाभ है वहाँ उन्हें उससे बहुत-सी शिकायतें भी हैं। पानी वक्त पर नहीं मिलता; काफी पानी नहीं मिलता। पानी मिलेगा या नहीं, मिलेगा तो कितना मिलेगा; इस बात की निश्चित सूचना किसानों को नहीं दी जाती। खरीफ में शुरू में पानी परेह के लिए ठीक मिलता है, बाद को नहीं। रबी में पानी की कमी की बहुत सख्त शिकायत रहती

है। कुलाबे ऊँचे-नीचे कराने की रिपोर्ट करने के लिए पतरौल किसानों से रुपया ऐंठते हैं। फी किसान फी फसल फसलाने का एक रुपया लेते हैं, सो अलग। बार-बन्दी से भी किसानों को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। एक कुलाबे से चार-सौ बीघे की सिंचाई होती है। इन चार-सौ बीघों में कई किसानों के खेत होते हैं। उनकी सिंचाई के लिए नम्बर बार सिलसिला बाँध दिया जाता है कि पहले ये खेत सींचे जाँयेंगे फिर वे। इस प्रबन्ध में जबरदस्तों की बन आती है, गरीब और कमजोरों को हानि उठानी पड़ती है। इसी बार-बन्दी की वजह से बहुधा किसानों में आपस में फौजदारी, सिर फुटौवल हो जाती है जिसमें लोग हताहत होते हैं, जेल काटते हैं और मुकदमेबाजी में बरबाद होते हैं। संयुक्त प्रान्त के सरकारी पब्लिक-विभाग की सिंचाई वाली शाखा के सेक्रेटरी डार्ली साहब का स्वयं यह कहना है कि अहलकारों द्वारा कुछ-न-कुछ गड़बड़ियाँ तो हमेशा ही होती रहती हैं। रिश्वतखोरी और धोखेबाजी भी होती है पर पकड़े जाने पर रिश्वत लेने या धोखा देने वाले अहलकार बरखास्त कर दिये जाते हैं। आगरा के एक प्रसिद्ध किसान श्रीयुत आदिराम सिंहल ने शाही कृषि कमीशन के सामने गवाही देते हुए कहा था कि नहर के पानी का बटवारा बहुत ही असन्तोष-जनक है। जब फसल को पानी की जरूरत होती है, तब पानी उचित समय पर नहीं मिलता। किसान को पहले से इस बात का कुछ भी पता नहीं चल पाता कि महकमा नहर कितना पानी दे सकेगा। इसलिए वह यह तय नहीं कर सकता कि कौन-सा नाज बोये और कितने रकबे में खेती करे। बहुत से किसानों को ज्यादा रकबे में खेती बो देने के बाद सब खेतों को पानी न मिलने की वजह से बाकी खेतों की जुताई-बुवाई आदि की मेहनत और बीज का नुकसान उठाना पड़ता है।

आवश्यकता इस बात की है कि हर फसल पर तथा हर महीने नहर कितना पानी दे सकेगी, इसका ठीक-ठीक कार्य-क्रम छाप कर किसानों को बताया जाना चाहिए। आनरेबिल लाला सुखबीरसिंह ने भी यही शिकायत की कि किसानों को जब पानी की जरूरत होती है, तब उन्हें नहरों से पानी नहीं मिलता। जब पानी मिलता है, तब भी काफी नहीं मिलता। चौधरी मुख्तारसिंह एम० एल० ए० का उलाहना है कि पानी मिलने का कोई निश्चित कार्य-क्रम न होने की वजह से ईख की खेती को गर्मियों में कभी-कभी महीने भर तक पानी नहीं मिलता। इस समय में आम तौर पर सब फसल सूख जाती है। जब पानी बहुत देर में आता है और जल्दी ही बन्द हो जाता है तब फसल को बहुत नुकसान पहुँचता है। नहर के कुलाबे और बम्बे कभी ठीक तरह से साफ नहीं होते। उनकी सफाई का ठेका बड़े ठेकेदारों को दिया जाता है। बड़े ठेकेदार अपना काम छोटे ठेकेदारों के सुपुर्द कर देते हैं। इस गड़बड़ी को बन्द करने के लिए सफाई की निगरानी का काम गाँव की पञ्चायत के सुपुर्द होना चाहिए। भिन्न-भिन्न जगहों पर कुलावे कितना पानी दे रहे हैं इस बात की ठीक रिपोर्ट नहीं भेजी जाती। पतरौल अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते। मुँह पर नाप करके अन्दाजा लगा लेते हैं कि दूर जाकर कितना पानी निकलता होगा। और यही अटकल-पच्चू रिपोर्ट महकमे को भेज देते हैं। बेचारे किसान इनचार्ज अफसरों को अर्जियों पर अर्जियाँ देते हैं परन्तु उनकी अर्जियाँ बिना विचार किये रद्दी की टोकरी में डाल दी जाती हैं। कर्नल ई. एच. कौल ने पञ्जाब में शाही-कृषि कमीशन के सामने गवाही देते हुए कहा था कि अगर महकमा किसानों की शिकायतों की सुनवाई करे, तो कहीं कोई चारा नहीं। डिप्टी कमिश्नर के पास जाने पर वे कह देते हैं कि हमें दुःख है

कि इस मामले में हमारा कोई अख्तियार नहीं है। फ़ाइनेंस मेंबर तक को चीफ इञ्जीनियर कोई जवाब नहीं देते। लेखक को भी यह अनुभव है कि आगरा के कलक्टर के पास पुकारने पर उन्होंने किसानों से कहा कि नहर के मामले में हमारा कुछ अख्तियार नहीं। जब बड़ों बड़ों का यह हाल है, तब बेचारे निरीह और असहाय ग्रामीणों की क्या दशा होती होगी? लोक-सेवी नहर के महकमे के सम्बन्ध में किसानों की जो शिकायतें हैं, उन्हें दूर करा कर अहलकारों की ज्यादतियों को उच्चाधिकारियों के पास पहुँचाकर, उनसे किसानों को वचा कर ग्रामीणों को लाखों का फायदा पहुँचा सकते हैं, उनका बहुत कुछ हित सम्पादित कर सकते हैं।

साथ ही लोक-सेवक जमींदारों और बड़े-बड़े किसानों को यह बता कर कि पक्के कुएँ बनवाने में, ट्यूब वेल लगवाने में रहट लगवाने में उन्हें सरकारी सिंचाई-विभाग से सब तरह की मदद मिल सकती है, खेती की तरक्की के काम को मदद पहुँचा सकते हैं, महकमे की उपयोगिता बढ़ा सकते हैं और किसानों को लाभ पहुँचा सकते हैं।

संयुक्तप्रान्तीय कृषि-विभाग के डिप्टी डाइरेक्टर डाक्टर पार के शब्दों में खेती के लिए पानी के बाद सब से अधिक जरूरत काफी खाद की है। पश्चिमी जिलों के लिए सब से अच्छी खाद हरी खाद है और हरी खाद में भी सब से अच्छी खाद सनाई साबित हुई है। लोक-सेवकों को चाहिये कि वे खाद के सम्बन्ध में सरकारी खोजों के फल किसानों तक पहुँचायें और इस सम्बन्ध में सरकारी महकमे से किसानों को ज्यादा-से-ज्यादा जितनी मदद मिल सकती हो, दिलवावें। किसानों को यह भी बतावें कि गोबर और जानवरों के पेशाब

की खाद कितनी कीमती होती है। किसानों को इस खाद का उपयोग सिखावें, और उनको इस बात के लिए राजी करें कि वे गड्ढे बना कर उसमें अपनी खाद जमा करें जिससे खाद का कोई हिस्सा बरबाद न होने पावे और गाँव में गन्दगी तथा उस गन्दगी के फलस्वरूप बीमारी न फैलने पावे। किसानों को खाद की उपयोगिता भी भली भाँति बताई जानी चाहिए। बर्दमान के सरकारी फार्म ने खाद के सम्बन्ध में कई प्रयोग किये थे। उन प्रयोगों का फल यह हुआ था कि बिना खाद के एक एकड़ में तेरह सौ चौहत्तर पौण्ड नाज और इक्कीस सौ चौहत्तर पौण्ड भूसा पैदा हुआ था। सौ मन गोबर की खाद देने पर उसी एकड़ में नाज पैंतीस सौ छप्पन पौण्ड और भूसा चौवालीस सौ उनचास पौण्ड पैदा हुआ। यानी दुगुनी से ज्यादा पैदावार हुई। गोबर के बजाय तीन मन हड्डी के चूरे की और तीस सेर सोरे की खाद देने पर पैंतालीस सौ नवासी पौंड नाज और इकसठ सौ बहत्तर पौंड भूसा पैदा हुआ, यानी तिगुने से भी कहीं ज्यादा।

जङ्गली जानवरों, बीमारियों, चूहों, टिड्डियों वगैरह से किसानों को उनकी फसल की रक्षा करने का रास्ता दिखाना और रक्षा के कार्य में उन्हें सरकारी विभागों, अधिकारियों, आदि की मदद पहुँचवाना भी ग्रामीणों की सेवा का अति उत्तम कार्य है। बहुधा गाँव वाले चूहों वगैरह के नुक़सान से अपने खेतों को बचाने के लिए लोक-सेवकों से सलाह और सहायता माँगते हैं। लोक-सेवकों का कर्तव्य है कि वे इस विषय की पूरी-पूरी जानकारी रक्खें और किसानों को ठीक सलाह और भरपूर सहायता दें। पंजाब के कृषि-विभाग के डाइरेक्टर मिस्टर मिलने (Milne) का कहना है कि गाँव वाले हमसे कहते हैं कि तुम हमारी और हमारे जानवरों की बीमा-

रियों के इलाज का तो इन्तजाम करते हो; परन्तु हमारी फसल की बीमारियों के इलाज का उचित प्रबन्ध क्यों नहीं करते। पंजाब में चूहे मारने के लिए उन्होंने गुड़ और घास के बीज में स्ट्रिकनाइन हाइड्रोक्लोराइड (Strych nine hydro chloride) मिला कर दी। गुड़ के लोभ से चूहे उन्हें खा गये। सात-सौ इक्कीस औंस में सत्तर लाख चूहे मरे। प्रति एकड़ तीन पाई खर्च हुआ। ऊपर रहने वाले चूहों के लिए कैलसियम साइ-नाइड धुएँ के साथ-साथ दी गई। सवा तीन पाई फी एकड़ खर्च पड़ा। सेइयों को कैलिसियम साइनाइड से भगाया गया। उनका खर्च साढ़े तीन आना फी एकड़ पड़ा। लोक-सेवक इन बातों की जानकारी भी रक्खें, तो किसानों का लाखों का नुकसान बचा सकते हैं।

लोक-सेवकों को यह भी चाहिए कि वे किसानों को सस्ते नये औजारों के लाभ बता कर उनके लिए उन औजारों का प्रबन्ध कर दें। किसानों को इन औजारों का इस्तेमाल और उनकी मरम्मत करना सिखाने के लिए छोटे-छोटे कार-खानों या शिक्षालयों का प्रबन्ध करें। अथवा जिले-जिले में इन औजारों का इस्तेमाल या मरम्मत करना सिखाने वाले शिक्षकों की एक लारी मय इन औजारों तथा अन्य उपयोगी आव-श्यक वस्तुओं के निश्चित और घोषित कार्य-क्रम के अनुसार जिले भर में दौरा करके किसानों को इनका इस्तेमाल करना तथा इनकी मरम्मत करना सिखादें। जहाँ मैस्टन हल उप-योगी साबित हो, वहाँ मैस्टन हलों का प्रचार करें। क्योंकि मैस्टन हल की मरम्मत किसान स्वयं कर सकते हैं, मरम्मत ही नहीं वे उसे करीब-करीब बना भी सकते हैं।

किसानों की मदद के लिए इतनी बातें तो आसानी से की

जा सकती हैं। बेहतर हलों का इस्तेमाल बढ़ाना जिससे बीज की क्यारी बनाने में कम मेहनत पड़े। जहाँ के कुएँ ज्यादा पानी दे सकें, वहाँ तेल वगैरह के एञ्जिनों की ताकत से पानी खींचने का काम लिया जाय। दायें की मशीनों का प्रचार जिससे किसानों को मई-जून में खेतों की जुताई करने का वक्त मिल सके। ईख पेरने के कोल्हू तेल के एञ्जिनों से चलाये जाँय, तो बैलों का काम बहुत-कुछ हलका हो जाय और वे दूसरे जरूरी कामों में लगाये जा सकें। जहाँ पानी इतना हो कि तेल के एञ्जिन काम में लाये जा सकें वहाँ पानी खींचने की सस्ती मशीनों का प्रचार। मैस्टन हल की एक खूबी यह भी है कि वह देशी हल के बहुत-कुछ समान है। हल्का है और सस्ता भी। मुलायम जमीन पर अच्छा काम करता है।

पशुओं की चिकित्सा

के सिलसिले में भी लोक-सेवक गाँववालों की सेवा तथा सहायता करके लाखों-करोड़ों का नुकसान हर-साल बचा सकते हैं। संयुक्तप्रान्तीय सरकार के पशु-चिकित्सा-सम्बन्धी सलाहकार कप्तान हिकी ने उन्नीस-सौ-छब्बीस के शाही कृषि-कमीशन के सामने गवाही देते हुए यह कहा था कि अगर पशु-चिकित्सा का काफी इन्तजाम हो तो आधे पशु मरने से बचाये जा सकते हैं और इससे सूबे की हर साल उनसठ लाख छियानवे हजार दो सौ बीस रुपये के नुकसान की बचत हो सकती है। जब एक सूबे का यह हिसाब है, तब हिन्दुस्तान-भर में तो करोड़ों रुपये साल की बचत बैठेगी। इस सम्बन्ध में लोक-सेवक कई प्रकार से अपने को उपयोगी सिद्ध कर सकते हैं। वे डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के मेम्बरों तथा अधिकारियों का ध्यान इस काम के महत्व की ओर दिला कर जानवरों के अस्पतालों को अच्छी

जगह खुलवा सकते हैं। अस्पताल में बीमार जानवरों के रहने के लिए जगह का काफी इन्तजाम करा सकते हैं। संक्षेप में इस उपयोगी काम के प्रति उनकी शोचनीय उदासीनता को दूर कर के गाँव वालों को काफी फायदा पहुँचा सकते हैं। इस महकमे के प्रबन्ध में इस समय इतनी कमी है कि पहले तो गाँव में मवेशियों की बीमारी फैलने पर तुरन्त उसकी रिपोर्ट ही नहीं होती। जब रिपोर्ट हो जाती है, तब पशु-चिकित्सक ऐसिस्टैण्ट डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से उस गाँव में जाने की इजाजत माँगता है। इजाजत मिलने पर वह वहाँ जाकर पता लगाता है कि बीमारी क्या है ? बीमारी का पता लगा लेने पर वह गाँव वालों को टीका वगैरः लगवाने के लिए राजी करता है, जब वे राजी हो जाते हैं, तब सफाखाने में लौट कर दवा के लिए तार देता है। जब दवा आ जाती है, तब इलाज के लिए जाता है। इस काम में एक महीना लग जाता है। तब तक मर्ज मरीजों को साथ ले कर अपने आप चला जाता है। ये बातें शाही कृषि-कमीशन के अधिकारी गवाहों द्वारा कही गयी थीं। लोक-सेवक इस बात का प्रबन्ध करें कि बीमारी होते ही तुरन्त उस हलके के मेम्बर को रिपोर्ट हो और उसका पत्र लेकर चेयरमैन अथवा सेक्रेटरी के द्वारा मवेशी के डाक्टर को गाँव जाने की इजाजत दिलायी जाय। उसे बीमारी भी बता दी जाय। दवा सफाखाने में हर वक्त मौजूद रहे, जिससे वह दवा साथ ले जा सके। गाँव वालों को टीका वगैरः लगवाने के लिए लोक-सेवक पहले ही से राजी कर लें। इस तरह बीमारी होने के दूसरे-तीसरे दिन से ही इलाज हो सकता है और जानवरों को मौत से होने वाला गरीब गाँव वालों का बहुत सा नुकसान बच सकता है। लोक-सेवक डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को इस बात के लिए भी राजी करें कि वे सस्ती और अनुभूत देशी दवाओं का इस्तैमाल करें।

राजा सर रामपालसिंह ने शाही कृषि-कमीशन के सामने कहा था कि उनकी भैंसे बीमार पड़ीं तो मवेशी के डाक्टर ने उसके इलाज के लिए बत्तीस रुपये का नुस्खा बताया जो लखनऊ में ही मिल सकता था। लेकिन एक देशी चिकित्सक ने कुछ पत्तियों में मुफ़ में ही इलाज कर दिया। इधर कप्तान हिकी ने अपनी गवाही में इस बात को स्वीकार किया कि देशी शालिहोत्री भी घोड़ों के इलाज में मवेशी के ऐसिस्टेन्ट डाक्टरों से ज्यादा हुशियार होते हैं। चौधरी मुख्तारसिंह की इस राय को भी डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को मानना चाहिए कि वे जानवरों की मामूली बीमारियों के लिए बनी-बनाई पेटेन्ट दवाएँ मुफ़ में बाँटें।

किसानों के पशुओं की उन्नति के लिए

भी सेवाव्रती बहुत कुछ कर सकते हैं। पशुओं की उन्नति की समस्या बहुत कुछ उनकी बीमारी और चारे की समस्या है। पशुओं की मृत्यु के कारण किसानों को भारी हानि उठानी पड़ती है। इतनी भारी कि पञ्जाब में किसानों की कर्ज की समस्या के विशेषज्ञ मिस्टर डार्लिङ्ग ने पशुओं की मौत को किसानों के कर्ज का एक मुख्य कारण माना है। और पशुओं की मौत के प्रधान कारण चारे की कमी और बीमारी हैं। बीमारी के दूर करने के सम्बन्ध में—पशुओं के इलाज के सम्बन्ध में—ऊपर कहा जा चुका है। चारे के सम्बन्ध में लोक सेवकों को चाहिए कि वे कृषि विभागों और प्रान्तीय सरकारों को इस बात के लिये प्रेरित करें कि वे इस समस्या को हल करके ही दम लें। पंजाब सरकार के पशु-धन विशेषज्ञ मिस्टर ब्रैनफोर्ड ने शाही कृषि कमीशन के सामने कहा था अगर सरकार अकाल के वक्त में बेचने की गरज से चारा खरीद लिया करे, तो किसान ज्यादा चारा बोने लगेंगे।

इस स्कीम की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सरकार चारा इतनी महँगी दर पर खरीदे कि चारे की खेती किसानों के लिए कम-से-कम इतनी मुफीद तो हो, जितनी कपास की खेती। लोक-सेवक किसानों को यह बतावें कि वे पशुओं की जरूरत का ध्यान रख कर नाज बोवें—ऐसे नाज बोवें, जिनमें भूसा ज्यादा हो। रेलवे से चारे के किराये में इतनी कमी कराई जाय कि वह एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाया जाने पर बहुत महँगा न पड़े। मोरलैण्ड के कथनानुसार गाँवों में पशु पालने वाले ग्वालों आदि को समस्त सम्भव सुविधाएँ, सब तरह की सहूलियतें दी जायँ। और पेशेवर पशु पालकों को भी मदद दी जाय। साथ ही चारागाहों का काफी इन्तजाम किया जाय।

कृषि-विभाग की तरफ से बहुत ही सस्ते दामों और सहूलियतों पर अच्छे साँड़ों के बाँटने का प्रबन्ध है। लोक-सेवक गाँव के जिम्मेदार सज्जनों को साँड़ मँगाने और फिर उन साँड़ों की देख-भाल करने और उनसे अधिक-से-अधिक लोगों को पूरा लाभ पहुँचाने के लिए राजी करके पशु-पालन के कार्य में खासा अच्छा योग दे सकते हैं। वे गाँवों के खुशहाल लोगों को इस बात के लिए भी राजी कर सकते हैं कि वे अपने प्यारों और पूज्यों की स्मृति में देशी बुरे साँड़ छोड़ने के बदले इन्हीं साँड़ों को छोड़ें और गाँव वालों को इस बात के लिए तैयार करें कि वे इन साँड़ों के खाने-पीने का और इनमें खेतों के नुकसान का समुचित प्रबन्ध मिल कर अपनी पञ्चायत द्वारा करें। निकम्मे साँड़ों की संख्या कम करके उनको निर्वंश करने के काम में भी लोक-सेवक गाँव वालों का अनुराग उत्पन्न कर सकते हैं।

घी-दूध, नाज वगैरः में मिलावट के खिलाफ जो कानून हैं,

उनकी जानकारी हासिल कीजिए। उन कानूनों का ज्ञान लोगों में फैला कर उक्त कानूनों में जहाँ तक हो सके, वहाँ तक मिलावट रुकवाइये और अगर कानून इस काम के लिए कारगर न हो, तो उस कानून में उचित संशोधन कराने के लिए लोक-मत तैयार कीजिए। कुछ समय तक तो मिलावट की रोक इतनी नाकाफी थी कि एक मुसल्मान जज ने यह साबित हो जाने पर भी कि घी में सूअर की चर्बी मिली हुई है मुल्ज़िम को छोड़ दिया। क्योंकि कानून के अनुसार मुल्जिम को सजा देने के लिए सिर्फ यही काफी न था कि उसमें सूअर की चर्बी मिलाई गई, बल्कि यह साबित होना चाहिए था कि सूअर की चर्बी स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। गाय की चर्बी की मिलावट साबित होने पर भी जज को अपराधी को बरी करना पड़ा। लोक-सेवकों का कर्त्तव्य है कि वे कानून में इस प्रकार के दोषों की ओर जनता और सरकार का ध्यान दिला कर उन्हें दूर करवावें। जब तक मिलावट दूर नहीं होती, तब तक घी-दूध के व्यवसाय की तरक्की नहीं हो सकती और जब तक घी-दूध के व्यवसाय में पर्याप्त लाभ नहीं होता तब तक पशु-पालन के प्रयत्नों को सफलता नहीं मिल सकती। यह बात विशेषज्ञ और अधिकारी गवाहों ने स्वयं शाही कृषि-कमीशन के सामने कही हैं। पञ्जाब के कृषि-रसायन-शास्त्र के सरकारी विशेषज्ञ डाक्टर पी० ई० लैण्डर ने कहा है कि सरकार खनिज तेलों की आमद को रोकने में विफल होने से तमाम घी वगैरः में मिलावट को प्रोत्साहन देती है। क्योंकि ये खनिज तेल हिन्दुस्तान में ज्यादातर घी में मिला कर उसे सस्ता करने के काम आते हैं। म्यूनिसिपल बोर्डों और प्रान्तीय सरकारों को इस बात के लिए प्रेरित करो कि वे मिलावट को पूरी तरह से रोक दें।

जानवरों के भेजने के लिए रेलों में उचित प्रबन्ध

न होने और किराया अधिक होने की वजह से भी पशु-उन्नति के पुण्य-कार्य में भारी बाधा पहुँचती है। एडवर्ड कारवेण्टर लिमीटेड अलीगढ़ के मैसर्स एडवर्ड और वर्नर कैवेण्टर ने शाही कृषि कमीशन से कहा था कि दूध देने वाली गायों और भैंसों को मालगाड़ी के किराये भाड़े में ही एक्सप्रेसों से भेजने-मँगाने का अधिकार होना चाहिए। मालगाड़ी में दिल्ली से हावड़ा तक पहुँचने में पाँच दिन लगते हैं। इन पाँच दिनों में गर्मी के दिन हों, तो खास तौर पर गाय-भैंसों और उनके बच्चों को सख्त तकलीफ होती है। न तो दो से ज्यादा होने की वजह से वे गाड़ी में सो ही सकते हैं, न उनका दूध ही कढ़ सकता है। पाँच दिन और पाँच रात बिना दूध कढ़े लगातार रहने का असर बहुत बुरा होता है। इससे जानवरों को स्थायी हानि पहुँचती है। कभी-कभी शंटिङ्ग की गड़बड़ी से जानवर मर भी जाते हैं। दिल्ली से हावड़ा नौ-सौ-तीन मील है। इतने लम्बे सफर में आठ गाय-भैंसें मय अपने बच्चों के एक ही डिब्बे में भेजी जाती हैं। आज-कल मालगाड़ी से भेजने में इनका किराया दो-सौ-अठासी रुपया लगता है और एक्सप्रेस से भेजने में छ:सौ-बीस रुपया तेरह आना यानी दुगुने से भी ज्यादा। इसका फल यह होता है कि श्रेष्ठतम गाय-भैंस खरीदने वाले की आधी कीमत उनके मँगाने में ही मारी जाती है। श्रेष्ठ तथा उत्तम गायों और भैंसों की संख्या दिन-पर-दिन प्रति साल कम होती जा रही है। उसका एक कारण यह है कि जिन सूबों में उत्तम गायें और भैंसें पैदा होती हैं, वहाँ से वे खासे अच्छे दामों में खरीद कर बम्बई, कलकत्ते मँगा ली जाती हैं। वहाँ जाकर जब वे लात जाती हैं, तब कसाइयों के हाथों कटने के लिए बेच दी जाती हैं। क्योंकि वहाँ के ग्वाले उन्हें ठल्ल होने के दिनों में न तो खबा ही सकते हैं, न उन्हें किराये की ज्यादती की वजह से वापिस ही

भेज सकते हैं। अगर चारे और जानवरों के भेजने-मँगाने का रेल-भाड़ा कम हो, तो हजारों श्रेष्ठ गाय-भैंसें प्रति साल कटने से बच जायँ। लोक-सेवक इस सम्बन्ध में लोकमत निर्माण कर के किराया कम कराने का प्रयत्न करें।

घरेलू-धन्धे चेता कर

ग्रामीणों की बहुत कुछ सेवा की जा सकती है। प्रायः किसानों को खेती के काम से लगभग छः महीने छुट्टी रहती है। यदि इन दिनों के लिए उन्हें एक ऐसा धन्धा मिल जाय, जिसे वे आसानी से कर सकें और उसके बल पर चार पैसे कमा सकें, तो किसानों का परम उपकार हो। घरेलू धन्धों का चेताना कोई सरल काम नहीं है। जिस काम को इतनी बड़ी सरकार सफलतापूर्वक नहीं कर सकती, उसे कोई लोक-सेवक एकाकी या कुछ लोक-सेवक मिल कर भी कितना कर सकते हैं? परन्तु इस कार्य की एक दिशा में लोक-सेवक सहज ही में अत्यन्त उपयोगी सेवा कर सकते हैं और वह सेवा है खद्दर तथा चरखे का प्रचार करके। चरखे की खूबियाँ ये हैं कि उसका चलाना सीखने के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं। उसकी शिक्षा के लिए न ऐसे समय की जरूरत है न इतने खर्च की। स्वयं चरखा भी आसानी से बनवाया जा सकता है। उसकी अपनी कीमत भी कुछ नहीं होती। इसलिए गरीब किसानों के सामने पूँजी कहाँ से आवे यह सवाल भी नहीं आता। साथ ही इसमें नुकसान का भी खतरा नहीं है और घर की स्त्रियाँ फुरसत के वक्त में मजे से घर में बैठी हुई इज्जत के साथ इस काम को कर सकती हैं। यह काम उनके धार्मिक भावों से प्रतिकूल भी नहीं है, प्रत्युत उनकी परम्परा के अनुकूल है। अपने खेत का या गाँव का ही कपास लेकर उसे ओटना, स्वयं धुनना या गाँव

के धुनके से धुना लेना, उसकी पोइयाँ बना कर सूत कातना और उस सूत को गाँव में ही या आस-पास के गाँव के किसी जुलाहे से बुनवा कर उसके कपड़े बुनवा लेना कोई कठिन काम नहीं, लेकिन इस काम से करोड़ों गाँव निवासियों को सहज ही में एक धन्धा मिल सकता है, जिससे वे चार पैसे पैदा कर सकते हैं और अपने कपड़े की समस्या हल करके कपड़े का बजट-खर्च घटा सकते हैं। लोक-सेवक लोगों को चरखा चलाने के लिए—सूत कातने के लिए प्रेरित करें और उनका सूत बिकवा अथवा कतवा कर उन्हें प्रोत्साहन दें। साथ ही स्वयं उस कपड़े को पहन कर उनके सामने अपने हाथ का कता-बुना कपड़ा पहनने का आदर्श रख सकते हैं। इस काम में वे अखिल भारतीय चरखा-सङ्घ से भरपूर—सब तरह की सहायता ले सकते हैं। मध्यप्रान्त का साअली गाँव सात-सौ मील में बसे हुए ऐसे एक सौ चालीस गाँवों का केन्द्र है जिसमें अट्ठाईस सौ नर-नारियों को चरखे आदि द्वारा चार पैसे रोज मिल जाते हैं। दो सितम्बर १९३३ के "लिटरेरी डाइजेस्ट" के एक लेख से मालूम होता है कि न्यूयार्क स्टेट डिपार्टमेन्ट की होम क्रैफ्ट लीग चरखे कता कर तथा खद्दर पहनने की फैशन चला कर बेकारों को काम दे रही है। इस तरह बेकारों को कितना लाभ पहुँच सकता है, इस बात की जाँच करने के लिए मिस कैथराइन ली ग्रैफिल मुकर्रर की गई हैं। मिस ग्रैफिल की राय है कि चरखे द्वारा बेकारी की समस्या हल करने की सम्भावना असीम है। उनका कहना है कि कैण्टकी ने बैरा कालेज में तथा जौर्जिया के बैरी स्कूलों में इस दिशा में बड़ी सफलता प्राप्त की है तथा कनाडा में ऐसी चरखा-प्रचारिणी-लीगों ने बहुत काम कर दिखाया है। न्यूयार्क का यह होम क्रैफ्ट लीग भी चरखा और खद्दर के प्रचार के लिए बहुत उत्साह प्रकट कर रही है। वह

न्यूयार्क के प्रत्येक सार्वजनिक स्कूल में कताई, बुनाई इत्यादि की कक्षाएँ खुलवा रही है।

महकमा जंगलात

से भी किसानों और ग्राम-निवासियों को भाँति-भाँति के लाभ पहुँचते हैं। जङ्गल जमाने से ग्राम-निवासियों को चारा और ईंधन मिलता है। लेकिन कई कारणों से ग्राम-निवासियों को जङ्गलात के बारे में बहुत-सी शिकायतें हैं और इस महकमे से उनको उतना फायदा नहीं पहुँच पाता, जितना पहुँचना चाहिए। मिस्टर एफ० एफ० चायर के कथनानुसार चारे और ईंधन का रेल-भाड़ा बहुत ज्यादा है, जिसकी वजह से जङ्गलों की घास और लकड़ी देहात में भेजना नामुमकिन हो रहा है। अगर रेल-भाड़ा घटा दिया जाय, तो किसानों को घास और ईंधन की बहुत आसानी हो जाय। नतीजा यह होता है कि एक ओर गोरखपुर के जङ्गलों में लकड़ी पड़ी सड़ती है और दूसरी ओर कानपुर वगैर: में लोग जरा-जरा-सी लकड़ी के लिए तरसते रहते हैं। घास का रेल-भाड़ा इतना ज्यादा है कि पचास मील से ज्यादा दूरी पर घास भेजने में भाड़ा कीमत से ज्यादा हो जाता है। फिर चाहे आप घास के बण्डल बना के ही क्यों न भेजिये ? पण्डित गोविन्दवल्लभ पंत का कहना है कि सुरक्षित जङ्गलों में गाँव वालों को उनके जानवर चराने की जो सुविधाएँ दी गई हैं, वे बहुत ही नाकाफी हैं। महकमा जङ्गल की उस पैदावार को जो किसानों के काम की है व्यापारियों के हाथ बेच देता है और व्यापारी उसे बाहर भेज देते हैं। गाँव वाले उससे वञ्चित रह जाते हैं। महकमा जङ्गलात के कायदे बहुत सख्त हैं। अड़ोस-पड़ोस के गाँवों के निवासियों को इन कायदों की वजह से सख्त तकलीफें उठानी पड़ती हैं। जङ्गलों की सरहद पर न तो तार

ही लगाये जाते हैं, न दीवार ही उठाई जाती है। फिर भी अगर किसी किसान के जानवर चरते-चरते उधर पहुँच जायँ, तो वे मवेशीखानों में पहुँचा दिये जाते हैं। खुली हुई जमीन का बहुत-सा हिस्सा किसानों के लिए बन्द हो जाता है। चराये जा सकने वाले जानवरों की तादाद बहुत ही महदूद होती है। नीचे के अहलकार किसानों के साथ जो ज्यादतियाँ करते हैं, किसान उनका कुछ भी मुकाबिला नहीं कर सकते। लोक-सेवक इन नियमों में उचित संशोधन करवा कर किसानों के कष्ट काट सकते हैं। वे जङ्गलात के महकमे के कायदों और उसके इन्तजाम में ऐसा परिवर्त्तन करवाने की कोशिश करें जिससे किसान उससे भरपूर लाभ उठा सकें। नदियों के खड्डों में जङ्गल जमवावें। किसानों को यह बतावें कि जङ्गल जमाने का खर्च अस्सी रुपया फी एकड़ से भी कम है, जिसमें तार-बन्दी वगैरः सब शामिल है। तीन-चार साल में चरागाह तैयार हो जाता है और पेड़ सात-सात फीट के हो जाते हैं। जो लोग जंगल जमाने को राजी होते हैं, उनको महकमा जङ्गलात सब तरह की मदद देता है।

हाट-बाजारों में भी

किसानों की बहुत कुछ सेवा की जा सकती है। बाँटों और तोल में क्या-क्या बेईमानियाँ नहीं होतीं? किसानों को भाव का पता न होने की वजह से भी उन्हें बहुत नुकसान उठाना पड़ता है। बाजारों का सङ्गठन करने से किसानों को बहुत लाभ पहुँच सकता है। नाज बेचने वाली सहयोग-समितियों का सङ्गठन कीजिए। बाजार का प्रबन्ध बाजार कमेटी के हाथ में सौंपिये। इस बात का इन्तजाम कीजिये कि बाजार भाव का ताजे-से-ताजा पता सब लोगों को मालूम हो सके। बाँट एक से

हों और उनमें बेईमानी की गुञ्जाइश न हो।

रेल का किराया

नाजों वगैरः के मामले में भी किसानों को काफी तकलीफ पहुँचाता है। बाबू आदिराम सिंहल का कहना है कि रेल-भाड़ा ऐसा विचित्र है कि आगरा से बम्बई तक खल का रेल किराया ॥-) मन लगता है और आगरा से लुधियाना तक का आठ आना। ई० आई० आर० में जिस चीज का दो सौ मील का किराया सात आना मन है उसी चीज का लगभग उसी दूरी का यानी आगरा से लालकुआ तक का रेल किराया एक रुपये सात आना मन है। आगरा से रोहतक सिर्फ डेढ़ सौ मील है, लेकिन दोनों शहरों से परस्पर मँगाने भेजने में आठ दिन लग जाते हैं, जिससे दूध देने वाली गाय-भैंसें आधी तो रास्ते में ही सूख जाती हैं। लोक-सेवकों का कर्त्तव्य है कि वे रेलवे के अधिकारियों से लिखा-पढ़ी करके और उन पर जनता तथा सरकार का दबाव डलवा कर गाँव वालों की इन असुविधाओं को दूर करवादें। सैमहिगिन बोटम साहब को शिकायत है कि रेलों में बिना रिश्वत दिये माल भेजना नामुमकिन है, जिसकी वजह से पैदावार की कीमत बढ़ानी पड़ती है। रेलों में माल की चोरी भी खूब होती है। और अगर माल में नुकसान हो जाय, तो रेलवे उसका हर्जा तक नहीं देती। बिना पार्सल खुले घी-फल वगैरः भेजना कतई गैर मुमकिन है। फलों और तरकारियों की टोकरियों को जान-बूझकर ऐसी बुरी तरह पटका जाता है, जिससे फट कर खुल जावें और जो कुछ उनमें से गिर पड़े उसे हड़प लिया जाय! इन सब असुविधाओं को दूर कराने से गाँवों की पैदावार के व्यापार को काफी लाभ पहुँचेगा, यह निश्चय है।

गाँवों में स्वास्थ्य और सफ़ाई

का इन्तजाम भी नहीं के बराबर है। बीमारों की सेवा वाले अध्याय में यह भली भाँति दिखाया जा चुका है कि हर साल कितने लाख गाँव निवासी सफाई की कमी और इलाज का इन्तजाम न होने से बेमौत मर जाते हैं। गाँवों में मुफ्त दवा बाँटने वालों का अनुभव है कि गाँव वाले इन दवाओं के लिए ऐसे टूटते हैं, जैसे भीषण अकाल के मारे रोटी के लिए। इस सम्बन्ध में लोक-सेवकों को चाहिए कि वे—

डिस्ट्रिक्ट बोर्डों का उपयोग

करें; जैसे म्यूनिसिपैल्टियाँ नगरहितकारिणी सभाएँ हैं, वैसे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड भी ग्राम-हितकारिणी-सभाएँ हैं। गाँवों में मदरसे खोलने, पढ़ाई का इन्तजाम करने, सफाई करने तथा करवाने, कुएँ बनवाने, इलाज तथा दवादारुओं का इन्तजाम करने, सड़क बनवाने तथा सड़कों की मरम्मत करवाने, पेड़ लगवाने तथा पेड़ों की रक्षा करने, हाटों का और मेलों का इन्तजाम करने; पुल-पुलिया बनवाने, नाले भरवाने, पोखरें भरवाने, अनाथालय खुलवाने, खेती की तरक्की के काम में मदद देने, मवेशीखाने खुलवाने और उनकी देख-भाल करने, गाँवों में प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य करने, रात्रि पाठ-शालाएँ तथा वयस्क पाठशालाएँ खुलने-खुलवाने, कुएँ बनवाने तथा कुओं की मरम्मत करवाने वगैरः गाँवों की भलाई के सभी काम करना डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के जिम्मे है। और जैसे नगर-सेवा के सब काम म्यूनिसिपैलिटी से करवाना म्यूनिसिपैलिटी के वोटरों के हाथ में है, वैसे ही गाँव-सेवा के सब काम डिस्ट्रिक्ट बोर्डों से करवाना भी गाँवों के वोटरों के हाथ में है। इसलिए वोटरों

की शिक्षा मेम्बरों के चुनाव वगैरः के सम्बन्ध में नगर-सेवा वाले अध्याय में जो कुछ कहा गया है, वह सब यहाँ कई गुने बल के साथ लागू होता है। लोक-सेवकों का परम पावन कर्त्तव्य है कि वे गाँवों के वोटरों को यह बता दें कि लगाव तथा दबाव से वोट देना, रिश्तेदारी—बिरादरी के नाम पर वोट देना घोर पाप है। वोट बेचना बेटी बेचने से भी बढ़ कर पाप है। गलत-स्वार्थी उम्मेदवार को वोट देने से हजारों की हत्या का पाप सर पर लगता है और निस्वार्थी लोक-सेवी और स्वार्थ त्यागी उम्मेदवार को वोट देने से हजारों के प्राण बचाने का परम-पुण्य मिलता है। क्योंकि गाँवों में सफाई करवाने और इलाज का इन्तजाम करने से उन हजारों की जान बच जायगी जो आज गन्दगी की वजह से और इलाज का माकूल इन्तजाम न होने की वजह से बेमौत—मक्खियों की मौत मर जाते हैं। डिस्ट्रिक् बोर्डों में लोक-सेवी मेम्बरों के न होने से या उनकी तादाद कम होने से गाँवों को उतना लाभ नहीं पहुँचता जितना पहुँचना चाहिए। उल्टी तकलीफें बढ़ जाती हैं। मदरसों में मुदर्रिस और मवेशीखानों में मुहर्रिर, मवेशी तथा घाटों पर घाट वाले गाँव निवासियों को बुरी तरह तङ्ग करते और ठगते हैं। आगरा डिस्ट्रिक् बोर्ड के मेम्बर, सीनियर वाइस चैयरमैन और एक्टिङ्ग चेयरमैन की हैसियत से लेखक ने स्वयं इन बातों का ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया है और इस निजी ज्ञान और अनुभव के आधार पर वह निस्सङ्कोच यह कह सकता है कि जैसे शहर को आबाद या वीरान कराना म्यूनिसिपैलिटी के हाथ में है वैसे ही बहुत हद तक गाँवों को आबाद कराना या वीरान कर देना डिस्ट्रिक् बोर्डों के हाथ में है। इसलिए कोई भी लोक-सेवक इन संस्थाओं की ओर से उदासीन नहीं हो सकता। प्रत्येक लोक-सेवक का यह कर्त्तव्य है कि वह इस सम्बन्ध में बराबर

लोकमत को शिक्षित और जाग्रत करता रहे। वोटरों को उनके कर्त्तव्य की शिक्षा देता रहे। और इस बात का भरकस प्रयत्न करे कि चुनाव के लिए केवल पब्लिक की भलाई का ख्याल रख के वोट दी जाय और ऐसे मेम्बर चुने जायँ जिनका उद्देश्य केवल लोक-सेवा हो यानी जिन्होंने या तो स्वयं चुनाव से पहले लोक-सेवा की हो और पब्लिक की भलाई के लिए स्वार्थ त्याग किया हो या उसकी सिफारिश करने वाले व्यक्ति या संस्थाएँ लोक-सेवी तथा परोपकारी हों! गाँवों की सफाई व स्वास्थ्य यानी चिकित्सा के प्रबन्ध के सम्बन्ध में लोक-सेवी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अतिरिक्त प्रान्तीय सरकारों के सार्वजनिक स्वास्थ्य-विभाग से भी काफी मदद ले सकते हैं। इस सम्बन्ध में लोक-सेवियों की सेवा से स्वास्थ्य-विभाग की उपयोगिता बढ़ जाय और गाँवों तथा गाँव निवासियों को बहुत लाभ होगा।

संघटन द्वारा सेवा

गाँवों और गाँव वालों की सेवा का एक बड़ा अच्छा साधन, उपर्युक्त उद्देशों की पूर्ति के लिए, समाज-सुधार और कुप्रथा-निवारण के लिए तथा उनकी बेबसी को मेटने के लिए, उनका संगठन करना, गाँव-गाँव में ग्राम-हितकारिणी या किसान सभाएँ कायम करना है। लेखक ने इस विषय का विशेष अध्ययन किया है। और उसकी जानकारी केवल किताबी जानकारी हो सो बात भी नहीं है; उसने एकाकी तथा संगठित प्रयत्नों द्वारा सतत ग्रामीणों की दशा का अध्ययन करने और उनकी सेवा करने, उनके कष्ट कम करने का प्रयत्न किया है। इन वैयक्तिक तथा संगठित प्रयोगों से उसने जो निजी ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त किया है, उसके आधार पर वह दावे के साथ यह कह सकता है कि सेवा और संघटन द्वारा गाँव निवासियों को

जितना सुख पहुँचाया जा सकता है, उतना और किसी को नहीं पहुँचाया जा सकता। गावों में इतना अज्ञान और इतनी बेबसी है, अहलकार, जमींदार, पटवारी वगैरः ही नहीं, बलवान किसान निर्बल किसान को इतना कष्ट देता है कि कोई भी लोक-सेवक बेचारे गाँव वालों को थोड़ा-सा सहारा देकर, केवल उचित सलाह देकर उनकी अर्जियाँ लिख कर उनका परम उपकार कर सकता है। जैसे अब तक लिखी हुई बातों से ग्राम-सेवा के कार्य की विशालता की झलक मिल जाती है, वैसे ही आगे चल-कर कुछ प्रयत्नों के जो उदाहरण दिये गये हैं, उनसे पाठकों को इस बात का भी कुछ-न-कुछ आभास मिल ही जायगा कि तनिक भी सेवा और संगठन द्वारा गाँव निवासियों का कितना भला किया जा सकता है।

सेवा और संगठन के साधन

परन्तु इन प्रयत्नों का उदाहरण देने से पहले ग्रामीणों की सेवा और उनके सङ्गठन के कुछ साधनों का दिग्दर्शन कराना आवश्यक प्रतीत होता है। गाँवों में कितनी शक्ति बेकार पड़ी हुई है? यदि उस शक्ति का उपयोग किया जाय, तो गाँवों के सारे दुख वैसे ही भाग जाव, जैसे शेर को देख कर गीदड़ों का झुण्ड भागता है, या सूर्य को देख कर अन्धकार भागता है। मन्दिरों को ही ले लीजिए उनका कितना उपयोग किया जा सकता है? उनमें गाँव की पाठशाला खुल सकती है। गाँव हितकारिणी सभा का दफ्तर रह सकता है। गाँव का वाचनालय, पुस्तकालय और औषधालय खुल सकता है। कथाएँ वहीं हो सकती हैं। निर्दोष-पवित्र विनोदों, गाने, भजन आदि के जल्से वहीं हो सकते हैं। गाँव की पञ्चायत देवालय में ही गाँव के झगड़ों का फैसला करें, तो उसे सच्ची बात तक पहूँचने और

फरीकों से अपनी बात मनवाने में बहुत सहायता मिल सकती है। जो बात मन्दिरों के लिए है, वही मसजिदों के लिए भी है। पुजारीजी महाराज भी लोक-सेवा का चरम आदर्श ग्रामीणों के सामने रख सकते हैं। जो स्वयं अध्यापक, पुस्तकाध्यक्ष और चिकित्सक, धर्म-शिक्षक और शान्ति दूत का काम कर सकते हैं, और कवीन्द्र रवीन्द्र के शब्दों में इन कामों में जितनी देव-सेवा है, वह केवल घण्टा बजा देने से कम महत्वपूर्ण नहीं है। सच तो यही है कि पुजारियों का जन्म आरम्भ में इन्हीं कामों के लिए हुआ था और अब भी इन्हीं कामों के लिए होना चाहिए। जो पुजारी इन कामों को नहीं करता, वह अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता। आज भारतवर्ष को किसान-दासों की आवश्यकता है, जो गाँव-गाँव में किसान-कुटीरें बना कर वहीं रहें। चुटकियाँ माँग कर मधुकरी खा लिया करें और निरन्तर अपने इष्ट-देवों गाँव निवासियों की सेवा में संलग्न रहें। ऊपर पुजारीजी या बाबाजी के जो काम बताये गये हैं, उन सब कामों को ये बाबा किसानदास करें और इनके अलावा वे ग्रामीणों की अर्जियाँ लिखने, उनके दुःख-दर्द की कहानी समर्थ लोक-सेवकों तथा उचित अधिकारियों के पास पहुँचाने का काम भी करें। आज किसान-कुटीर ही गाँवों के मन्दिर हों। और किसानदास ही गाँवों के पुजारी अथवा गाँवों के मन्दिर ही किसान-कुटीर हों और उनके बाबाजी हों बाबा किसानदास। पण्डितजी भी ब्याह पढ़ने, नाम रखने तथा कारज कराने के अतिरिक्त इन कामों को करके तथा गाँव निवासियों की समस्याओं का अध्ययन करके अपने पण्डितपने को सार्थक कर सकते हैं, और अपने को सचमुच उपयोगी बना सकते हैं। यदि प्रत्येक गृहस्थ आधा जीवन व्यतीत करने के बाद आधी जिन्दगी, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम का जीवन गाँव निवासियों

की सेवा और उनके सङ्गठन में लगावें, तो इस शक्ति के सामने कौन-सी बाधा है, जो टिक सके! इतना न कर सकें तो प्रत्येक गृहस्थ जीवन के कुछ साल, प्रति साल के कुछ महीने या सप्ताह या प्रति महीने अथवा सप्ताह के कुछ दिन और प्रति दिन कुछ घण्टे अपने गाँव या गाँव निवासियों की सेवा में लगावें, तो सेवकों की ऐसी सेना तैयार हो जाय; जैसी आज संसार के बड़े-से-बड़े शक्तिशाली साम्राज्य के पास भी नहीं है। लोक-सेवकों का कर्त्तव्य है कि इस सम्बन्ध में लोकमत जाग्रत तथा शिक्षित करें। गाँवों में प्रत्येक अमावस को गाँव की बृहत् सार्वजनिक सभा का दिन बनाया जा सकता है। इस दिन सब गाँव वाले सब काम छोड़ कर छुट्टी मनावें और उस छुट्टी को गाँव की भलाई के उपाय सोचने में लगावें। साधु-सन्यासियों का सङ्गठन भी सेवा-कार्य के लिए किया जा सकता है। श्रावणी, दशहरा, होली आदि त्योहारों का उपयोग शारीरिक खेलों, टूर्नामेण्टों, व्यायाम और शारीरिक सौन्दर्य तथा स्वास्थ्य की वृद्धि के लिए किया जा सकता है। दिवाली का उपयोग सफाई के लिए और बसन्त पञ्चमी का उपयोग हरियाली-दिवस के लिए हो सकता है। होली के गानों से प्रचार-कार्य में जितनी सहायता मिल सकती है, उतनी दूसरी किसी चीज से शायद ही मिले। मेलों-ठेलों में भी प्रचार और प्रदर्शनियों का सुनहला अवसर मिलता है। प्रतिमाओं द्वारा, मिट्टी की प्रतिमाओं के प्रदर्शन द्वारा, रासलीलाओं तथा रामलीलाओं के सदुपयोग द्वारा भी मनोविनोद के साथ-साथ प्रचण्ड प्रचार का काम किया जा सकता है। आल्हा-ढोला के गायकों, भीख माँगने वाले गायकों, जोगियों आदि का उपयोग भी इस शुभ-कार्य के लिए हो सकता है। लोक-सेवकों को चाहिए कि वे गाँव-निवासियों को सहयोग का, एक-दूसरे से मिल कर सबका

भला करने की कोशिश करने की आदत का और स्वावलम्बन का, अपने बल-भरोसे अपनी हाथ-पैर और बुद्धि की मेहनत से अपने कष्टों को कम करने का पाठ पढ़ावें। उन्हें यह बतावें कि उनके अन्दर इतनी शक्ति छिपी हुई है, उनके पास इतने साधन विद्यमान हैं कि यदि वे उनका प्रयोग करें, तो उनके सब कष्ट अपने आप उन्हें छोड़ कर भाग जाँय। गाँव-निवासियों की सेवा के कार्य में सब से अधिक महत्व-पूर्ण कार्य ग्राम-निवासियों में सेवा का भाव भरना, उनका सङ्गठन करना, उन्हें आशा का सन्देश देना, उनमें साहस का सञ्चार करना, एक शब्द में उनके ज्ञान-चक्षुओं को खोलना, उन्हें ज्ञान-दान देना है। जो लोक-सेवक इस पुनीत कार्य को पूरा कर सकें, उनका जीवन धन्य है। वे सचमुच बड़भागी हैं।

कुछ प्रयत्नों के उदाहरण

कृषि-जीवी सङ्घ, आगरा

सन् १९२९ में दिसम्बर के महीने में, आगरा में कृषि-जीवी सङ्घ की स्थापना की गई। इस सभा का उद्देश्य हर कानूनी (constitutional) तरीके से, (१) खेती और खेती से गुजर करने वालों की तरक्की करना, (२) किसानों को जो हक मिले हुए हैं, उनकी रखवाली करना, और (३) खेती और खेती से गुजर करने वालों की तरक्की और बहतरी के लिए जो हक उन्हें और मिलने चाहिये वे उन्हें दिलाना, (४) गाँवों और गाँव वालों की सेवा और उनके सुधार का काम (village welfare work) करना तथा, (५) किसानों के लिए बहुत मजबूत स्थायी संगठन कायम करना था। इस उद्देश की पूर्ति के लिए सभा ने शुरू में नीचे लिखे उपायों से काम लिया—

(१) किसानों को उनके कानूनी, हकों और कर्त्तव्यों का ज्ञान कराया ! जिससे वे गैर-कानूनी कार्यवाहियों से अपने को बचा सकें और अपने कर्त्तव्यों का पालन करके अपना भला कर सकें ।

(२) महकमा खेती, महकमा नहर, महकमा तन्दुरुस्ती, महकमा तालीम, महकमा सहयोग-समिति, महकमा माल, महकमा उद्योग-धन्धा वगैरः का और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का किसानों और किसनई के फायदे के लिये ज्यादा से ज्यादा और सर्वोत्तम उपयोग करना । इन महकमों से किसानों को ज्यादा से ज्यादा मदद दिलाना । किसानों की सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए उनके विरुद्ध घनघोर प्रचार करना, उनमें आपस में प्रेम-भाव, और मिल कर काम करने का भाव पैदा करने की कोशिश करना, उनके आपसी झगड़े मिटाने के लिए पंचायतें कायम करना ।

(३) कानून लगान, कानून मालगुजारी वगैरः उन सब कानूनों में जो किसान और किसनई से सम्बन्ध रखती हैं, ऐसी तरमीमें कराना जिनसे किसानों और किसनई की तरक्की और भलाई हो !

अठारह साल से ज्यादा उम्र का हर एक किसान-स्त्री या पुरुष इस संघ का मेम्बर हो सकता था ।

केवल एक ही लोक-सेवी ने अपने उद्देश्य की पवित्रता में विश्वास करके संघ की स्थापना की थी । मेम्बरी की फीस एक रुपया फी फसल रक्खी गई थी ! फिर भी इस कार्य में जो सफलता मिली, संघ से किसानों की जो सेवा हो सकी वह और किसानों ने सङ्घ के प्रति अपनी जो प्रतीत दिलाई वह असंतोष-जनक अथवा निराशाप्रद कदापि नहीं कही जासकती । तीन-चार महीने में कोई सात सौ किसान एक-एक रुपया दे कर सङ्घ के

मेम्बर बन गये और यह सब केवल एक उप-मंत्री के आंशिक परिश्रम से ! यह इस बात का प्रमाण है कि सङ्घ कितना लोक-प्रिय हो गया था ? और उसकी लोक-प्रियता के कारण भी थे, सङ्घ के द्वारा बहुत-से किसानों के व्यक्तिश: और कई के ग्रामशः अनेक कष्ट भी कटे ! कायथा गाँव के लोगों को नहर के पतरौलों वगैरः की सख्त शिकायत थी। सङ्घ की कोशिश से उच्चाधिकारियों ने गाँव में आकर शिकायत की जाँच की और बहुत हद तक उस समय किसानों की वे सब शिकायतें रफा हो गईं। सैंगई में तकावी की वसूलयावी में किसानों के हल-बैल सब कुड़क कर लिये गये। सङ्घ ने इन किसानों की पुकार उचित अधिकारियों तक पहुँचाई। कुड़की छूट गई। किसान सख्त सदमे, भारी हानि और एक फसल की बरबादी से बच गये। सेमरा गाँव के पटवारी ने गाँव में फसल का नुकसान बहुत कम दिखाया! जिससे नुकसान की छूट कतई नहीं मिली। संघ ने अधिकारियों का ध्यान इस ओर दिलाया। हाकिम परगना ने मामले की जाँच की, पटवारी की रिपोर्ट गलत पाई गई। गाँव को छूट मिल गई। कई हजार का लाभ हुआ! कुछ गरीब काछियों को कुछ तीसमार खाँ ठाकुरों ने सताया। बेचारों की कोई सुनवाई तक न हुई। संघ ने पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट से लिखा पढ़ी की। तहकीकात की गई। वह भी सबल ठाकुरों के उद्योग से बीच से ही लौट आई। तब संघ ने मुकदमा दायर करवाया, वह इब्तिदाई सबूत लेकर खारिज कर दिया गया। अपील कराई गई। तब मुकदमा चला। तीसमारखाँओं के सर में भारी रकम की चोट लगी। उन्होंने उससे जो सबक सीखा उससे बहुत से निरीह किसानों के जानोमाल व इज्जत-आबरू की रक्षा हो गई।

अचल ग्राम सेवा संघ

सन् उन्नीस सौ इक्कीस में, आगरा जिले के गाँव में नियमित, संगठित और सुव्यवस्थित रूप से सेवा-कार्य करने के लिए नीचे लिखे सज्जनों का सङ्घ बनाया गया।

पण्डित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल सभापति, सेठ अचलसिंह उप सभापति, श्रीयुत रामेश्वरनाथ टंडन, मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष, और पण्डित विश्वेश्वरदयालु चतुर्वेदी, श्रीमती भगवती देवी, श्रीयुत चन्द्रधर जौहरी, बाबू जस्पतराय कपूर, बाबू डालचन्द्जी और पं० रेवतीशरणजी सदस्य। इस संघ ने कार्य के लिए सेठजी ने पहली साल साढ़े तीन सौ रुपये मासिक, दूसरी साल चार सौ रुपये मासिक और तीसरी साल साढ़े चार सौ रुपये मासिक देने का बचन दिया। तीन साल के प्रयोग के बाद सेवा की इस योजना के सफल और उपयोगी सिद्ध होने पर उन्होंने एक लाख का स्थायी ट्रस्ट कर देने का बचन दिया जिसकी ब्याज से पाँच सौ रुपये मासिक से अधिक तक की आय हो सकती थी।

अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए सङ्घ ने तीन वर्ष तक अपना पूरा समय ग्राम-सेवा के पुनीत कार्य में देने वाले कार्यकर्त्ताओं का एक ग्राम-सेवक-संघ स्थापित करना, उसका प्रधान कार्यालय आगरा में तथा शाखाएँ तहसीलों में रखना तय किया। और यह भी तय किया कि प्रधान कार्यालय का सञ्चालन प्रधान-सेवक के हाथ में तथा तहसील की शाखाओं का सञ्चालन तहसील सेवकों के हाथ में रहे। प्रधान सेवक को पचास रुपये मासिक से लेकर अस्सी रुपये मासिक तक और तहसील सेवकों को पच्चीस रुपये मासिक से लेकर चालीस रुपये मासिक तक की वृत्ति मिले। ग्राम-सेवकों को भी सेवक-संघ में सदस्य

बनाकर रखना और उनको यथायोग्य सहायता देना तय हुआ। सेवकों का कार्य-क्रम कुछ निम्न प्रकार तय हुआ—

अ—सेवकों का कर्त्तव्य होगा कि वे अपने-अपने कार्य-क्षेत्र में साधनहीन रोगियों को मुफ्त दवा बाँटें और बँटवावें, उनकी सेवा-शुश्रूषा करें, पुस्तकालय और कन्या-पाठशालायें खोलें तथा खुलवावें।

ब—ग्रामीणों की आर्थिक दशा की जाँच करें और करवावें। समस्त दीन-दुखियों को-अनाथों और विधवाओं को—सहायता दें, और दिलवावें।

स—चरखों का और खद्दर का प्रचार करके ग्रामीणों को स्वावलम्बी बनावें।

द—गाँव निवासियों को ऐसी शिक्षा दें जिससे वे समस्त उपलब्ध राजकीय साधनों से भरपूर लाभ उठा सकें तथा अपने को गैर-कानूनी अन्याय और अत्याचार से बचा सकें। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए किसान-सभाओं द्वारा, पञ्चायतों द्वारा तथा अन्य उचित रूप से गाँव-निवासियों को संगठित करें, उन्हें संगठित होने के लिए प्रेरित करें तथा संगठित होने में उन्हें सहायता दें।

य—ग्रामीणों में उन्नति की, अपनी वर्त्तमान दुरवस्था से, अज्ञान और दरिद्रता से, ऊपर उठने की इच्छा और आशा उत्पन्न करें।

र—शिक्षा-प्रचार द्वारा उनके मानसिक क्षितिज को बदलें, उनके गुणों को विकसित करें। सेवा और प्रेम द्वारा उन्हें सबके भले के लिए मिलकर काम करना सिखावें।

ल—उन्हें कृषि-सुधार की, स्वास्थ्य-रक्षा की, सफाई और आरोग्यता की, सामाजिक-सुधार की, मोटी-मोटी सभी आवश्यक बातें बतावें। इस उद्देश की पूर्त्ति में गाँवों में सफाई, संगठन,

किसानों, जमीदारों तथा सब जातियों और सब धर्मों के लोगों में परस्पर प्रेम-भाव उत्पन्न करें।

रोगियों को अस्पताल पहुँचाना, जैसे—कोढियों को कोढ़ीखानों में, औरों को सफाखानों में, स्वास्थ्य-निकेतनों, कसौली आदि पहुँचाना; अन्धों, गूँगों, बहरों आदि का समुचित प्रबन्ध करना; भूखों को अन्न तथा नंगों को वस्त्र-दान दिलाना; उचित अधिकारों के लिये गाँव-निवासियों की अर्जी लिख देना, उन्हें उचित सलाह देना, कृषि-विभाग द्वारा उनके लिए समुचित बीज आदि का प्रबन्ध करना, खाद के लिये गड्ढे बनाना सिखाना, नहर विभाग से उनकी पानी आदि की शिकायतें दूर कराना; डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, सार्वजनिक स्वास्थ्य-विभाग, घरेलू-धन्धा-विभाग, सहयोग-समिति-विभाग, माल-विभाग आदि से उन्हें समुचित सुविधायें दिलाना तथा उनकी असुविधाएँ दूर कराना; सभाओं द्वारा, बात चीत द्वारा, गानों द्वारा, साहित्य द्वारा प्रचार करना; अछूतपन के भाव को दूर करना, मेलों व खेलों का, त्यौहारों का तथा गायकों आदि का संगठन और सदुपयोग करना—सेवकों के उपर्युक्त कार्यों में सम्मिलित माने गये। यह भी तय हुआ कि इन उद्देशों की पूर्त्ति के लिये ग्राम-सेवाश्रम भी स्थापित किये जा सकेंगे, जिनमें सेवकों के लिए भोजन-कपड़े का प्रबन्ध रहेगा तथा जिनमें वे सेवा-कार्य की व्यावहारिक शिक्षा पा सकेंगे। ऐसे सेवकों की शिक्षा-दीक्षा के लिए प्रधान कार्यालय में ग्राम-सेवक-विद्यापीठ भी स्थापित किया जा सकेगा।

सेवकों की योग्यता के सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया कि प्रधान-सेवक को किसी भारतीय विश्वविद्यालय का ग्रैजुएट अथवा ग्रैजुएट की बराबरी योग्यता रखने वाला होना चाहिए और तहसील सेवकों को एन्ट्रेंस अथवा एन्ट्रेंस की बराबर योग्यता वाला। ग्राम-सेवकों को वर्नाक्यूलर मिडिल पास अथवा

उतनी योग्यता की शिक्षा पाये हुए होना चाहिए। साधारणतः सेवकों के लिए एक निश्चित अवधि तक सेवा-का की शिक्षा प्राप्त करना उचित समझा गया है, और शिक्षा-काल में उनकी वृत्ति आधी रक्खी गई है। विशेष अवस्थाओं में सेवा-संघ को यह अधिकार रहे कि वह स्वयं अपनी सम्मति से अथवा प्रधान-सेवक के परामर्श से किसी सेवक या कुछ सेवकों को सेवा की शिक्षा पाने की शर्त से मुक्त कर दे।

प्रारम्भ में श्रीयुत निरञ्जनसिंह बी० ए० ने अस्थायी रूप से प्रधान-सेवक का काम किया। उनके साथ श्री पोखपालसिंह फिरोजाबाद तहसील में और श्रीयुत ओंकारनाथ किरावली तहसील का कार्य करने के लिए नियुक्त किये गये। श्रीयुत निरञ्जनसिंह प्रधान-सेवक के कार्य के साथ-साथ सदर तहसील के सेवक का कार्य भी करते थे। ऐत्मादपुर तहसील में श्री जयन्तीप्रसाद ने बेनई गाँव को अपना केन्द्र बनाकर महात्मा गान्धी के फी गाँव फी सेवक वाली योजना के अनुसार काम किया। संघ ने इस कार्य के लिए उन्हें पिचहत्तर रुपये मासिक दिये। इन रुपयों से वहाँ उन्होंने एक छोटा-सा आश्रम स्थापित किया। आश्रम में सायंकाल को प्रतिदिन प्रार्थना होती थी जिसमें गाँव भर के स्त्री-पुरुष यथाशक्ति सम्मिलित होते थे। इस सम्मिलित प्रार्थना से परदे की प्रथा को शिथिल करने में भारी सहायता मिली तथा गाँव वालों में पर्याप्त जागृति तथा सहयोग की भावना उत्पन्न हुई। नैतिक वायुमण्डल बना। कुछ ही महीनों में गाँव वालों में अद्भुत जागृति दिखाई देती थी। अनुशासन का भाव उनमें इतना आ गया था कि एक शङ्ख की ध्वनि पर सब गाँव वाले आश्रम पर इकट्ठे हो जाते थे। आश्रम द्वारा गाँव वालों को स्वावलम्बन की भी शिक्षा दी गई। चरखे-करघे का प्रचार किया गया। बहुत-सी

स्त्रियों तथा कमेरे पुरुषों को चार पैसे कमाने का अवसर मिला। आश्रम से गाँव निवासियों को दवाइयाँ भी बाँटी जाती थीं। दवा लेने वालों की संख्या सहस्रों तक पहुँच गई थी। आश्रम में श्रीयुत जयन्तीप्रसादजी, उनकी धर्मपत्नी सावित्री देवी, उनकी पुत्री शान्तिदेवी, श्रीयुत श्रीराम 'मस्त' तथा सालिगरामजी आदि कार्यकर्त्ता कार्य करते थे। थोड़े ही समय में गाँव का वायुमण्डल बदल गया था। गाँव वाले इस सेवा-कार्य के महत्व को समझने लगे थे और उसके प्रति मुक्तकण्ठ से अपनी कृतज्ञता प्रकट करते थे। कई गाँवों की आर्थिक दशा में सुधार किया गया, दूसरी तहसीलों में कार्यकर्त्ताओं ने घूम-घूम कर गाँवों में संघ के उद्देश्यों का प्रचार किया। पुस्तकालय तथा वाचनालय खोले। औषधियाँ बाँटी। गाँव वालों की शिकायतें दूर कराने की कोशिशें की। नीचे संघ के अक्टूबर १९३१ के कार्य की रिपोर्ट से जो उदाहरण दिया जाता है उससे पाठक कार्य का अनुमान कर सकेंगे।

"इस महीने में दवाइयाँ बाँटने की ओर विशेष प्रयत्न किया गया। कोई पैंतीस रुपये की दवाइयाँ बाँटी गईं। महीने के भीतर सात वाचनालय तथा दो पुस्तकालय खोले गये। बिचपुरी प्राइमरी स्कूल के प्रधानाध्यापक ने सेवा-संघ की दवाइयाँ आस-पास के गाँवों में बाँटी। सुनारी तथा मगटई में भी इसी प्रकार औषधियाँ बाँटने का प्रबन्ध हुआ। मगटई तथा धीरपुरा में कन्या पाठशाला खोलने का प्रबन्ध किया गया। इसी महीने में फिरोजाबाद तहसील में तीन सौ अठारह रोगियों को दवा बाँटी गई। तहसील के चार वैद्यों ने इस कार्य में सहायता दी। फसल खराब होने के प्रार्थना-प[illegible] धकारियों के पास पहुँचाये गये। किरावली तहसील में दो सौ दो बीमारों को दवाएँ बाँटी गई। पाँच गाँवों में वाचनालय खोले गए। गाँव

वालों ने समाचार पत्र के आधे दाम अपने पास से दिए। मुड़ियापुर के ठा० नारायणसिंह ने साढ़े नौ रुपये की दवाइयाँ देकर सेवा-सङ्घ की सहायता की। डा० सरीन ने संघ की ओर से दवाएँ बटवाईं। पण्डित मनमोहन वैद्य ने औषधियों के निरीक्षण तथा निर्णय का कार्य किया।"

१६३३ में चार महीने एत्मादपुर तथा फिरोजाबाद तहसील में काम हुआ। फिरोजाबाद तहसील में बीस वाचनालय खोले गये। चलते-फिरते पुस्तकालयों द्वारा कोई सौ गाँवों को पुस्तकें पढ़ने के लिए दी गईं। और तीन हजार मरीजों को दवाएँ बाँटी गईं। एत्मादपुर तहसील में नवम्बर १६३३ में सरसठ ग्रामों में सुधार किया गया। चार ग्रामों में वाचनालय स्थापित किये गये। एक सौ तिरसठ लोगों ने चलते-फिरते पुस्तकालयों से लाभ उठाया। सरसठ गाँवों के तेरह सौ चौंसठ मरीजों को दवाएँ बाँटी गईं।

उपर्युक्त दोनों प्रयोग लेखक ने स्वयं किये। इसीलिए उन्हें इतने विस्तार के साथ दिया जा सका। और कुछ संस्थाओं के नियमों और कार्य-क्रम का वर्णन करने की आवश्यकता इसलिए स्पष्ट है कि जिससे लोक-सेवकों को उस प्रकार की संस्थाएँ स्थापित करने में सुविधा रहे और सहायता मिले।

परन्तु ग्राम-सेवा सम्बन्धी उदाहरणों का तो महासागर विद्यमान है, यद्यपि ग्राम-सेवा की आवश्यकता को पूरा करने के लिए यह महासागर एक बूंद के बराबर भी नहीं है। फिर भी यह हर्ष और सन्तोष की बात है कि इस समस्या की ओर लोगों का ध्यान गया है और भिन्न भिन्न तथा परस्पर विरोधी उद्देशों से ही सही अनेक संस्थाएँ इस कार्य में लगी हुई हैं। इन कार्यवाहियों का बहुत ही संक्षिप्त और अधूरा वर्णन Indian village welfare Association द्वारा प्रकाशित और Ox-

ford university press, London Heenphary Milford में मुद्रित Review of Rural welfare Activeties in India १६३२ नाम की पुस्तक में दिया हुआ है। इस पुस्तक के लेखक हैं पञ्जाब सरकार के सहयोग-विभाग के भूतपूर्व रजिस्ट्रार श्री० सी० एफ० स्ट्रिक लैण्ड सी० आई०, और इसकी भूमिका लिखी है, भारत के भूतपूर्व वायसराय लार्ड इरविन की पत्नी डौरोथी इर्विन ने। जिस संस्था ने यह पुस्तक प्रकाशित की है उसका कार्यालय लन्दन में है और वह भारत के रिटायर्ड अँग्रेज अधिकारियों की संस्था है। १६३२ में फ्रांसिस यंगसवैण्ड इसके चेयरमैन थे। यद्यपि पुस्तकों में दिए गये संक्षिप्त तथा अधूरे वर्णनों से न तो तृप्ति और संतोष ही होता है और न उनसे विषय का पूरा ज्ञान ही, फिर भी न कुछ से कुछ अच्छा होता है। इस सिद्धान्तानुसार पुस्तिका के आधार पर कुछ प्रयत्नों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। इनसे लोक-सेवकों को विषय का अधिक ज्ञान प्राप्त करने में उपलब्ध साधनों से सहायता लेने की प्रेरणा मिलेगी।

इन्डियन विलेज वैल्फेयर ऐसोसिएशन ने स्वयं अप्रैल १६३२ में कुछ समय के लिए High Leigh Hoddeedon, Hertfordshire ईस्टर स्कूल खोला था जिसमें हिन्दुस्तान में ग्राम-सेवा करने वाले या ग्राम-सेवा करने का इरादा रखने वाले नौजवानों को शिक्षा दी गई। कई अंग्रेज स्त्री-पुरुष तथा भारतीय इस स्कूल में शामिल हुए।

सरकारी प्रयत्न

संयुक्तप्रान्त में ग्रामोत्थान-समिति (Rural Development Board) मात्र है। १६२६ में उसके सामने प्रत्येक जिले में जिला-उन्नति-बोर्ड कामय करने का स्कीम रक्खा गया पर वह समय से पहले समझा गया। परन्तु कई जिलों में

स्वतन्त्र प्रयत्न अधिकारियों की ओर से किये गये। बनारस में अर्ध-सरकारी ग्राम-पुस्तकालय समिति (Rural Reconstruction association) ने जिले के कई गाँवों में ग्राम-पुनरुत्थान सभाएँ कायम की हैं। इस काम में सब हाकिम मदद देते हैं। सहयोग विभाग भी इस ओर प्रयत्नशील है। इस विभाग ने लखनऊ, फैजाबाद और परताबगढ़ जिलों मे 'केन्द्र' स्थापित किए हैं। ये केन्द्र बेहतर हल, ईख आदि बाँटने, वयस्क पाठशालाएँ तथा गश्ती और ग्राम पुस्तकालय कायम करने, बालचर संस्थाएँ और खेल सङ्गठित करने, औषधालय कायम करने, शिक्षित दाइयों का प्रबन्ध करने, खाद के गड्ढे खुदवाने, आपसी झगड़ों को तय करने और अपनी उन्नति तथा बेहतरी के लिए सहयोग-समितियाँ कायम करने और ग्राम स्वराज्य के लिए ग्राम पञ्चायतें कायम करने का काम करते हैं। गुरुगाँव की ग्राम-शास्त्र पाठशाला (School of Rural Economy) के ढङ्ग पर बनारस में एक ग्राम-शिक्षा-क्लास है जिनमें वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूलों के अध्यापकों को ग्राम-पथ-प्रदर्शक बनने की शिक्षा दी जाती है। मेरठ, पीलीभीत और बुलन्दशहर जिले में भो सरकारी अफसरों की ओर से ग्राम-सेवा का काम होता है। फ़तेहपुर और फर्रुखाबाद जिले में बेहतर जीवन-सभाएँ हैं, और गोण्डा में कोर्ट आफ वार्ड्स ने 'मेरी उपेक्षा' नाम का नमूने का आदर्श गाँव कायम किया है। सरकारी स्वस्थ्य विभाग अपनी स्वास्थ्य योजना के अनुसार काम कर रहा है। सन् १९३१ में यह काम कोई साढ़े छः सौ गाँवों में था और उसके अनुसार अठारह हजार पाँच सौ चिकित्सा-सहायकों को शिक्षा दी गई। सूबे में सरकारी पाँच हजार ग्राम-पञ्चायतें भी हैं जिन्होंने १९२९ में एक लाख तेरह हजार छोटे-छोटे मामले-मुकदमे तय किये! बनारस में एक

हजार गाँवों में खाद के गड्ढे खुदवाये गये! सरकारी ग्राम-सेवकों को इस बात की शिकायत है कि ग्राम निवासी उनके इस शुभ-कार्य से उदासीन रहते हैं। स्ट्रिकलैण्ड साहब का कहना है कि शुरू में उनका उदासीन रहना स्वाभाविक है। संयुक्त-प्रान्त के इस सरकारी उद्योग का मुख्य श्रेय उसका खर्चीलापन है। अकेली स्वास्थ्य-योजना में सन् १९३० में छः लाख तीस हजार रुपया खर्च हुआ। सहयोग-विभाग की ओर से ग्राम-हितकारिणी या बेहतर-जीवन-प्रचारिणी सभाएँ खोलने वाले सङ्गठन-कर्त्ताओं के वेतन का खर्च भी इसी मद में पड़ता है।

पञ्जाब में ग्राम-सेवा का कार्य संयुक्तप्रान्त से पहले शुरू हुआ। वहाँ सूबे भर में हर जिले में जिला कम्यूनिटी कौंसिलें हैं और सूबे भर के लिए ग्राम कम्यूनिटी बोर्ड (Rural Community Board) है। मिनिस्टर इस बोर्ड का चेयरमैन होता है और जिलाधीश जिला बोर्डों के चेयरमैन होते हैं। ये भी ग्राम-हितकारी महकमों के प्रधान-डायरेक्टर आदि प्रान्तीय बोर्ड के मेम्बर होते हैं। इन महकमों के जिले के अधिकारी जिला-कौंसिलों के सदस्य होते हैं। लोक-हितकारी-सङ्घों— बालचर रेड क्रास आदि संस्थाओं द्वारा नामजद लोग तथा उन्नत विचारों के लोग भी प्रान्तीय बोर्ड तथा जिला-कौंसिलों के मेम्बर बनाये जाते हैं। पंजाब-सरकार कई साल से प्रान्तीय-बोर्ड को एक लाख सालाना की ग्राण्ट देती है जिसे बोर्ड जिला कौंसिलों को बाँट देता है। यहाँ गाँवों के पुस्तकालय और अध्यापक-गण ग्राम-निवासियों की बुद्धि को जाग्रत करते हैं। कृषि तथा दूसरे कामों के लिये पञ्जाब में सहयोग-समितियाँ लगभग सर्वत्र पाई जाती हैं। ये समितियाँ ग्राम-निवासियों की नैतिक उन्नति करने, आपस के झगड़े निवटाने के लिये पञ्चायतें कायम करने, बच्चों तथा वयस्कों के लिए शिक्षा-सभाएँ कायम

करने, स्त्रियों वगैरः सभी को मितव्ययिता सिखाने, सफाई बढ़ाने तथा फिजूलखर्ची रोकने का भी काम करती हैं। इस प्रान्त में मिस्टर ब्रेन ने जो काम किया उसका वर्णन अलग किया जायगा।

मध्य-प्रान्त में सरकारी महकमे कुछ चुने हुए क्षेत्रों में ग्राम-सेवा का कार्य कर रहे हैं! होशंगाबाद जिले में पीपरिया पचास गाँवों का केन्द्र है। इन पचास गाँवों पर कृषि-विभाग, सहयोग-विभाग, शिक्षा विभाग, और पशु-चिकित्सा-विभाग के अधिका-कारियों ने अपनी समस्त शक्ति लगा रक्खी है। इसी प्रकार द्रुग जिले के बलोद केन्द्र के तेरह गाँवों में किया जा रहा है। इस छोटे से केन्द्र में स्वास्थ्य विभाग में छः और सहयोग-विभाग में पाँच अतिरिक्त कर्मचारी रखने पड़ रहे हैं जिनका खर्च बहुत अधिक है।

बम्बई में अहाते भर में तालुका-उन्नतिकारिणी सभाएँ हैं जो गाँवों के प्रमुख व्यक्तियों तथा कृषि-विभाग और सहयोग-विभाग, आदि के सहयोग से काम करती है। उनका मुख्य उद्देश प्रारम्भ में बेहतर बीज, बेहतर औजार तथा खेती के बेहतर तरीकों का प्रचार करना और गाँव वालों की कर्जे और बाजार की दिक्कतों को दूर करना मालूम होता है। बीजापुर जिले में अकाल-विरोधी-संघ (Anti Famine Institute) ग्राम-उन्नति-कारिणी सभा का काम करता है। सन् १६३३ में बम्बई के गवर्नर ने एक बड़ा दरबार करके गाँव के सरदारों और पटेल वगैरः सब ही सरकारी अहलकारों को इस काम की ओर प्रोत्सा-हित करने का प्रयत्न किया था।

बर्मा के इनसीन (Inseen) जिले में लीगू (Hlegue) नामक स्थान में ग्राम्य-स्वास्थ्य-सदन है जिसका प्रबन्ध सरकारी स्वास्थ्य-विभाग के अधीन है। इसका विस्तार छः सौ वर्ग मील

है जिसकी आबादी छः लाख है। सन् १९२६ से इसे रौकफेलर ट्रस्ट से त्रैवार्षिक, आर्थिक सहायता मिल जाती है। इस सदन का व्यय चालीस हजार रुपया साल है। यह व्यय केवल इस बात का प्रयोग करने के लिए किया जा रहा है कि स्वास्थ्य की रक्षा का पूरा प्रबन्ध होने पर क्या सुपरिणाम होंगे ?

मद्रास अहाते के हरएक गाँव में पानी के प्रबन्ध, गाँव की सफाई तथा रास्तों की ठीक कराई के लिए फण्ड रहता है। यहाँ का स्वास्थ्य-विभाग कई वर्षों से लगातार गाँवों की सफाई के काम में दत्त-चित्त है।

ट्रावनकोर में शिक्षा का काफी प्रचार है इसलिए वहाँ ग्रामोन्नति का कार्य लीफलेटों परचों द्वारा किया जा रहा है। मैजिक लैन्टर्न के व्याख्यानों, गाँवों के प्रदर्शनों, और 'कृषि-दिवस' की प्रदर्शनियों द्वारा भी काम लिया जाता है। कृषि-शिक्षा देने वाले मिडिल स्कूल खोले जा रहे हैं। इनके निकले हुए कुछ विद्यार्थी कोनी के कृषि-कार्य पर जाकर बसे हैं। रियासत ने इस कार्य के लिए जमीन और धन दिया है।

लोक-सेवियों के प्रयत्न

लोक-सेवी भी इस पुण्य-कार्य में पीछे नहीं रहे हैं बल्कि सच बात तो यह है कि बम्बई, बङ्गाल तथा मद्रास वगैरः में लोक-सेवियों ने सरकार से पहले ग्राम-सेवा का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया था। मद्रास की पद्धति ग्रामोत्थान-केन्द्र का मण्डल कायम करने की रही है। वे किसी चुने हुए गाँव या मण्डल में ही अपनी सारी शक्ति लगा कर काम करते हैं। वहाँ की ग्राम-सेवा के मुख्य केन्द्र ये हैं—यङ्ग-मैन क्रिश्चियन ऐसोसिएशन (Y. M. C. A) द्वारा स्थापित ट्रावनकोर रियासत में मार्टंडम (Martandam) मलाबार में अरीकोड (Areacode), नीलोर

में इंदुकुरपेट और नीलगिर में रामनाथपुरम्। इसी ऐसो सिएशन ने सन् उन्नीस सौ तीस में अमृतसर जिले के वली के (Vaneik) गाँव में एक केन्द्र खोला। ये केन्द्र-मण्डल गाँव निवासियों के लिए अच्छे साँडों का, मुर्गियाँ तथा शहद की मक्खियाँ पलवाने का, तरकारियाँ उगवाने का, सहयोग-समितियाँ कायम करने, बाजार, सभाएँ तथा स्टोर खोलने का, बच्चे तथा वयस्कों के लिए स्कूल खोलने का, व्याख्यान देने तथा पुस्तकालय स्थापित करने का, लोगों को धन्धे और कारीगरी सिखाने बालचरों की शिक्षा देने, पंचायतें कायम करने और सफाई तथा आरोग्य-संरक्षण का काम करते हैं। परन्तु इस संस्था के सञ्चालकों की राय है कि जिन लोगों का जीवन नीरस और कष्टमय है उनको सफाई की बात पसन्द नहीं आती। इन लोगों के हृदयों में, जीवन का अनुराग उत्पन्न कीजिए, भविष्य की आशा की ज्योति जगाइए, कोई नया धन्धा दीजिए तो यह लोग अपने आप अपने वैयक्तिक व्यवहार को बदल देंगे, अपने आप न बदलें तो दूसरों की प्रेरणा से, या फिर इस दशा में अवश्य ही बदल देंगे। जब तक मनुष्य और मनुष्य से भी अधिक स्त्रियाँ, जीवन से ऊबी हुईं और दुखी होती हैं तब तक वे सफाई की सलाहों से, नाराज नहीं होतीं तो उदासीन अवश्य रहती हैं। परन्तु यदि उनके दृष्टिकोणों में परिवर्तन होने से उनका जीवन तनिक भी सुखी हो जाय तो वे अपने को अधिक स्वच्छ अनुभव करेंगी और तदनुसार आचरण करेंगी।

इन केन्द्रों में ग्राम-सेवकों को शिक्षा दी जाती है। पहले-पहल रामनाथपुरम् में सिर्फ गर्मियों का स्कूल खोला गया। फिर मार्तण्डम् में मार्च-अप्रैल १९३२ में छः हफ्ते में ग्राम-सेवा-शिक्षा-क्रम के अनुसार शिक्षा दी गई जिनमें छात्रों को कृषि, सहयोग, शिक्षा, स्वास्थ्य, पुस्तकालय, बालचर-कार्य और ग्राम्य नेतृत्व

की शिक्षा दी गई। विद्यार्थियों ने आस-पास के गाँवों में अपने कार्य का व्यावहारिक प्रदर्शन किया और निस्सन्देह इस प्रकार शिक्षित-सेवक, अशिक्षित लोक-सेवकों से अधिक श्रेष्ठ तथा उपयोगी सिद्ध हुए। रामनाथपुरम् केन्द्र में प्रतिसाल बारह हजार का ख़र्च है। मार्तण्डम् का पता नहीं। इन पतों के अतिरिक्त देवधर मलाबार सुसङ्गटन ट्रस्ट ने सन् १९३० में पाँच केन्द्र खोले। इस केन्द्र के कर्मचारी मदरास सरकार के महकमों के अफसरों से अपने कार्य की शिक्षा पाते हैं। सहयोग समितियाँ खोलना, कृषि-शिक्षा, खाद के गड्ढे खुदवाना, मादक-द्रव्य-निषेध, बालकों की प्रदर्शनियाँ, वाचनालय, और जादू की लैम्प के व्याख्यान इस ट्रस्ट के सेवा-कार्य-क्रम में सम्मिलित हैं।

दक्षिण कृषि-संघ (The Deccan Agricultural Association) पूना जिले के खेडशिबपुर गाँव में सन् १९३१ से ही सेवा-कार्य कर रहा है।

मदरास सहयोग-समिति (Co-operative Union) द्वारा स्थापित आठ केन्द्र सन् १९३१ में काम कर रहे थे। सब से पुराना केन्द्र जो १९२८ में स्थापित हुआ अलामुरू (Alamuru) में है। हर एक केन्द्र के कार्य-क्षेत्र का विस्तार दस बारह गाँवों तक होता है। हर एक केन्द्र में एक वैतनिक सुपरवाइजर—निरीक्षक पचास से पिचहत्तर रुपये मासिक पर रहता है। जो ग्राम-सेवा के उपर्युक्त सभी कामों को प्रोत्साहन देता रहता है। इन केन्द्रों में खद्दर तैयार कराने पर अधिक जोर दिया जाता है। मदरास कोओपरेटिव बैंक हर एक केन्द्र को एक हजार रुपये साल देती है। अलामुरू इसके अतिरिक्त ढाई हजार रुपये साल और इकट्ठा कर लेता है।

बम्बई कोओपरेटिव इन्स्टीट्यूट की शाखाएँ उधावडी (पूना), कल्लायरे (कनारा) में हैं। पञ्चमहाल में दोहद

ताल्लुका में भील सेवा-मण्डल द्वारा सञ्चालित ऐसे ही छः केन्द्र हैं।

वाकी (शोलापुर) में एक लोक-सेवक काम कर रहा है। नूरायन गाँव (पूना में) शिक्षा-विभाग की ओर से ग्राम-सेवा शिक्षा का केन्द्र है।

हैदराबाद रियासत में दोरनकल और मैडक में ग्राम-सेवा-केन्द्र हैं। दोरनकल ग्राम-सेवा-संघ का मुख्य कार्य आरोग्य संरक्षण है। अध्यापकों को सरल दवाओं का प्रयोग सिखाया जाता है और एक स्वास्थ्य-निरीक्षक गाँवों में स्वास्थ्य-सम्बन्धी सिद्धान्तों पर व्याख्यान देता फिरता है। दाइयों का भी छोटा-सा चौदह दिन का शिक्षा-क्रम है। जिसे प्राप्त करने में सिर्फ दस रुपये खर्च होते हैं और एक क्लास द्वारा घरेलू धन्धे भी सिखाये जाते हैं।

बङ्गाल में कवीन्द्र रवीन्द्र का श्री निकेतन ग्राम-सेवा का कार्य करता है। इसी संस्था की ओर से कार्यकर्त्ता गाँवों में, ग्राम हित-कारिणी सभाएँ कायम करने के लिए जाते हैं, तथा उन्नत बालकों की टुकड़ियाँ गाँवों की सेवा, सफाई आदि करने के लिए जाती हैं। भिन्न-भिन्न कामों के लिए श्री निकेतन के कार्यकर्त्ताओं ने सहयोग-समितियाँ भी कायम की हैं। स्वास्थ्य-संरक्षण और पीड़ितों की सेवा का काम भी किया जाता है। बल्लभपुर आदि गाँवों में गाँवों की दशा की जाँच और अध्ययन का काम भी किया गया है। आसनसोल के पास पढ़ने वाले लड़के-लड़कियों की उषाग्राम नाम की स्वराज्य-भोगी बस्ती है जिसमें श्री निकेतन के आदर्शों का पालन किया जाता है। अमेरिकन महिलाओं की विदेशों के लिए मिशनरी समाज के अधीन इस स्कूल की नीचे की कक्षाओं में लड़के-लड़कियाँ साथ-साथ पढ़ते हैं। बच्चे अपना शासन अपनी कौंसिलों द्वारा स्वयं करते हैं। अपने हाथों से

अपने सादा मकान बनाते हैं तथा सफाई, सहयोग, कृषि, कारीगरी और गृह-प्रबन्ध-शास्त्र के सिद्धान्तानुसार काम करते हैं। श्री निकेतन द्वारा प्रेषित कला-शिक्षक गाना, चित्र-विद्या तथा मिट्टी की चीजें बनाना सिखाता है। ग्राम का वार्षिक मेला आस-पास के गाँव निवासियों को ग्राम-सेवा का पदार्थ-पाठ पढ़ाता है। उषाग्राम के मुख्य सिद्धान्त यह हैं, कि परिश्रम करना बुरा काम नहीं और गाँव निवासियों की उन्नति के जो उपाय बताये जायँ वे इतने सस्ते हो सकें जिन्हें वे आसानी से अपना सकें।

सुन्दर बन गोसाबा में सर डैनिबल हैमिल्टन की दस हजार एकड़ की बस्ती है। इस बस्ती के छोटे-छोटे काश्तकार वैज्ञानिक ढँग से खेती करते हैं, सहयोग-समितियों के द्वारा उनको पूँजी की सुविधा दी जाती है।

बङ्गाल की मलेरिया-विरोधी सभा बहुत बड़ी संस्था है। इसकी १६३२ तक दो हजार शाखाएँ थीं। संस्था १६१२ में स्थापित हुई थी और इसकी पहली शाखा १६१८ में। इन सभाओं का मुख्य काम जङ्गलों की सफाई करना, गड्ढों को भरना, तालाबों में मिट्टी का तेल डालना और कुनैन बाँटना है। इधर सभा दामोदर आदि नदियों की बाढ़ को रोकने का काम भी कर रही है। सभा का काम सरकारी महकमों की सहायता से होता है परन्तु मलेरिया-विरोधी कार्यकर्त्ता गाँव वालों को उस मदद से लाभ उठाने के लिए राजी करके सङ्गठित होते हैं। दिल्ली में ग्राम-पुनस्सङ्गठन लीग कायम हुई है, जो मुख्यतः प्रचार का कार्य कर रही है, और चाहती है कि प्रचार द्वारा गाँव निवासियों में अपनी उन्नति की इच्छा उत्पन्न कर दे। श्री गाँधी आश्रम मेरठ की ओर से रासना नामक गाँव में एक ग्राम-सेवा-केन्द्र खोला गया है जिसमें कई लोक-सेवी कार्यकर्त्ता बड़े उत्साह से काम कर रहे हैं।

संयुक्तप्रान्तीय सरकार के प्रकाशन-विभाग ने ग्रामोत्थान के उद्देश्य से १९३३-३४ में प्रचार-कार्य किया। सिनेमा फिल्म दिखाये। ग्रामोत्थान लारी द्वारा खूब प्रचार किया गया।

नई दिल्ली जंगपुरा की ग्रामोत्थान समिति ने दिसम्बर १९३३ में ग्राम-सेवा-सप्ताह मनाया। १६ दिसम्बर को खानपुर में औषधालय खोला गया। जंगपुरा में इस समिति की ओर से एक वाचनालय और पुस्तकालय भी है। चंद्रनगर गाँव में एक 'डेयरी' खोली गई है तथा रहट और फलों के बगीचों का कार्य भी प्रारम्भ किया गया है। गाँव वालों को फलों तथा तरकारी की खेती भी सिखाई जा रही है।

पञ्जाब के गुरुगाँव जिले में

उस जिले के तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर जिलाधीश मि० एफ. एल. ब्रेन ने १९२० से १९२८ तक अपनी समस्त शक्ति लगा कर काम किया। उन्होंने अपने अधीनस्थ सभी कर्मचारियों और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सारी शक्ति से काम लिया। लाखों रुपये साल व्यय किये। व्याख्यानों, मैजिक लालटेनों, गश्ती बायस्कोपों और रेडियो द्वारा, सहयोग-समितियाँ स्थापित करने के निश्चित कार्य-क्रमों द्वारा, पशु-उन्नति तथा बेहतर-जीवन सभाएँ कायम करके, नये मदरसे तथा शिक्षण संस्थाएँ कायम करके, लड़कियों की शिक्षा द्वारा, खाद तथा टट्टी के लिए गड्ढे खुदवाकर तथा दूसरे सैकड़ों उपायों से घनघोर प्रचार किया। पुरुषों के लिए ग्राम-सेवा-शिक्षा स्कूल और स्त्रियों के लिए गृह-प्रबन्ध-शास्त्र-शिक्षा स्कूल खोला। बहुत अधिक खर्च किया। फिर भी मिस्टर स्ट्रिक्लैंड के शब्दों में उसके सुपरिणाम स्थायी नहीं हुए। हाँ, यह लाभ अवश्य हुआ कि उनके इस कार्य से ग्राम-सेवा-कार्य की ओर देश भर का ध्यान गया। ब्राइन साहब का कहना है

कि उन्होंने खाद के छः फीट गहरे चालीस हजार गड्ढे खुदवा दिए और जिले भर में पन्द्रह सौ से ऊपर लड़कियाँ पढ़ने लगीं। उनके कार्यों, उनकी योजनाओं और उनके समस्त कार्य-क्रम तथा विचारों का बहुत अच्छा वर्णन Village Uplift in India नामक पुस्तक में मिल जाता है, जिसके लेखक वे स्वयं हैं। और भूमिका-लेखक संयुक्तप्रान्त के वर्त्तमान तथा पंजाब के भूतपूर्व गवर्नर सर मालकम हेली हैं। इन्होंने स्त्रियों को पढ़ाने, खाद के लिए गड्ढे खोदने, गाँवों में सफाई रखने, गोबर के उपले थाप कर उसकी खाद बनाने आदि कामों पर बहुत जोर दिया है। इनका ग्राम-सेवा का प्रोग्राम तथा ग्रामोत्थान कार्य-क्रम के प्रचार-कार्यक्रम के नमूने रसिया, उपलों की फरियाद-प्लेग का गीत, देहाती गीत, जो इस पुस्तक के परिशिष्ट में दिए गए हैं, अत्यन्त विचारोत्तेजक हैं।

एक व्यक्ति के उद्योग का नमूना

हमें अनन्तपुर गाँव के कार्य से मिल सकता है। यह छोटा-सा गाँव हिन्दी मध्यप्रान्त के सागर जिले में है। कुल घरों की संख्या एक सौ सतहत्तर है और कुल आबादी आठ सौ पिचासी। तार घर तो क्या, डाक घर भी नहीं हैं। चौंतीस मील तक कोई रेल स्टेशन नहीं। गाँव वाले साल में आठ महीने बेकार रहते हैं। खेती का काम सिर्फ चार महीने को होता है। सन् १६२६ में जेठालाल गोविंदजी नाम के एक उत्साही लोक-सेवी ने इस गाँव को अपना सेवा-केन्द्र बनाया। ये सज्जन अँग्रेजी नहीं जानते, गुजराती के भी विद्वान् नहीं हैं। फिर भी अपने तीन साथियों को लेकर वे घर-घर चरखे का प्रचार करने में जुट गये। वे गाँव के झोंपड़े-झोंपड़े में जाते और लोगों से ओटना कातना, धुनना, बुनना और रंगना सीखने के लिए कहते। लोगों के चरखे सुधारते और गाँव के ही सामान से गाँव वालों के

लिए चरखे बना देते। फल यह हुआ कि तीन वर्ष में उन्होंने अनन्तपुर के चारों ओर पाँच मील के घेरे में सत्रह गाँवों की सेवा के लिए कार्यकर्त्ता पैदा कर लिये। गाँव के कुछ परिवारों ने एक पैसे के सूत से खद्दर का धन्धा शुरू किया और अब वे उसी पूंजी की कमाई से घर भर के लिए कपड़े घर में ही तैयार कर लेते हैं। इनके उद्योग से चार हजार से ऊपर लोगों ने धुनना सीख लिया है और सौ से अधिक ने बुनना। आज-कल जेठालाल गोविन्दजी के पास तीन मुख्य कार्यकर्त्ता, तीन सहकारी, पाँच उपसहकारी, पाँच मददगार और चार उम्मेदवार हैं।

ग्राम-सेवा-कार्य में लोक-सेवकों को अधिकारियों की सहायता भी मिल सकती है। बदायूँ के जिलाधीश ने सन् १९३२ में यह हुक्म निकाल दिया था कि जो लोग अपने तथा दूसरे गाँवों में गाँवों की सेवा का असली काम करेंगे उनकी बन्दूकों की लैसेंस की अर्जियों पर सहानुभूति के साथ विचार किया जायगा। आप चाहते थे कि लोग गाँवों से दूर गड्ढे खुदाकर उनमें खाद डलवावें, मेस्टर हलों का रिवाज बढ़ावें तथा गेहूँ की वेहतर किस्में बुवावें। शाहजहाँपुर में वहाँ के जिलाधीश ए० एन० सप्रू साहब ने गावों में मुफ्त दवा बँटवाने, जच्चाओं को शिक्षा दिलवाने तथा जिले भर में खेती के औजारों का प्रयोग बढ़ाने में प्रशंसनीय काम किया। उन्होंने शिक्षित धायों से दाइयों को शिक्षा दिलवाई। किसानों के लिए उत्तम बीज और अच्छे औजारों का इन्तजाम किया।

बीमारों की सेवा

सेवा-कार्य का प्रारम्भ सहज ही बीमारों की सेवा से किया जा सकता है। यह सेवा एक ऐसी सेवा है जिसके सम्बन्ध में दो मत हो ही नहीं सकते। पीड़ित व्यक्ति की पीड़ा दूर या कम करने अथवा उसे सान्त्वना देने का कार्य एक अति उत्तम कार्य है, इस बात से कौन इनकार कर सकता है? बीमारों की सेवा तुरन्त फलदायिनी सेवा है—उससे जिसकी सेवा की जाती है उसे तुरन्त सुख मिलता है और इस प्रत्यक्ष सेवा से देखने वालों के हृदयों पर भी तुरन्त प्रभाव पड़ता है। कहावत के अनुसार इस सेवा का—

प्रारम्भ घर से

किया जा सकता है। घर में किसी व्यक्ति के बीमार पड़ने पर उसकी सेवा-शुश्रूषा करना, उसके लिए दवा ला देना, दवा तैयार करना, दवा पिलाना, इत्यादि ऐसे कार्य हैं जिनसे घर को सुखमय बनाने में बहुत कुछ मदद मिल सकती है। परन्तु यह याद रहे कि बीमारों की सेवा-शुश्रूषा—तीमारदारी भी एक विद्या है जिसे सीखे बिना कोई अच्छा और उपयोगी सेवक नहीं हो सकता। रोगी के रोग को दूर करने में उसकी सेवा-

शुश्रूषा (नर्सिङ्ग) का भाग नगण्य नहीं होता। इसीलिए प्रत्येक सेवक के लिए यह आवश्यक है कि वह इस विद्या को अवश्य सीखे।

आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा

सीख लेना इस विद्या का एक प्रधान अङ्ग है। चोट लगने से डाक्टर के आने तक पीड़ित के पट्टी आदि बाँधकर उसका दुःख कम करने में, और विशेष अवस्थाओं में, उसके प्राण बचा लेने में यह विद्या बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। यह चिकित्सा किसी लोक-सेवी डाक्टर मित्र से सीखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त, "घायलों की प्रारम्भिक सहायता" के सम्बन्ध में पाठ्य-पुस्तकें तथा अन्य उपयोगी सामग्री सैण्ट-जौन्स एम्बूलेंस बम्बई के मन्त्री को लिखने से मिल सकती हैं। हिन्दी में भी "आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा" नामक पुस्तक इण्डियन प्रेस, प्रयाग से मिलती है। बम्बई का सैण्ट जौन्स एम्बूलेंस तो इस विषय की बाकायदा शिक्षा देता है। उसका पाठ्य-विषय पढ़िये, उन विषयों पर किसी सुयोग्य स्थानीय चिकित्सक के आवश्यक व्याख्यान ध्यान से सुनिये और उसके बाद एम्बूलेंस ऐसोसिएशन की परीक्षा दीजिये। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ऐसोसिएशन आपको सार्टीफिकेट देगा। अखिल भारतवर्षीय रैडक्रास सोसाइटी लखनऊ ने अध्यापिकाओं को आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा सिखाने का आयोजन किया है।

इस विषय के व्याख्यानों का प्रबन्ध

लाहौर के एचीशन (Aitchison) कालेज, अलीगढ़ के एम० ए० ओ० कालेज, शिमला के बिशप काटन स्कूल, पेशावर के मिशन स्कूल और मेयो कालेज अजमेर में तो बहुत पहले

हो गया था। वहाँ इस विषय के क्लास खुले और जिन लोगों ने इन कक्षाओं को पास कर लिया उन्हें सार्टीफिकेट दिये गये। फोर्ट ऐण्ड प्रोप्राइटरी हाई स्कूल, एल्फिन्स्टन सरकिल (Fort and Proprietory High School Elphinstone circle) और न्यू हाई स्कूल, होर्नबी रोड, बम्बई में सोलह वर्ष से कम उम्र वाले बालकों को इसी विषय के जूनियर कोर्स की शिक्षा दी जाती थी। पिछले यूरोपीय महायुद्ध के समय में तो लगभग सभी स्कूलों और कालेजों में ऐसे व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया था। इन दिनों में भी बहुत से कालेजों में इस शिक्षा का प्रबन्ध होगा। जहाँ कोई प्रबन्ध न हो, वहाँ सेवा-पथ का पथिक स्वयं सैण्ट जौन्स ऐम्बूलेंस ऐसोसिएशन के मन्त्री से इस विषय का आवश्यक साहित्य मँगा कर उसका अध्ययन करे अथवा अपने कसबे या शहर के स्कूल या कालेज में, अथवा किसी लोक-सेवी डाक्टर के यहाँ आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा की क्लास खुलवाने का उद्योग करें।

विस्तृत कार्य क्षेत्र

इसी सेवा का क्षेत्र घर से पड़ोसियों और रिश्तदारों तक और अन्त में समस्त गाँव या नगर तक बढ़ाया जा सकता है। हमारे देश भारतवर्ष में तो अभी सहस्रों गाँव ऐसे हैं जिनमें समुचित चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं है। कसबों और शहरों में भी जहाँ वैद्य, डाक्टर और अस्पताल हैं ऐसे अनेक अभागे मिलेंगे जिन्हें बीमारी में दवा तो दूर, कोई पानी पिलाने वाला भी नसीब नहीं होता। ऐसे लोगों को सेवकों की सेवा करके इन्हें अकाल मृत्यु से बचा सकते हैं, प्राण-दान दे सकते हैं।

अस्पताल पहुंचाओ

इनमें से बहुत से ऐसे मिलेंगे जिन्हें अस्पताल में पहुँचाने-भर से उनके प्राण बचाये जा सकते हैं और यह काम हर एक व्यक्ति कर सकता है। हरएक गाँव और नगर में ऐसे बहुत से व्यक्ति मिलेंगे जो ऐसे रोगों से प्राणान्तक कष्ट उठाया करते हैं जो थोड़ी-सी चिकित्सा या चीर-फाड़ से सहज ही, निश्चय दूर किये जा सकते हैं। इनमें बहुतों को तो इस बात का पता ही नहीं होता कि उनके नगर में कोई अस्पताल है। जिनको अस्पताल का पता भी होता है उनमें से बहुत से अस्पताल जाने में झिझकते हैं—बहुतों को वहाँ की दवा पीने या वहाँ का खाना खाने में एतराज होता है। इन लोगों को समझा-बुझा कर अस्पताल पहुँचाओ।

पागल कुत्ते के काटे हुए

बहुत से आदमी ऐसे होते हैं जो ठीक उपचार न होने के कारण घोर कष्ट उठाते हैं, और कभी-कभी प्राण तक खो बैठते हैं। इस विषय के विशेषज्ञों ने हिसाब लगाकर बताया है कि पागल कुत्तों के काटे हुए लोगों में से जिनका उपचार नहीं होता उनमें पन्द्रह प्रतिशत व्यक्ति मर जाते हैं, परन्तु जिनकी चिकित्सा होती है उनमें से दो सौ पीछे सिर्फ एक व्यक्ति मरता है। इससे सिद्ध हुआ कि यदि कोई लोक-सेवक इन लोगों की चिकित्सा करावे तो वह बहुतों के प्राण बचा सकता है। पागल कुत्ते के काटे हुओं की चिकित्सा उत्तरी भारत में पास्टर इन्स्टीट्यूट (The Paster Institute) कसौली में और दक्षिणी भारत में पास्टर इन्स्टीट्यूट, कोनूर में होती है। इधर कई वर्ष से इसकी चिकित्सा का उत्तम प्रबन्ध आगरे के इन्फेक्सस डिसीजेज हास्पीटल में भी हो गया है। अतः उन्हें वहाँ भेज देना चाहिए।

गरीबों को बताइये

कि यदि किसी गरीब रोगी के पास किसी सरकारी अफसर का यह सार्टीफिकेट हो कि यह व्यक्ति किराया नहीं दे सकता तो रेलवे की तरफ से उसे तीसरे दरजे का लौटा-बाट टिकट मुफ्त मिल जाता है। अस्पताल में उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध मुफ्त होता है और उसे खाने-पीने को भी मुफ्त ही मिलता है। इस प्रकार के दातव्य औषधालय अनेक शहरों में हैं। अब तो कसबों में भी ऐसे दवाखाने हैं जहाँ लोगों को दवा मुफ्त दी जाती है। कसौली के इन्स्टीट्यूट जैसी संस्थाओं में गरीबों के लिए इस प्रकार का कुछ न कुछ प्रबन्ध रहता ही है। साथ ही यह बता देने की अवश्यकता है कि चिकित्सा शीघ्र ही करनी चाहिए और यदि कसौली, भुवाली आदि जाने से पहले यह मालूम किया जा सके कि वहाँ स्थान है या नहीं तो अच्छा रहता है।

क्षयी पीड़ितों की सहायता

राजयक्ष्मा बहुत ही घातक है। परन्तु समुचित ज्ञान और तदनुकूल उपाय से बहुत से क्षय-पीड़ितों के प्राणों और स्वास्थ्य की रक्षा की जा सकती है। भुवाली स्वास्थ्य-निकेतन जिला नैनीताल में क्षय-ग्रस्त रोगियों की चिकित्सा का अति उत्तम प्रबन्ध है।

धर्मपुर के स्वास्थ्य-निकेतन

में भी क्षय पीड़ितों की बहुत अच्छी चिकित्सा होती है। निकेतनों में साधारणतः वे ही रोगी लिए जाते हैं जिनका रोग अभी प्रारम्भ ही हुआ हो और पहली अवस्था से आगे न बढ़ा हो। इन निकेतनों में भर्ती होने के लिए प्रार्थना-पत्र यहाँ के सुपरिन्टेन्डेन्ट के नाम भेजने चाहिये।

अन्धे, बहरे और गूंगों की सहायता

करना भी सेवा का एक अति उत्तम प्रकार है। अन्धों के लिए रेलवे टैक्नीकल इन्स्टीट्यूट लाहौर में एक गवर्नमेंट स्कूल है। देहरादून के पास राजपुर में अन्धे ईसाइयों के लिए एक औद्योगिक आश्रम (The North Indian Industrial Home for Christian Blind) है। यहाँ केवल चार या पाँच रुपये मासिक लेकर अन्धे लड़कों को अनेक व्यापार सिखाये जाते हैं। जमना मिशन इलाहाबाद में अन्धे स्त्री-पुरुषों के लिये एक होस्टल है। डब्लिन यूनीवर्सिटी मिशन छोटा नागपुर, अमेरिकन मिशन बम्बई, विक्टोरिया ब्लाइन्ड स्कूल बम्बई स्कौच मिशन पूना, और मिश ऐशवर्थ पालम कोटा, में अन्धों के लिए स्थान है। इन दिनों सम्भव है कुछ नई सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाएँ भी खुली हों। अन्धों को इनमें भेजकर उनका जीवन उपयोगी और सार्थक बनाया जा सकता है। नौचिड रोड बम्बई में बहरे और गूंगे बालकों के लिए The Bombay Institute for Deaf & Dumb नाम की एक संस्था है। इस संस्था में गूँगे और बहरे बालकों को शिक्षा दी जाती है। जो बालक स्कूल के छात्रालय में रहना चाहें उनके लिये छात्रालय का भी प्रबन्ध है। इस संस्था में प्रत्येक जाति और प्रत्येक धर्म के व्यक्ति लिये जाते हैं। संस्था में अनेक प्रारम्भिक विषयों की शिक्षा दी जाती है। नियमानुसार छः वर्ष से कम और सोलह वर्ष से अधिक अवस्था वाले बालक नहीं लिए जाते। स्कूल की फीस तीन रुपये मासिक और छात्रावास तथा स्कूल दोनों की फीस पन्द्रह रुपये मासिक है। इस संस्था को नियमावली मँगवा लेने से समस्त ज्ञातव्य बातें मालूम हो जायँगी और यदि इन नियमों में कुछ परिवर्तन हुआ होगा तो उसका भी पता चल जायगा। एक ऐसी संस्था कलकत्ता में भी है।

दक्षिणी भारत में पालम कोटा में बहरे और गूंगों के लिए मिस स्वेन्सन का एक स्कूल है। इन संस्थाओं में भेजकर बहरों और गूंगों की सहायता की जा सकती है।

रोगियों के लिये अस्पताल से

औषधियाँ ले जाने का काम भी सेवा का एक अति उत्तम ढंग है। इससे एक पन्थ दो काज होते हैं। इससे सेवक को अस्पताल में रोगी की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए लम्बी तपस्या भी नहीं करनी पड़ती और औषधि का प्रयोग भी जितने दिन चाहिए उतने दिन किया जा सकता है।

अस्पतालों को सहायता

अस्पतालों में रोगियों के ऐसे बहुत-से काम होते हैं जिन्हें करके सेवाधर्मावलम्बी उनकी अच्छी सेवा कर सकते हैं। बहुत-से रोगी अपने किसी मित्र या हितू के अथवा परिवार तथा घर के लिए पत्र भेजना चाहते हैं। इनमें बहुतों के पास पोस्टकार्ड के पैसे भी नहीं होते और बहुतों को लिखना नहीं आता। ऐसे व्यक्तियों को पोस्टकार्ड ला देना अथवा उनका पत्र ला देना उनकी बड़ी अच्छी और आवश्यक सेवा करना है। यह सेवा कोई मामूली सेवा नहीं है इसकी महत्ता का पता इसी बात से चल सकता है कि एक अस्पताल में इस प्रकार की सेवा करने वाले एक विद्यार्थी को केवल एक समय में, एक सौ बीस पत्र लिखने पड़े थे।

अस्पताल में जाकर देखने पर

इसी प्रकार की और भी बहुत-सी सेवाएँ सूझ पड़ेंगी। उदाहरण के लिए आप देखते हैं कि कोई बारह बरस का लड़का अपनी चारपाई पर पड़ा हुआ उदास-चित्त इधर-उधर देख रहा

है। वह बीमारी की हालत में अपने समस्त मित्रों से दूर पड़ा हुआ है। उसका जी बहलाने के लिए उसे कोई मनोरञ्जक और शिक्षा-प्रद कहानी सुनाना, उससे प्रेमपूर्वक बातें करना, उसे कुछ पढ़के सुना देना उसके दुखी मन को प्रसन्न करना है। यदि अस्पताल में कोई छोटा-सा अनाथ बालक पड़ा हुआ हो तो उसे बाजार से ऐसे खिलौना ला दो जिससे खेल कर वह अपने दुख के दिन कुछ सुख के साथ काट सके। ये बातें कहने सुनने में बहुत साधारण मालूम होती हैं परन्तु इसका महत्व बहुत अधिक है—इनमें से एक भी काम लोगों का जीवन उच्च और सुखमय बनाने में बीसियों उपदेशों से कहीं अधिक काम करता है। इन कामों से, इस प्रकार की सेवा करने वाले की आत्मा को एक स्वर्गीय सुख और सन्तोष मिलता है। उसका उत्थान होता है और जिसकी सेवा की जाती है उसकी आत्मा पर भी अमिट और अचूक उत्थानकारी प्रभाव पड़ता है। सेवा-धर्म के प्रचार में भी ये छोटी-छोटी सेवाएँ बहुत कारगर सिद्ध होती हैं, और अस्पतालों में ऐसी सेवाओं के लिए बहुत अधिक अवसर मिलते हैं, क्योंकि अस्पतालों के थोड़े से वेतन-भोगी कर्मचारी, जिनको अपने काम से ही फुरसत नहीं मिलती उन छोटे-छोटे परन्तु रोगियों को सुख और शान्ति पहुँचाने वाले कामों को नहीं कर सकते। साथ ही, सेवक यह भी देख सकता है कि अस्पताल में रोगियों को खाना ठीक-ठीक मिलता है या नहीं। निम्न कर्मचारी कहीं उसमें गड़बड़ी तो नहीं करते। किसी ऐसी बात का प्रमाण मिलने पर सेवक को चाहिए कि वह कौशल द्वारा अस्पताल के उच्च कर्मचारियों का ध्यान उस ओर दिला कर उसे दूर करा दे। रोगियों के साथ अच्छा व्यवहार न होने की शिकायत होने पर भी यही किया जा सकता है। परन्तु इस प्रकार की सेवा करते समय—

दो बातों का ध्यान रहे

एक तो यह कि आपका व्यवहार बहुत ही शान्त, विनयपूर्ण और धैर्यपूर्ण हो जिससे दूसरे रोगियों को कोई कष्ट या किसी प्रकार की शिकायत न होने पावे। अपने व्यवहार और अपने मीठे शब्दों से जिस रोगी की सेवा करना चाहो उसे पहले यह विश्वास दिला दो कि तुम्हारा उद्देश केवल उसकी सेवा-शुश्रूषा करना और उसे आराम पहुँचाना है। दूसरे अपने व्यवहार से अस्पताल के अधिकारियों और कर्मचारियों को किसी प्रकार की शिकायत का मौका न दो। किसी रोगी को कोई फल या अन्य स्वादिष्ट वस्तु देना चाहो तो नर्स से पूछ कर दो। चाहो तो, पढ़े-लिखे रोगियों को पढ़ने के लिए, सचित्र समाचार पत्र, मासिकपत्र या सुपाठ्य पुस्तकें देकर भी उनकी सेवा कर सकते हो। ये पुस्तकें अध्यापकों, पुस्तकालयों तथा अन्य मित्रों और लोक-सेवी सज्जनों से प्राप्त कर सकते हो।

सेवा के ये कार्य

ऐसे हैं जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति जिसमें सेवा-भाव हो, कर सकता है। इनमें किसी प्रकार के साधनों की जरूरत नहीं है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि सेवक एक उपयोगी और जिम्मेदार नागरिक की हैसियत से जरूरी जानकारी रखता हो।

समूह की सामूहिक सेवा

थोड़ा कदम आगे बढ़ाकर, सेवक, समूह की सामूहिक सेवा की ओर अग्रसर हो सकता है। सेवा के ये अवसर प्रदेश-विशेष में किसी बवा (महामारी) के आजाने पर मिलते हैं। भारतवर्ष में तो इस प्रकार की कोई न कोई महामारी लगभग सभी प्रदेशों में हर साल बनी ही रहती है। ऐसे अवसरों पर व्यक्तिगत हैसियत से व्यक्तियों की सेवा करने के लिए और

समूह की सामूहिक सेवा करने के लिए भी यह आवश्यक है कि मालूम हों।

सामूहिक सेवा के लिए

भी अब प्रत्येक व्यक्ति या संस्था के लिए अनेक साधन और अवसर प्रस्तुत हैं। सेवक अपने गाँव या गाँवों के लिए, जरूरत होने पर, डिस्ट्रिक्टबोर्ड के जरिए, चिकित्सा का प्रबन्ध करा सकता है। वह किसी वैद्य को गरीबों को मुफ्त दवा बाँटने और उनकी चिकित्सा करने के लिए स्थानीय जिला बोर्ड से अथवा किसी प्रान्तीय संस्था से जैसे बोर्ड आफ इन्डियन मैडीसन्स लखनऊ से सहायता दिला सकता है। सेवक के जिले में अच्छी सेवा समिति हो तो उसे दवायें बाँटने में, सफरी दवाखाना चलाने और इसी तरह के कामों में सहायता देकर उन हजारों गरीबों की चिकित्सा का प्रबन्ध करा सकता है जिन्हें चिकित्सा की परमावश्यकता है। संयुक्तप्रान्त में और कुछ दूसरे प्रान्तों में एक सरकारी योजना है जिसके अनुसार जो डाक्टर गाँव में रह कर डाक्टरी करना चाहे उसे तीस रुपए तक की मासिक सहायता बोर्ड से और लगभग इतना ही दवाओं के लिये सरकारी ग्रान्ट से मिलते हैं। यह प्रबन्ध डिस्ट्रिक्ट-बोर्डों के जरिए से हो सकता है। संयुक्तप्रांत की १६२६-२७-२८ की सिविल हौस्पिटल एण्ड डिस्पैन्सरी की रिपोर्ट से पता चलता है कि उस समय तक इस व्यवस्था के अनुसार एक सौ सात डाक्टर गाँवों में बस चुके थे।

ऐसी अनेक संस्थायें हैं

जिनसे इस प्रकार की सेवा में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। उदाहरण के लिये हिन्दुस्तान में जचाओं की मृत्यु बहुत अधिक होती है—खासकर बालकों की। जब कि इङ्गलैंड

में हजार बालकों में से सत्तर की मृत्यु होती है तब हिन्दुस्तान में उससे ढाई गुनी से भी अधिक अर्थात् हजार पीछे एक सौ नवासी, बालकों की मृत्यु हो जाती है। इसे कम करने से सिवाय अधिक सेवा, धर्म और पुण्य का काम और कौन-सा हो सकता है? इस कार्य के लिए हिन्दुस्तान के भूतपूर्व वायसराय लार्ड चैम्सफोर्ड की धर्मपत्नी लेडी चेम्सफोर्ड ने मैटर्निटी एण्ड रैड क्रास सोसाइटी या चाइल्ड वैलफेयर लीग नाम की एक संस्था स्थापित की थी जो अब तक काम कर रही है, संयुक्तप्रान्त में इस लीग की पैंतालीस शाखाएँ १९२९ तक स्थापित हो चुकी थीं। यह लीग दाइयों के सुधार और उनको शिक्षा का प्रबन्ध करती है तथा बाल्य-सप्ताहों (Baby weeks) का सङ्गठन करके बालकों की उन्नति की ओर देशवासियों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न करती है। इसी तरह ब्रिटिश एम्पायर लैप्रोसी लीग ऐसोसिएशन की एक सैण्ट्रल कमेटी है, जिसे वायसराय ने मुकर्रर किया है। यह ऐसोसिएशन देश भर में कोढ़ियों के लिए ऐसे औषधालय स्थापित करने का प्रयत्न करता है जिनमें कोढ़ की बीमारी का निदान और उसकी प्रारम्भिक चिकित्सा का प्रबन्ध हो। संयुक्तप्रान्त में कोढ़ियों की चिकित्सा के लिए बनारस और कानपुर में दवाखाने हैं तथा नैनी, आगरा और देहरादून में आश्रम (Asylums) इसी प्रान्त में आगरा, कानपुर, बनारस, लखनऊ और इलाहाबाद में क्षय-रोगियों की चिकित्सा के लिए केन्द्र स्थापित किये गये हैं। सन् १९२८ से लखनऊ में एक ऐसी स्वास्थ्य पाठशाला (Health School) खोली गई है जिसमें केवल हिन्दी या उर्दू पढ़े हुए लोगों को स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों की शिक्षा दी जाती है।

कुछ उदाहरण

अब तक बीमारों की सेवा के कुछ मार्ग सुझाये गये।

इनसे सेवा-पथ के पथिकों को मार्ग भी सूझेगा और कार्य-क्षेत्र की विशालता का ज्ञान भी हो जायगा। नीचे कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा की गई सेवाओं के उदाहरण दिये जाते हैं। इनसे यह पता चल सकेगा कि इच्छा और संकल्प होने पर थोड़े-से प्रारम्भ से कैसे बड़े-बड़े प्रयत्न किये जा सकते हैं और सेवा के छोटे-छोटे कार्यों द्वारा भी कितना अच्छा काम किया जा सकता है। इन उदाहरणों से सेवा के कुछ प्रकारों का भी पता चलेगा और सेवा-मार्ग की व्यावहारिक कठिनाइयों का भी काम-चलाऊ अन्दाज़ किया जा सकेगा।

एक विद्यार्थी "सैकिन्ड मिडिल" में पढ़ता था। अपने चाचा के प्रोत्साहन से वह अपने अवकाश के समय को नगर की डिस्पैन्सेरी में बिताने लगा। शुरू में वह केवल चम्मच ले जाने और तस्तरी धोने का ही काम कर सकता था, परन्तु धीरे-धीरे वह मुख्य-मुख्य औषधियों के बनाने और उनका व्यवहार करने में कुशल हो गया। ज्वर में प्रायः नम्बर एक और नम्बर दो सम्मिश्रण दिये जाते हैं। उनके भेदों और प्रयोगों को वह जान गया। तिल्ली के बीमार को दिये जाने वाले नम्बर चार सम्मिश्रण का प्रयोग और पेचिश तथा दस्तों में दिये जाने वाले नम्बर बारह और नम्बर तेरह सम्मिश्रणों का बनाना भी उसने सीख लिया। इतना सीख लेने के बाद जब कभी वह छुट्टियों में घर जाता तब वहाँ के औषधालय की उपयोगिता ड्योढ़ी हो जाती। प्रत्येक सेवक इसी प्रकार कुछ दिन तक दो घण्टे रोज किसी वैद्य या डाक्टर के साथ काम करे तो वह कुछ साधारण औषधियों का बनाना और उनका प्रयोग सीख सकता है। सफाखाने में यही काम करने पर कोई भी सेवक काम सीखने के साथ-साथ चिकित्सा-कार्य में सहायक भी सिद्ध हो सकता है। मित्र, शिक्षक या नातेदार लोक-सेवियों

का ध्यान इस ओर आकर्षित करके स्वयं सेवा-पथ के पथिक हो सकते हैं। गर्मियों की छुट्टियों में विद्यार्थी इस प्रकार की सेवाओं द्वारा किस प्रकार सेवा-धर्म पर आरूढ़ हो सकते हैं इसके उदाहरण लीजिये।

कुछ विद्यार्थियों की रिपोर्टें

एक विद्यार्थी ने गर्मी की छुट्टियों में बीस मनुष्यों को जिंक-लोशन बाँटा, चार मनुष्यों को ऐमोनिया का लेप और दो व्यक्तियों को टिंच्चर आइडीन दिया। एक विद्यार्थी ने रिपोर्ट की कि पहले तो लोग मुझे अनाड़ी समझ कर मुझसे दवाएँ लेने में डरे परन्तु जब मैं दो एक बार स्थानीय डाक्टर साहब को अपने साथ ले गया तब लोगों को विश्वास हुआ और मुझे सफलता मिली।

एक विद्यार्थी ने लोगों के लिए बाजार से औषधियाँ खरीद-कर लाने का काम किया।

"कई बालकों की आँखें खराब थीं। मैंने डाक्टर की सलाह लेकर उनकी आँखों में जिंक लोशन लगाया। एक व्यक्ति को अफीम खाने की लत थी। मैंने उसे अफीम की बुराइयाँ समझाईं। कुछ प्रयत्न के बाद उसने अफीम खाना बहुत कम कर दिया। पहले वह महीने भर में एक रुपये की अफीम खा जाता था अब दो आने की खाता है।"

"कुछ लोग मरहम लगाना नहीं जानते थे। मैंने उनके घावों पर मलहम लगाकर तीन-चार रोगियों की सेवा की।"

एक विद्यार्थी ने अपने नगर के लोगों से स्वास्थ्य और सफाई सम्बन्धी बातें करके उन्हें नगर में सफाखाने खोलने की आवश्यकता इतनी अच्छी तरह समझा दी कि वे सफाखाने के लिए चन्दा देने को तैयार हो गए।

बरीसाल में कुछ लोक-सेवी सज्जनों ने ब्रज-मोहन-संस्था के नाम से एक सभा स्थापित की और इस सभा ने प्रति वर्ष विद्यार्थियों से असहाय रोगियों का उपचार और सुपात्र निर्धनों की सेवा करने का काम लेकर उनमें सेवा-भाव भरने के लिये "गरीबों के छोटे भाई" नाम की एक समिति बनाई। इस समिति ने जो सेवाएँ कीं, नगर-निवासियों ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। एक समय समिति के सदस्यों ने अपनी सेवा-शुश्रूषा से एक ही घर के छः व्यक्तियों के प्राण बचाये। कई समय समिति के सदस्यों ने अपने हाथों से छप्पर छाकर, नींव खोदकर, खम्भे और टट्टियाँ तक बनाकर असहाय अशक्तों के लिए रहने योग्य घर बनाये। इसी समिति के एक सदस्य ने जो कॉलेज की चतुर्थ वर्ष कक्षा का विद्यार्थी था रोगियों की सेवा-शुश्रूषा के कार्य में ही अपनी बलि चढ़ा दी! उसके इस ज्वलन्त आत्मा-त्याग की पुण्य-स्मृति में उसके सहपाठियों और शिक्षकों ने चन्दे द्वारा एक फण्ड स्थापित किया है जिसकी ब्याज से प्रतिवर्ष उसके मृत्यु-दिवस पर नगर के दीन-दुखी ग़रीबों को लगभग छः कम्बल बाँटे जाते हैं।

लोगों को अपने प्रियपात्रों की स्मृति में इस प्रकार का फण्ड स्थापित करने अथवा इस प्रकार के फण्ड में, किसी निश्चित प्रकार की सहायता देने के लिए, दान देने को प्रोत्साहित करके समाज और मनुष्य-जाति की अच्छी सेवा की जा सकती है।

सन् १९२५ में आगरा शहर में जब प्लेग आई थी तब नगर काँग्रेस कमेटी की एक उप-समिति ने पुस्तक लेखक की अध्यक्षता में प्लेग-पीड़ित मुहल्लों और घरों की सफाई करा-कर, उन्हें फिनाइल, फिनाइल की गोलियाँ इत्यादि दवाइयाँ बाँटकर तथा जिन प्लेग ग्रस्तों को सब लोग छोड़ चुके थे उनकी सेवा-शुश्रूषा करके अपने नागरिक कर्त्तव्य का पालन किया।

इस कार्य में अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों ने पुस्तक-लेखक के साथ मुरदे ढोये और श्री कामताप्रसाद उर्फ बच्चाबाबू ने अपनी सेवा शुश्रूषा द्वारा बीसियों के प्राण बचा लिये। श्रीराम उत्साही कार्यकर्त्ता ने तो इसी सेवा-कार्य में अपनी बलि चढ़ा दी।

चार जनवरी सन् १९३४ का लुधियाना का समाचार है कि डाक्टर श्यामसिंह के सुपुत्र सरदार सन्तसिंह ने लुधियाना के मरणासन्न-व्यक्ति के प्राण बचाने के लिये अपने प्राण निछावर कर दिये। कहा जाता है कि फरवरी १९३२ में सरदार सन्तसिंह ने जो कि उस समय किंग एडवर्ड मेडिकल कालेज लाहौर के तीसरे दर्जे में पढ़ता था एक ऐसे रोगी को बचाने के लिये जिसके प्राण सङ्कट में थे अपना चालीस छटाँक यानी ढाई सेर रक्त रोगी के शरीर में प्रविष्ट करने के लिए दे दिया। वह रोगी तो अन्ततोगत्वा स्वस्थ और चंगा हो गया। लेकिन इस रक्त-दान के बाद सरदार सन्तसिंह का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। उसकी पसलियों में पीड़ा होने लगी। फलस्वरूप डाक्टरों की सलाह के अनुसार उसे विश्राम के लिये लम्बी छुट्टी लेनी पड़ी। विश्राम के कारण वह कुछ अच्छा भी होने लगा था परन्तु एकाएक तीसरी जनवरी को हौलदिली से उसका प्राणान्त होगया। इस शहीद की उम्र पचीस वर्ष की थी और उसकी शादी हुए एक वर्ष भी नहीं होने पाया था। वह अपने पीछे एक विधवा युवती छोड़ गया है! यह बलिदान इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि सेवा-कार्य में बड़ी से बड़ी वीरता और बलिदान का क्षेत्र विद्यमान है।

यदि इस समाचार की तुलना हम मदरास की निम्न-लिखित घटना से करें तो हमें इस बलिदान की महत्ता और भी अधिक अनुभव होने लगेगी। घटना यह है—कोट्याप के सम्वाददाता का कहना है कि केन्द्रीय ट्रावनकोर

के एक गाँव में सात बच्चों की बड़ी दुखद मृत्यु हुई। परिवार में एक बच्चा बीमार होकर मर गया। बाकी छः को भी वही बीमारी हुई और वे भी परलोकवासी हुए। माता-पिता घबड़ाकर गाँव से भाग गये। डाक्टरी जाँच से मालूम हुआ कि बीमारी एक प्रकार की पेचिस की थी। इस दुखद घटना से बीमारों की सेवा की महती आवश्यकता और जहाँ माता-पिता बच्चों को छोड़ कर भाग जाते हैं वहाँ दूसरों के लिए अपने प्राण होम देने की महत्ता स्वयं स्पष्ट है।

श्रीनगर के मिशन स्कूल के विद्यार्थियों ने, जिनमें द्विज—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जाति के विद्यार्थी भी थे, सब जाति और सब धर्मों के असमर्थ रोगियों को झील के किनारे से अस्पताल तक अपनी पीठ पर ढोया। झील में जिन नावों में रोगी ले जाये गये उनको विद्यार्थियों ने ही खेया, और खेया आनन्द के साथ गाते हुए। इसी स्कूल के विद्यार्थियों ने क्रिकेट खेलते समय यह सुनते ही कि एक व्यक्ति की टाँग खिड़की से गिरने के कारण टूट गई है क्रिकेट छोड़कर पीड़ित की प्रारम्भिक चिकित्सा की।

राष्ट्रीय विपत्तियों के समय

सेवा और सङ्घटित सेवा का सर्वोत्तम अवसर उपस्थित होता है। ऐसे समयों पर लोग अपने समस्त मत-भेदों को भुलाकर सेवा-कार्य में परस्पर सहयोग कर सकते हैं। इस प्रकार यह सेवा अनेक प्रकार से फलप्रद और उत्थानकारिणी होती है। इस प्रकार की सेवा का एक उत्कृष्ट उदाहरण गुजरात में बाढ़ के समय की वह सेवा है जो गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के स्वयं-सेवकों और गुजरात राष्ट्रीय विश्व-विद्यालय के विद्यार्थियों ने अपने समस्त राजनैतिक मत-भेदों

को भुलाकर अधिकारियों के सहयोग से किया और जिसकी प्रशंसा स्वयं बम्बई सरकार के उच्चतम अधिकारियों ने मुक्त-कण्ठ से की। काँगड़ा भूकम्प-पीड़ितों की सहायता में भी विद्यार्थियों ने अच्छा भाग लिया युक्त प्रान्त के एक अकाल में लखनऊ के पैंतीस और इलाहाबाद (प्रयाग) के साठ विद्यार्थियों ने थीस्टिक रिलीफ फण्ड के लिए आटा इकट्ठा किया। शहर की गली-गली में फिर कर सुपात्र विधवाओं की सहायता की और अपात्रों अथवा कुपात्रों को सहायता नहीं मिलने दी। इसी समय लाजपतराय फण्ड के प्रबन्ध में सहायता देने के लिए पञ्जाब के एक कालेज के ग्यारह विद्यार्थी युक्तप्रान्त गये। दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतवासियों की उनके एक अकाल में सहायता करने के लिए अनेक विद्यार्थियों और नवयुवकों ने चन्दा इकट्ठा किया और कुछ ने तो स्वयं अपने शारीरिक परिश्रम से कुछ कमाकर चन्दा दिया। ऐसे कार्यों में सेवा-व्रतियों को एक-एक दिन में बीस-बीस मील पैदल चलना पड़ा परन्तु इसी लगन से उनका सेवा-भाव तप कर पक्का हुआ। बिहार में भूचाल-पीड़ितों की सेवा का कार्य इस प्रकार की सेवा का सर्वोत्कृष्ट नया उदाहरण है।

अमेरिका के कुछ उदाहरण

संयुक्त प्रदेश अमेरिका के बाल्टीमोर प्रदेश में वहाँ की एक दातव्य संस्था के एक प्रतिनिधि की देख-रेख में मेडिकल स्कूल के विद्यार्थियों का एक दल बनाया गया। इस दल के सदस्य उन लोगों की सेवा करते थे जो अस्पताल में अपनी चिकित्सा कराने आते थे। ये लोक-सेवी विद्यार्थी उन रोगियों की चिकित्सा भी करते थे और उनकी सेवा भी। वे उनके निजी छोटे-बड़े कामों में उनकी भरसक सहायता करते तथा उन्हें उचित और उपयोगी

सलाह देते। अमेरिका के जौन्स हौफिन्स के विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने भी इसी प्रकार एक संस्था सङ्गठित करके प्रशंसनीय सेवा-कार्य किया।

चोर की मां को मारो

सेवा का विशाल क्षेत्र

भारतवर्ष में प्रति वर्ष लाखों मनुष्य तरह-तरह की बीमारियों के शिकार होकर अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं! सन् १९१८ में ब्रिटिश भारत में हैजा, चेचक, प्लेग, बुखार और पेचिस से एक करोड़ पचीस लाख आदमी बेमौत मरे। अकेले हैजे से १९१९ से लेकर १९२९ तक दस साल में प्रतिवर्ष दो लाख अस्सी हजार से लेकर पाँच लाख अठत्तर हजार तक मौतें हुईं। इसी तरह इन दस सालों में चेचक से, प्रतिवर्ष इक्यावन हजार से लेकर एक लाख छत्तीस हजार मौतें हुईं। प्लेग से प्रति वर्ष चौहत्तर हजार से लेकर सात लाख तेतालीस हजार मृत्युएँ हुईं। पेचिस, अतिसार से प्रतिवर्ष दो लाख चौंसठ हजार से लेकर दो लाख इक्यानवे हजार आदमी मौत के मुँह में गए। बुखारों में १९०९ से लेकर १९१९ तक एक वर्ष में चालीस लाख से लेकर एक करोड़ दस लाख तक बलियाँ हुईं। इनमें से अगर १९१८ की साल इसलिए निकाल भी दी जाय क्योंकि उस साल इन्फ्लुएञ्जा की महामारी आई थी तो भी हर साल चालीस लाख मौतों की औसत पड़ी।

जब मौतों की संख्या का यह हाल है तब बीमारों की संख्या का तो कहना ही क्या है? समस्त बीमारों की सेवा-शुश्रूषा में जो धन और जन-शक्ति का व्यय होता है तथा बहुत-से मरने वालों की मौत से उनके परिवारों पर विपत्तियों के जो पहाड़ टूट पड़ते हैं उनका तथा इसी तरह की अन्य अनेक हानियों का

हिसाब लगाया जाय तो मालूम पड़े कि इन बीमारियों से देश को धन और जन की कितनी भारी हानि उठानी पड़ती है।

इन बीमारियों में पीड़ितों की सेवा करने से ही सेवा-कार्य की इतिश्री नहीं हो जाती। वास्तव में तो इन बीमारियों को कम या दूर करने के प्रयत्नों के रूप में सेवा का एक अति उत्तम और विशाल क्षेत्र पड़ा हुआ है, और इन बीमारियों को कम और दूर किया जा सकता है। इसलिए जो सज्जन सेवा-पथ के पथिक—सेवा-धर्म के अनुयायी होना चाहें उन्हें इस ओर अवश्यमेव ध्यान देना चाहिए।

पश्चिमी देशों ने वैज्ञानिक सफाई से मृत्यु-संख्या बहुत कम करने और जीवन की आशा बढ़ाने में प्रत्यक्ष सफलता प्राप्त की है। कुछ प्रमाण लीजिए। सन् १८६६ में न्यूयार्क में एक हजार पीछे चौंतीस आदमी मर जाते थे, १९१२ में वहाँ की मृत्यु-संख्या हजार पीछे चौदह यानी आधी से भी कम रह गई है। इसी तरह अमेरिका ने, वर्षों में जीवन की आशा बारह साल बढ़ा ली है। दूसरे देशों ने ही यह कर दिखाया हो सो भी नहीं। भारतवर्ष में भी इन्दौर में वहाँ के अधिकारियों और जनता ने उद्योग करके प्लेग को मार भगाया है।

सफाई का महत्व

इन बीमारियों को दूर करने के लिए सफाई की आवश्यकता है। कैसे? सुनिये। हैजा गन्दा पानी पीने से होता है। आरनोल्ड अप्टन नाम के एक अँग्रेज इञ्जीनियर ने अपनी 'Happy India' नामक पुस्तक में लिखा है कि एक बड़े सूबे के इञ्जीनियर ने मुझ से कहा था कि मैं जब चाहूँ तब वाटरवर्क्स द्वारा लोगों के पीने के लिए साफ पानी का इन्तजाम करके किसी भी जिले से हैजे को नष्ट कर सकता हूँ।

आर्नोल्ड अप्टन साहब ने ही लिखा है कि हिन्दुस्तान में जितने बच्चे पैदा होते हैं उससे ज्यादा टीकों के लिए सरकार टीका लगाने वालों को वेतन देती है फिर भी चेचक से होने वाली मौतों का बन्द होना तो दूर, उनमें कहने योग्य कमी भी नहीं होती क्योंकि चेचक का एक मुख्य कारण गन्दगी है। जब तक गन्दगी दूर नहीं होती तब तक चेचक भी दूर नहीं हो सकती। गन्दगी पेचिश और अतिसार का भी एक मुख्य कारण है। यही बात मलेरिया यानी फसली बुखार की है। जिस घातक बुखार से हर साल चालीस लाख आदमी मरते हैं और करोड़ों बरसों के लिये अपनी प्राण-शक्ति को निर्बल बना बैठते हैं उसकी आज तक कोई अमोघ औषधि नहीं ढूँढ़ीं जा सकी। परन्तु इस बीमारी के कारण और उनको दूर करने के उपाय अब सभी सुयोग्य नागरिकों को मालूम हैं। इन बातों से सफाई का महत्व भली भाँति प्रकट हो जाता है। गुरुगाँव जिले के भूतपूर्व डिप्टी कमिश्नर मि० ब्राइन ने तो यहाँ तक कहा है कि तीन चौथाई बीमारियाँ केवल सफाई से दूर हो जाती हैं।

आचार्य शिवराम एन फेरवानी का कहना है कि पिछले चालीस सालों में सभ्य संसार के सब नगरों ने अपनी मृत्यु-संख्या घटाने में जो सफलता पाई है यह इस बात का अचूक प्रमाण है कि हमारे शहरों की अधिक मृत्यु-संख्या किसी दैवी कोप के कारण नहीं प्रत्युत हमारे सामाजिक अज्ञान और कुप्रबन्ध के कारण अधिकतर हमारे नागरिक असङ्गठन और उदासीनता के कारण है। अब इस बात में कोई सन्देह नहीं रह गया कि मनुष्य के बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयत्नों से बालकों की मृत्यु संख्या घट सकती है, जच्चाओं की मृत्यु-संख्या घट सकती है, बहुत-सी महामारियाँ सदा को भगाईं जा सकती हैं और मृत्यु-संख्या घटाकर मनुष्यों को सत्तर साल की उम्र तक

जीवित रक्खा जा सकता है। पोलम और मौरगन साहब का कहना है कि मृत्यु-संख्या शहरों के पानी के प्रबन्ध और नालियों की सफाई पर निर्भर है। हैजा और मियादी बुखार गन्दे पानी से फैलता है। लोगों को फिल्टर किया हुआ पानी देने का प्रबन्ध करके अल्वानी (न्यूयार्क) ने मियादी बुखार से होने वाली अपने नगर की वार्षिक मृत्यु-संख्या चौरासी से घटाकर इक्कीस करदी। हैमवर्ग और नौपिल्स का भी यही अनुभव है। मृत्यु-संख्या घरों की सफाई और गन्दगी पर भी बहुत कुछ निर्भर रहती है। संसार के कोने-कोने से इस बात का प्रमाण मिलता है कि घर में बहुत-से लोगों के भरे रहने से निर्बलता बढ़ती है, बीमारी और मृत्यु-संख्याएँ बढ़ती हैं। इस बात के अनेक प्रमाण Newman's outlines of the practice & prevention medicine p. 63 and Polla and Morgais: Modern Cities p. 94 में मिलते हैं। बम्बई म्यूनिसिपैलिटी की १९२०-२१ की रिपोर्ट से पता चलता है कि एक ही कमरे में गुजारा करने वालों में बालकों की मृत्यु-संख्या हजार पीछे तिरेसठ थी तो दो कमरों में रहने वाले लोगों में हजार पीछे तीस ही थी। बर्लिन में जब १८८५ में वहाँ के मकानों की दशा की खोज की गई तो पता चला कि एक कमरे में ही गुजारा करने वाले लोगों की मृत्यु-संख्या दो कमरों में गुजारा करने वालों से सतगुनी, तीन कमरों में गुजारा करने वालों से तेईस गुनी और चार या चार से ज्यादा कमरों में रहने वालों से तेतीस गुनी थी। मृत्यु-संख्या लोगों की आदतों पर भी निर्भर करती है। शराबखोरी, व्यभिचार, वेश्यागमन और जुआ आदि से मृत्यु-संख्या बढ़ती है। शराब की दुकानों, चकलों, घुड़ दौड़ों, स्टाक एक्सचैजों और सट्टेबाजी के कारण बहुत-से मनुष्य अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं। इसलिए नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे

लोगों के लिए आराम-विश्राम और मनोविनोद के दूसरे मार्ग उपस्थित करके तथा उन्हें उनके साहसी कामों के लिए दूसरे अवसर देकर उन्हें इन मार्गों पर चलने से बचावें। ललित कलाओंमें, खेलोंमें और राजनीति में लोगों को ये अवसर मिल जाते हैं। मृत्यु-संख्या इस बात पर भी निर्भर रहती है कि लोगों के जानोमाल को आग, बीमारी और अपराधों से बचाने के लिए क्या प्रबन्ध है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य चाहे तो सङ्गठित उद्योग से लाखों मनुष्यों के प्राण बचा सकता है और प्राण-दान से बढ़ कर पुण्य-कार्य और क्या हो सकता है। अतः सेवाव्रतियों को इस कार्य में प्रवृत्त होकर अपने सेवा-भाव का प्रदर्शन करना चाहिये और सेवा-धर्म का पालन करना चाहिये। सेवा-व्रती स्वस्थ और सुखी परिवारों की जीवन-कहानियाँ इकट्ठी करके उनके प्रचार-द्वारा भी लोगों को स्वस्थ जीवन की ओर प्रेरित कर सकते हैं।

सेवा-कार्य

पहले स्वयं स्वच्छता के सीधे-सादे प्रयत्नों से भिज्ञता प्राप्त करो। फिर अपने उपदेशों और उदाहरणों द्वारा इन्हें लोक-प्रचलित करो। कुछ मित्रों को साथ लेकर, या एक संस्था स्थापित करके अपने गाँव की सफाई करो। अपने मुहल्ले में ऐसे गड्ढे विधिपूर्वक बना दो जिनमें सब कूड़ा-करकट राख वगैरः भरी जा सके। इन्हीं गड्ढों में टट्टियों की आड़ लगाकर तथा गड्ढों पर आड़े तख्ते रख कर लोगों के लिए सभ्य, सुन्दर और स्वास्थ्य-प्रद टट्टियाँ बना दो। यह गड्ढा दस-बारह फीट चौड़ा हो। मकानों से इतना दूर हो कि उसकी दुर्गन्ध वहाँ तक न आ सके और इतना पास कि कूड़ा-करकट उसमें डालने

के लिए बहुत दूर न जाना पड़े। चौमासे में जो घास-फूस उगे उसे भी गड्ढे में डाल दो। मलेरिया को दूर करने के लिए अपने मुहल्ले या गाँव के हर गड्ढे को छोटे से छोटे गड्ढों को भर दो। टूटे घड़े के खपरों तक को फोड़ डालो जिससे मच्छड़ों के लिए कहीं भी एक चम्मच पानी भी नहीं रहने पावे। हर नाले पोखर या तालाब के किनारे सीधे साफ और चिकने कर दो। इन्हीं किनारों के छोटे-छोटे कोनों में मच्छड़ रहते और अण्डे देते हैं। इसलिए इनके किनारों में ये कोने न रहने दो। कभी-कभी तालाब, या पोखर के पानी पर मिट्टी के तेल का भारी परत बिछा दो जिससे वहाँ मच्छड़ न बसने पावें। यदि मकानों से एक फर्लाङ्ग दूर तक पानी का कोई गड्ढा न हो तो मलेरिया इतना कम हो सकता है कि न होने के बराबर हो जाय। हैजे से बचने के लिए कुओं में पोटेशियम परमैंगेनेट डालो। अपने घर और मुहल्ले की इतनी सफाई करो कि जिससे मक्खियाँ न बढ़ने पावें। इस बात की पूरी-पूरी सावधानी रक्खो कि भोजन पर एक भी मक्खी न बैठने पावे क्योंकि मक्खियाँ ही हैजे के कीटाणुओं की हवाई जहाज हैं। इन्हीं पर बैठ कर वे कीटाणु सर्वत्र फैल कर सर्वनाश करते हैं। उन दुकानों से सामान मत खरीदो जिनके सामान पर मक्खियाँ बैठी रहती हों। कुओं को साफ रखने के लिये उनमें गन्दे घड़े या डोल मत फाँसने दो। पानी खींचने के लिए हो सके तो पम्प या फारिसी रहट का इन्तजाम करो। यह इन्तजाम न हो सके तो पानी खींचने के लिए एक अलग डोल या डोलों अथवा बाल्टियों का प्रबन्ध रहे और खास तौर पर साफ रक्खे जाँय। क्योंकि हैजे वाले के घर के डोल या घड़े से कुएँ भर में हैजे के कीटाणु होने का डर रहता है। कुएँ पर जंगला लगा दिया जाय तो और अच्छा क्योंकि उससे किसी के गिरने और

कुएँ के गन्दे होने का डर नहीं रहेगा। कुएँ के आस-पास गड्ढों में पानी न भरने दो। क्योंकि यही पानी मच्छड़ पैदा करता है, और मर कर कुओं के पानी को भी खराब करता है। पशुओं को पानी पिलाने के लिए भी ऐसे गढ्डे मत बनने दो। कुएँ से जो पानी फैले उसे बहाने के लिए नालियाँ बना दो और उन नालियों अथवा मोरियों को साफ रक्खो। कुएँ का चबूतरा बनवा देना चाहिए।

प्रचार-कार्य

इन बीमारियों को दूर करने के लिए यह अनिवार्यतः आवश्यक है कि स्वच्छता के नियमों और उनके लाभों के सम्बन्ध में घनघोर प्रचार करके स्वच्छता के पक्ष में सुदृढ़ लोक-मत सङ्गठित किया जाय। लोगों को इन नियमों की इतनी जान-कारी करादी जाय कि जिसमें प्रत्येक व्यक्ति उनको अमल में ला सके तथा इन नियमों के विरुद्ध लोगों में जो मूढ़ और अन्ध विश्वास प्रचलित हो उन्हें दूर कर दिया जाय और उनके लाभ इतनी अच्छी तरह समझा दिये जायँ कि जिससे स्वच्छता लोगों की शाश्वत सहचारी हो जाय। लोगों को बता दो कि यदि वे इन बीमारियों से अपने को, अपने घरों को और अपने गाँव अथवा नगर को बचाना चाहते हों, यह चाहते हों कि उनके बच्चों की आँखें ख़राब न हों, वे अङ्ग-भङ्ग और कुरूप न होने पावें, तो उन्हें गाँव को साफ रखना चाहिये। घर, गली-कूचे सब साफ रहें। कूड़ा यों ही डाल कर उसके ढेर का घूरा न बनाया जाय, न अपने घर का कूड़ा गली में या दूसरे के मकान के सामने डाला जाय, बल्कि सब कूड़ा डालने के लिए बने हुए उन गड्ढों में डाला जाय जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। उनसे कहो कि जब कुत्ता भी जिस जगह पर बैठता है उसे पँछ

से साफ कर लेता है तब तुम तो मनुष्य हो ? फिर अपने गाँव को गन्दा क्यों रखते हो ? दयालु भगवान् ने गाँवों को सुन्दर जल-वायु के रूप में जीवनामृत दान किया है परन्तु गाँव वाले अपने अज्ञान और आलस्य के कारण गाँव को इतना गन्दा बना देते हैं कि गाँव के पास पहुँचते ही बदबू आने लगती है। घन-घोर प्रचार द्वारा इस कुप्रथा को छुड़ाओ। गाँव वालों से कहो कि जब बिल्ली भी अपने मल को ढक देती है तब हम मनुष्यों के लिए यह कितनी लज्जा की बात है कि हम अपनी बिष्ठा को घरों में, गलियों में, नालियों में और खेतों में खुला छोड़ देते हैं। इसी बिष्ठा पर बैठकर मक्खियाँ हमारे भोजन पर आ बैठती हैं। इससे अधिक भ्रष्टता की बात और क्या हो सकती है ? इसलिए और इसलिए भी कि स्त्री-पुरुषों का खुले आम खेतों में टट्टी फिरना और राहगीरों का उनको टट्टी फिरते हुए देखना बड़ी बेशरमी की बात है—यह आवश्यक है कि गड्ढों में टट्टियाँ लगा कर वहीं बना ली जाय। इससे इज्जत भी बचेगी और गन्दगी भी न रहेगी।

इस तरह की स्वच्छता-सम्बन्धी बातें बताकर गाँव वालों को सफाई की आदत सिखा दो। उनकी उपेक्षा और उनके आलस्य को दूर करने की कोशिश करो। नगरों में यह बात साफ तौर पर कह दो कि पाखाने का काम मोरियों से न लिया जाय। सेवक को चाहिये कि वह स्वयं स्वास्थ्य और सफाई का चौकीदार बन जाय। कोई बात ऐसी न हो जो स्वास्थ्य और सफाई के नियमों के विरुद्ध हो।

लोगों को यह भी बताओ कि वे इस बात की पूरी सावधानी रक्खें कि घरों में हवा और रोशनी की कमी न होने पावे। अँधेरे घरों में मक्खी, चूहे, प्लेग, मच्छड़ और बीमारियों तथा चोरों का राज होता है इसलिए घर में इतनी खिड़कियाँ अवश्य

होनी चाहिए कि जिससे हर जगह काफी हवा और काफी रोशनी आ सके। घरों में थोड़ा-सा बगीचा या तुलसी तथा अन्य फूलों के वृक्ष लगाये जा सकें तो और अच्छा।

चेचक से बचने के लिए टीका लगवाया जाय। कुछ लोगों का मत है कि यह टीका पैदा होते ही, सातवीं और चौदहवीं वर्ष लगवाना चाहिये। प्लेग से बचने के लिए घरों में चूहे न रहने दो। साफ घरों में चूहे नहीं रहते। घर में चूहे हों तो उन्हें मार या मरवा डालो। मकान और गाँव की सफाई के लिए महीने में एक दिन नियत करदो। महीने में हर अमावस को और सब कार्यों से छुट्टी लो और उस दिन सब गाँव या मुहल्ले वालों को लेकर अपने घरों और गाँव या मुहल्ले की सफाई कर डालो। यह तो हुई आम बात। प्लेग के सम्बन्ध में, ज्यों ही चूहे मरें त्यों ही जिले के अधिकारियों को तार दो। तार से मतलब न निकले तो खुद जाकर उनसे मिलो और प्लेग को रोकने और उससे लड़ने में उनकी पूरी-पूरी मदद लो। प्लेग आ ही जाय तो बाग या पेड़ों के नीचे रहो—खास तौर पर प्लेग के बीमारों को घरों में मत रक्खो—उनके लिए बाहर कुटिया बनाकर उनके प्राण बचाने की कोशिश करो। टीका लगवाओ और दूसरों को भी टीका लगवाने के लिए कहो। इस बात का पूरा-पूरा ख्याल रक्खो कि दूसरी जगहों से प्लेग के बीमार तुम्हारे यहाँ न आने पावें—आवें तो उन्हें कुटिया बना कर पेड़ों के नीचे और बागों में रक्खो जिससे वे भी बच सकें और गाँव या नगर में प्लेग भी न फैलने पावे।

मलेरिया से बचने के लिए लोगों से कहो कि वे लड़कों के लिए गहने बनवाना छोड़ कर घर-भर के लिए मसहरियाँ खरीदें। जो इतने गरीब हैं कि मसहरी खरीद ही नहीं सकते वे शरीर पर मिट्टी का तेल पोत कर सोया करें। ऐसे लोगों को रास्ता दिखाने

के लिए महात्मा गाँधी स्वयं शरीर पर मिट्टी का तेल पोत कर सोते हैं।

लोगों से कहो कि कुनैन का खूब इस्तैमाल करें। एक साहब तो यहाँ तक कहते हैं कि कुनैन का इस्तैमाल तो नमक की तरह होना चाहिए। क्योंकि बुखार आ जाने पर दवा में गरीब से गरीब के जितने पैसे खर्च होते हैं उतने कुनैन खाकर बुखार रोकने में नहीं होता। कुनैन हर गाँव में बिकने का प्रबन्ध होना चाहिये।

इन्हीं पुस्तिकाओं में समुचित स्थलों पर कुनैन की उपयोगिता पर जोर डालने वाले वाक्य-समूह उद्धृत होने चाहिए। डाक्टर विलियम पिंक ने अपनी गोलियों का विज्ञापन बड़े मनोरञ्जक ढंग से किया है। उसने अपनी गोलियों को लोक-प्रसिद्ध बनाने के लिए श्री रामचन्द्र की कथा लिखी। उसी कथा में बीच-बीच में जहाँ कई व्यथाओं का वर्णन आया वहाँ अपनी गोलियों को ही रोगों को दूर करने की सर्वोत्तम औषधि बतायी। कहानी-लेखकों के उपजाऊ मस्तिष्क से और विज्ञापन-कला में दक्ष लेखकों से ऐसी कहानियों की पर्याप्त पुस्तिकाएँ लिखाई जा सकती हैं।

कुनैन के उपयोग को लोक-प्रिय बनाने के लिए एक योजना

अमृतसर के आर० वी० गोपालदास भण्डारी ने कुनैन के उपयोग को लोक-प्रिय बनाने के लिए, नीचे लिखी सलाहें दी हैं—

(१) पाठशालाओं में ऐसी छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ वितरित की जानी चाहिये जिनमें कुनैन के लाभ उसके लेने की मात्रा, समय और उसके अनुपान तथा उपयोग सम्बन्धी बातें कहानियों के

रूप में दी गई हैं। ऐसा करने से इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि वर्षा ऋतु के आगमन और मलेरिया के प्रसार से पहले ही प्रत्येक कुटुम्ब में कुनैन की बात-चीत होने लगेगी। कुटुम्ब के पढ़े-लिखे बालक घर की स्त्रियों को इन पुस्तिकाओं को पढ़कर सुनावेंगे। इस तरह से प्राप्त ज्ञान के बल पर वे देवियाँ स्थिति को बहुत कुछ सुधार सकेंगी और उनके हृदय में औषधियों का आश्रय लेने की आवश्यकता भली भाँति अङ्कित हो जायगी।

(२) सर्व साधारण में तथा विशेषतः भारतीय महिलाओं में वितरण करने के लिए युक्तप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार, राजपूतानादि प्रान्तों के लिए हिन्दी में, तथा अन्य प्रान्तों के लिए उनकी प्रान्तीय भाषाओं में छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ तैयार कराई जानी चाहिए। इन पुस्तिकाओं में भिन्न-भिन्न ऋषि-मुनियों और शास्त्रों के ऐसे वाक्य होने चाहिए जो इस बात की पुष्टि करें कि रोग का मूलोच्छेदन करना मनुष्य मात्र का सर्व प्रथम कर्त्तव्य है। स्वच्छता सम्बन्धी ज्ञान के प्रसार तथा अन्य बातों के प्रचार के लिए भी इस योजना के कई प्रस्तावों से काम लिया जा सकता है।

(३) पुस्तकालयों, अजायबघरों, गिरजाघरों, कचहरियों, बड़े-बड़े मन्दिरों तथा दरगाहों जैसे सार्वजननिक स्थानों और रेलवे स्टेशनों पर कुनैन के लाभ प्रकट करने वाले बोर्ड लटका दिए जाने चाहिए, जिससे लोगों को उन्हें देखने और पढ़ने का भरपूर मौका मिल सके।

(४) कुनैन की उपयोगिता का उपदेश देने वाले व्याख्याताओं को प्रत्येक बड़े-बड़े मेलों में व्याख्यान देने चाहिये और सर्व साधारण को आकर्षित करने के लिए इन मेलों में ऐसे चित्र दिखाने चाहिए जिनमें कुनैन का प्रयोग करने वाले मनुष्य तथा उसका प्रयोग न करने वालों की दशा दिखाई गई हो।

(५) धार्मिक पुस्तकों का प्रकाशन करने वाली सभाओं से इस विषय से सम्बन्ध रखने वाली पुस्तिकाएँ प्रकाशित करने की प्रार्थना करनी चाहिए और बड़े-बड़े अखाड़ों, मठों, सैय्यदनशीरों के सेवकों और मुरीदों से प्रार्थना की जानी चाहिए कि वे कुनैन के फायदों का प्रचार करें।

(६) डिस्ट्रिक्ट बोर्डों और म्यूनिसिपल बोर्डों से वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने से पहले ही ऐसे विज्ञापन छपवाकर वितरण कराने चाहिए जिनमें लोगों को मलेरिया की हानियों के साथ साथ यह भी बताया गया हो कि मलेरिया से बचने के लिए कुनैन सर्वोत्तम औषधि है। डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के चौकीदारों और म्यूनिसिपैलिटी के डोंड़ी पीटने वालों द्वारा कुछ सप्ताहों तक कुनैन के लाभों की घोषणा करानी चाहिये।

(७) रेलवे के डिब्बों और बग्घियों (घोड़ा-गाड़ियों) में भी कुनैन के लाभ-सूचक बोर्ड रहने चाहिये।

(८) नाटक कम्पनियों को कुनैन सम्बन्धी नाटक रचने और खेलने चाहिये। गाँव के कर्मचारियों को कुनैन के प्रयोग को लोक-प्रिय बनाने और उसका प्रचार करने के लिए पारितोषिकादि द्वारा प्रोत्साहित करना चाहिये।

(९) इस काम में सहायता करने वालों को सनदें और पारितोषिक मिलनी चाहिएँ तथा कुनैन की पैसे-पैसे वाली पुड़ियाओं की बिक्री का पर्याप्त प्रचार करना चाहिये।

स्वास्थ्य-सप्ताह

इस सम्बन्ध में विशद संघटित प्रयत्नों और म्यूनिसिपल बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड जैसी संस्थाओं द्वारा बहुत कुछ किया जा सकता है। मथुरा म्यूनिसिपल बोर्ड ने २ अक्टूबर १९३२ से ले कर १० अक्टूबर तक स्वास्थ्य-सप्ताह मनाया। जिसमें

गलियों, पाखानों और नालियों की सफाई की गई। कुओं और वाटरवर्क्स का पानी शुद्ध किया गया। सिनेमा, मैजिक लैन्टन और लैक्चरों द्वारा स्वास्थ्य-प्रदर्शिनी तथा भिन्न-भिन्न वार्डों में आरोग्य-संरक्षण-शास्त्र के सिद्धान्तों का प्रचार किया गया। स्कूल के लड़कों के लिए स्वास्थ्य-विषयक निबन्ध प्रतियोगिता का प्रबन्ध किया गया। बालचरों तथा रेड क्रास के छोटे सदस्यों के लिए स्वास्थ्य-प्रदर्शन किये गये। इस सप्ताह को मनाने के लिए म्यूनिसिपैलिटी ने एक हजार रुपया खर्च करना तय किया। हरिद्वार म्यूनिसिपल बोर्ड ने बच्चों और जच्चाओं की सेवा के केन्द्र Maternity & child welfare centres) स्थापित किये। गाजीपुर में सन् १६३२ में १४ अक्टूबर से २० अक्टूबर तक स्वास्थ्य-सप्ताह मनाया गया। चौदह-पन्द्रह को दंगल हुआ। पन्द्रह को बेबी महिला सदस्याओं की शो कमेटी (बच्चों के प्रदर्शन की कमिटी) की बैठक हुई। वहाँ के सुपरिन्टेडेन्ट पुलिस मिस्टर फर्गूशन की पत्नी भी इस कमेटी की एक सदस्या थीं। चौदह-पन्द्रह अक्टूबर तक को सिनेमा दिखाया गया। १६ से लेकर २० अक्टूबर तक मेरठ के कलक्टर कप्तान जांस्टन की सिनेमा शक्ति ने आरोग्य-संरक्षण-शास्त्र और ग्रामोत्थान सम्बन्धी सात बहुत ही मनोरञ्जक छाया-चित्र दिखाये। जिले के आठ गाँवों में भी स्वास्थ्य-सप्ताह मनाया गया और यह सब वहाँ के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट राय साहब चन्द्रवलि राय तथा डिस्ट्रिक्ट जज और पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की संरक्षकता में हुआ।

उपयोगी साहित्य

स्वास्थ्य और सफाई के सम्बन्ध में उपयोगी साहित्य भी प्रत्येक सेवक के पास होना चाहिए जिससे वह स्वयं तत्सम्बन्धी समस्त ज्ञातव्य बातों से भिज्ञता प्राप्त कर सके और दूसरों को

भी वह साहित्य दे सके। पुरानी पुस्तकों में बेडफोर्ड (Bedford) की प्रारम्भिक आरोग्य-संरक्षण-शास्त्र नामक पुस्तक बहुत उपयोगी मानी जाती है। यह पुस्तक एस० के० लहरी एन्ड को० कलकत्ता से डेढ़ रुपए में मिलती है। पुस्तक कलकत्ता विश्व-विद्यालय द्वारा आरोग्य-संरक्षण-शास्त्र की प्रथम परीक्षा के लिए पाठ्य-पुस्तक नियत हो चुकी है और हमारे देश की अवस्था के बहुत कुछ अनुकूल है। इस पुस्तक में सार्वजनिक और व्यक्तिगत स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखने वाले ऐसे विषयों पर विचार किया गया है, जैसे—घर बनाना और सजाना—घर में वायु और प्रकाश आने देने वालों की आवश्यकता, घिचपिच भरे हुए घरों से हानि, जल का प्रबन्ध, कुओं की सफाई, भोजन का प्रबन्ध, ग्रामवासियों के मल-मूत्र त्याग का प्रबन्ध गलियों की सफाई और कूड़ा करकट जमा करने की समस्या, छूत से फैलने वाले (संक्रामक) रोगों को रोक, लाशों का उठाना, वैयक्तिक आरोग्य-संरक्षण-शास्त्र और स्वास्थ्य, मकान की स्थिति और उसके आसपास की जगह की सावधानी, इत्यादि। अंग्रेजी की An outline of the Practice of preventive medicine' by Sir George Newman obtainable from H. M. Stationary Office. Imperial Kings way London, W.C.R. इस विषय की उपादेय पुस्तकें हैं। लोक-सेवी को स्वास्थ्य और सफाई सम्बन्धी बातों का प्रचारक बनने में ये पुस्तकें बहुत सहायता देंगी। और साथ ही सफाई, स्वास्थ्य-रक्षा और शुद्धिकरण के सम्बन्ध में अमीर-गरीब सब को उपदेश और व्यावहारिक सलाह देने के योग्य बनने में भी बहुत उपयोगी सिद्ध होंगी।

सरकारी साहित्य

प्रत्येक लोक-सेवक अपने यहाँ के सिविल सर्जन, या अपने

किसी डाक्टर मित्र से अथवा सीधे अपने प्रान्त के स्वास्थ्य-विभाग से, पूछ कर यह जान सकता है कि सरकार की ओर से अँग्रेजी या उस प्रान्त की भाषा में स्वास्थ्य और सफाई के सम्बन्ध में कितनी पुस्तिकाएँ अथवा कितने लेख प्रकाशित हुए हैं। और इन्हें मँगा तथा पढ़कर वह इनका समुचित सदुपयोग कर सकता है। इन पुस्तकों के कुछ नमूने लीजिये।

"यक्ष्मा पर एक पाठ" "मलेरिया पर एक पाठ"

ये पुस्तिकाएँ बम्बई सरकार ने बहुत पहले स्कूल के बालकों और शिक्षा-विभाग के लिए प्रकाशित की हैं। इसी तरह पञ्जाब के अस्पतालों के इन्स्पेक्टर जनरल के आफिस में उर्दू में 'प्लेग से बचने के उपाय' और "टीका के विषय में बातें" तथा लाहौर के सिविल सेक्रेटेरिएट से "हैजा और अन्य उड़ती बीमारियाँ" नाम की पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई हैं। बम्बई के सरकारी स्वास्थ्य-विभाग ने चेचक के प्रचार और क्षय को रोकने के सम्बन्ध में पठनीय पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं। बम्बई की स्वास्थ्य-सम्बन्धी सभा ने, बच्चों को किस प्रकार भोजन देना चाहिये, बच्चों के पेट चलने पर तथा खाँसी होने पर किस प्रकार उनकी सावधानी रखनी चाहिए, शीतला से उनकी रक्षा कैसे करनी चाहिए इत्यादि विषयों पर छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं। पूना में कृषि-विभाग ने मक्खियों पर एक अत्यन्त शिक्षाप्रद निबन्ध प्रकाशित किया है। इसी तरह की पुस्तकें और पुस्तिकाएँ प्रत्येक प्रान्त में प्रकाशित हुई हैं और होती रहती हैं। प्रान्त के गवर्नमेंट प्रेस के सुपरिन्टेन्डेन्ट अथवा स्वास्थ्य-विभाग से उनकी सूची मँगाई जा सकती है।

इन पुस्तकों द्वारा लोक-मत शिक्षित और जाग्रत करके विद्यार्थी तथा अन्य सेवक सरकार के स्वास्थ्य और सफाई

सम्बन्धी कामों में भारी सहायता कर सकते हैं। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में—

सरकार ने क्या किया

यह शाही कृषि-कमीशन की रिपोर्ट के चौदहवें अध्याय में भली भाँति दिखाया गया है। लोक-सेवी सज्जन अपने सेवा-कार्य में इन सरकारी साधनों से भी भरपूर सहायता ले सकते हैं। उनको चाहिए कि वे इस पुण्य-कार्य में जनता का सहयोग भी प्राप्त करें और अपने यहाँ स्वास्थ्य-सङ्घ स्थापित करें। प्लेग, हैज़े वगैरः के समय तथा प्रचार-कार्य के लिए लालटैन के लिए डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्डों तथा सरकारी स्वास्थ्य-विभाग से भी सहायता ली जा सकती है। कुनैन वितरण वगैरः कार्यों में कई जिलों के अधिकारी बहुत दिलचस्पी लेते हैं। श्रीयुत जे० एस० गुप्ता एम० ए०, आई० सी० एस०, सी० आई० ई० ने अपनी (The foundations of national progress) नामक पुस्तक में इन प्रयत्नों का अच्छा वर्णन किया है।

कुछ प्रयत्नों के उदाहरण

नीचे इस सम्बन्ध में लोक-सेवकों द्वारा किये गये कुछ प्रयत्नों के शिक्षाप्रद और विचारोत्तेजक उदाहरण दिये जाते हैं—

लाहौर के फोर्मेन क्रिश्चियन कॉलेज के एक विद्यार्थी की रिपोर्ट है कि—

गत वर्ष जब कि शहर में मलेरिया फैला हुआ था और लोग उससे अत्यन्त कष्ट पा रहे थे, तब हमने "नवयुवक-समाज-सेवा-समिति नाम की एक सभा खोली। इस सभा के सदस्यों का मुख्य काम यह था कि गरीबों के घरों अथवा बाजारों में जाकर लोगों को कुनैन और मैगनेशिया बाँटे। इस

पुण्य कार्य के लिए हमारे माँगने पर जनता ने उदारतापूर्वक धन से हमारी सहायता की।"

एक समय पञ्जाब में, भारी वृष्टि के बाद, कार की गर्मी में मलेरिया बड़े जोर से फैला। उस समय इस कालेज के विद्यार्थियों को एक और अवसर मिला। विद्यार्थियों के एक छोटे-से समूह ने लाहौर के म्यूनिसिपल बोर्ड से कुनैन की पाँच सौ पुड़ियायें ली और उनमें से दो सौ चमारों की और तीन सौ धोबियों की मण्डी में बाँट दी। इस व्यावहारिक कार्य से उन्हें अछूत कही जाने वाली जातियों की निर्धनता और उनके कष्टों का जितना ज्ञान हुआ उतना किसी व्याख्यान से नहीं हुआ था। कुनैन खाने को राजी करने के लिए इन लोक-सेवकों को बहुधा भंगियों के छोटे-छोटे बच्चों को अपनी गोदी में लेना पड़ता है। घरों में बीमार पड़े हुए पीड़ित-बन्धुओं की सहायता के लिए उन्हें भंगियों और चमारों के घरों में जाना पड़ा, जिससे उन्हें उनकी वास्तविक दुर्दशा का ज्ञान हुआ और वे उनकी नैतिक और सामाजिक दशा सुधारने के लिए प्रेरित हुए। एक विद्यार्थी लिखता है—गत वर्ष लोगों ने ज्वर से अत्यन्त कष्ट उठाया। उसका मुख्य कारण यह था कि उन्हें शुद्ध और निर्मल जल पीने को नहीं मिलता था। इस वर्ष मैंने अपने ग्राम के निवासियों को समझा-बुझाकर इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे वर्षा के मैले-कुचैल पानी को कुएँ में जाने से रोकें। उन्होंने ऐसा ही किया। फल यह हुआ कि इस साल गाँव में बुखार का ज़ोर बहुत कम रहा।"

"मेरे गाँव में प्लेग आने पर डाक्टर और अधिकारियों ने चूहे मारना शुरू किया। लोगों ने उनके इस शुभ प्रयत्न को विफल करने की भरपूर कोशिश की। इस पर मैंने घर-घर जाकर लोगों को चूहे मारने के लाभ बताये और उनको चूहे

पकड़ने के पिंजड़े रखने को तैयार किया जिससे चूहे नष्ट करने में अच्छी सहायता मिली।"

बी० ए० के प्रथम वर्ष के एक विद्यार्थी ने अपना अनुभव इस प्रकार लिखा है—"मेरे यहाँ के स्कूल के ठीक पास ही एक बड़ी गन्दी पोखर थी जो गाँव में मलेरिया फैलने का मुख्य कारण मानी जाती थी, इसलिए उस पोखर को मिट्टी से भर देने का उद्योग प्रारम्भ किया गया। परन्तु गाँव वालों में दो परस्पर विरोधी दल थे। इसलिए उस उद्योग में भयङ्कर बाधा पड़ी। तब मैंने दोनों दलों के नेताओं को बुलाकर समझाया-बुझाया। फलस्वरूप पोखर भर दी गई। मलेरिया से जान बची और लोगों ने एकता, भ्रातृ-भाव और सहकारिता की शिक्षा पाई।"

श्रीनगर मिशन स्कूल की रिपोर्ट में एक जगह लिखा हुआ है—पहले हम हैजे की बवा को भुगत चुके थे और प्लेग के होने की आशंका थी। अतः हमने सोचा कि नगर-निवासियों को उनके खतरों से सावधान करने और उनमें स्वास्थ्य बेहतर करने की इच्छा उत्पन्न करने का समय आ गया है। म्यूनिनिपैलिटी की सहायता से हमने गड्ढे इत्यादिकों को कुल्हाड़ी, फॉवड़ों और खुरपी से भर कर सुधारना आरम्भ किया। इस शुभ काम के करने वालों को पुराने विचारों के लोगों के विरोध का सामना करना पड़ा और उनकी गालियाँ भी सहनी पड़ीं। परन्तु जहाँ कुल्हाड़ी चलाने से विद्यार्थियों का शारीरिक स्वास्थ्य सुधरा वहाँ गालियों ने उनका आत्मिक और मानसिक स्वास्थ्य सुधारा। विद्यार्थियो के इस कार्य से नगर-निवासियों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उनका ध्यान इस कार्य की ओर आकर्षित हुआ और नगर के कई योग्य नेताओं ने अपने घरों के आस-पास यही काम करना आरम्भ कर दिया। नगर के चीफ मैजिस्ट्रेट ने कहा कि कृपा कर मेरे लड़के को स्कूल से जब भेजा करो तब उसके

कन्धे पर कुल्हाड़ी रख दिया करो जिससे सब लोगों को यह मालूम हो जाय कि शहर मजिस्ट्रेट अपने लड़के के इस सेवा-कार्य में तनिक भी लज्जा नहीं करते। इस प्रार्थना के फलस्वरूप लोग प्रतिदिन इस ब्राह्मण नवयुवक को अपने कन्धे पर कुल्हाड़ी रक्खे जाते हुए देखते हैं।

इस घटना के दो वर्ष पश्चात् एक वयोवृद्ध हिन्दू मुझ से गले मिला और मुझे अपने यहाँ ले जाकर उसने वह सड़क दिखाई जो उसने खुद बनाई थी। इसके बाद कहा—"महोदय, क्या आपको याद है कि जब आप इस गली में नाली बना रहे थे और समस्त मनुष्य आपका उपहास कर रहे थे तब आप समझते थे कि समस्त शहर आपके विरुद्ध है। परन्तु वास्तव में ऐसा न था। बहुत से मनुष्य आपके पक्ष में थे और उनमें से एक मैं भी था। हाँ, उस समय हम लोगों में इतना साहस न था कि अपने विचार सब पर प्रकट कर देते, फिर भी, मैंने कार्य आरम्भ कर दिया और यह सड़क उसी कार्य का फल है।"

स्वर्गीय महामति गोखले के सभापतित्व में पूना प्लेग रिलीफ कमेटी ने जो कार्य किया वह इस बात का एक अति उत्तम उदाहरण है कि गैर सरकारी मनुष्य प्लेग से जनता की रक्षा करने के लिए उनके टीका लगवाकर सफलतापूर्वक उनकी सेवा कर सकते हैं। पूना शहर में तेरह हजार दो सौ पचास व्यक्तियों ने टीका लगवाया। इनमें से केवल तीस पर प्लेग का आक्रमण हुआ और इन तीस में केवल चार मरे, छब्बीस के प्राण बच गये। यदि टीके न लगवाये जाते तो मृत्यु संख्या के हिसाब के अनुसार इनमें से दो सौ अड़तालीस व्यक्ति अवश्य काल-कवलित होते। इस प्रकार इस कमेटी ने कम से कम दो सौ पैंतालीस व्यक्तियों के प्राण बचा लिये।

इन्दौर के एक मनोरंजक प्रयत्न का वर्णन Geddes कृत Town Planning in Indore नामक पुस्तक में दिया गया है। वहाँ प्लेग रूपी राक्षसी की एक विशाल मूर्ति निकाली गई। यह राक्षसी एक विशालकाय चूहे पर सवार थी। इस चूहे पर प्लेग का पिस्सू साफ नजर आता था। राक्षसी के पीछे-पीछे स्वास्थ्य विभाग के कार्यकर्त्ताओं का जुलूस था जो शहर भर में ऊँट गाड़ी पर घूमे और जिन्होंने जहाँ-तहाँ ठहर कर लोगों को प्लेग सम्बन्धी व्याख्यान दिये तथा इसी सन्बन्ध के पर्चे बांटे, और अन्त में राक्षसी को जला दिया गया। इस प्रदर्शन ने लोगों की कल्पना को जितना उत्तेजित किया उतना और किसी तरह करना सम्भव न था। इस जुलूस से लोगों ने सीखा कि प्लेग के डर से खुद भागने के बजाय हमें प्लेग को ही भगाना चाहिये।

लखनऊ में २४ अक्टूबर १६३३ में अवध मादक-द्रव्य-निषेधक-संघ की ओर से मादक-द्रव्य-निषेध-सप्ताह मनाया गया। चौक में नशीली वस्तु बहिष्कार-सम्बन्धी प्रदर्शन किया गया। महिला विद्यालय इन्टरमीडिएट कालेज की प्रिंसिपल कुमारी दुबे ने रेडियो द्वारा लोगों को नशीली चीज़ों की बुराइयों के सम्बन्ध में गाने सुनाये। रेडियो पर इसी विषय की वक्तृतायें देने और गल्प सुनाने का कार्य डाक्टर वली मुहम्मद ने भी पूरा किया। प्रान्तीय सरकार के पब्लिसिटी डिपार्टमेन्ट की ओर से मैजिक लेन्टर्न के चित्र दिखाये गये।

अपढ़-कुपढ़ों की सेवा

अपढ़-कुपढ़ों से अधिक अनाथ और असहाय दूसरा कोई नहीं होता। वे बात-बात में बेवस और पराश्रित रहते हैं। पति रंगून में है, इतने महीने बाद उसकी राजी-खुशी की चिट्ठी आई है पर बेचारी गाँव में बैठी हुई पत्नी लाचार है। उस चिट्ठी को वह किस से पढ़वावे ? बौहरे ने रुक्के में क्या लिख लिया है ? जमींदार ने रसीद में कितने दाम वसूल पाये लिखे हैं—निरक्षर आसामी और किसान को कुछ पता नहीं ! तरह-तरह के अखबार निकलते हैं जिनमें दुनियाँ-भर की खबरें रहती हैं, परन्तु जिनके लिए काला अक्षर भैंस-बराबर है उनके लिए सब अखबार बेकार हैं ! हृदय को हिला देने वाली कहानियाँ हैं, उत्तमोत्तम नाटक और उपन्यास हैं, दिव्यानन्द-दायिनी कविताएँ हैं, सब-कुछ है, परन्तु अक्षर-ज्ञान-विहीन, बिना पंख के पशु उनसे कोई लाभ नहीं उठा सकते। सरस्वती का भण्डार खुला पड़ा है, परन्तु अज्ञानान्धकार में पड़े हुओं को वह कैसे दिखाई दे ?

लोक-सेवक का कर्त्तव्य है कि वह निरक्षरता के विरुद्ध घोर युद्ध करे। उसे मिटा देने का प्रण कर ले। साक्षरता के प्रचार और शिक्षा से बढ़ कर स्थायी और सुदूरगामी सेवा दूसरी कोई नहीं हो सकती ! शिक्षा और साक्षरता से ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं, साहित्य का सुन्दर स्वर्ग दिखाई देने लगता है और आत्मोन्नति के अमूल्य साधन तथा सुनहले अवसर प्राप्त हो जाते हैं।

शिक्षा और साक्षरता का महत्व समस्त संसार ने एक स्वर से स्वीकार कर लिया है। प्रत्येक देश अपने यहाँ से निरक्षरता को समूल उखाड़ फेंकने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। यही कारण है कि इस समय संसार में शायद ही कोई ऐसा देश हो जिसने अपने यहाँ प्रारम्भिक शिक्षा—लिखना-पढ़ना और हिसाब सीखना, कानून द्वारा अनिवार्य और निःशुल्क न कर दी हो। ग्रेट ब्रिटेन, आयर्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, स्विटजरलैण्ड, आस्ट्रिया, हंगरी, इटली, बेल्जियम, डेनमार्क, नौरवे, स्वेडिन, अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, जापान, रूस आदि सभी देशों में हर एक बालक के लिए यह लाजिमी है कि वह किताब पढ़ना, लिखना और हिसाब करना सीखे। जो माता-पिता अपने बालक-बालिकाओं को यह प्रारम्भिक शिक्षा दिलाने के लिए प्रारम्भिक पाठशालाओं में नहीं भेजते उन्हें कानून से सजा दी जाती है। संस्कृत में एक श्लोक है कि जो माता-पिता अपने बेटी-बेटों को नहीं पढ़ाते वे उनके वैरी हैं। अर्वाचीन सरकारों का कहना है कि जो माता-पिता अपनी सन्तानों को नहीं पढ़ाते वे उनके तथा समाज के प्रति ऐसा जुर्म करते हैं जिसकी उनको सजा मिलनी चाहिये। सब देशों की सरकारें अब इस बात को अपना धर्म समझती हैं कि वे लड़के-लड़कियों से शुरू की पढ़ाई की फीस न लें, उन्हें मुफ्त शिक्षा दें।

फलस्वरूप सभी देशों ने निरक्षरता-निशाचरी को अपने यहाँ से मार भगाया है। लगभग सभी देशों में आधे से अधिक बालक-बालिका पढ़े-लिखे पाये जाते हैं, कई देशों में तो निरक्षरों की संख्या सौ पीछे दस भी नहीं रही। परन्तु भारतवर्ष में ठीक इसका उल्टा है। यहाँ अभी साक्षरों की संख्या सौ पीछे दस है और निरक्षरों की उनसे नौ गुनी! सहज ही प्रत्येक भारतीय लोक-सेवक का यह सर्वप्रथम कर्त्तव्य हो जाता है कि वह साक्षरता को बढ़ाने के लिए शक्ति-भर प्रयत्न करे।

महामति गोखले ने इस पुण्य-कार्य में सरकार की सहायता चाही थी। अठारह मार्च सन् १६१० को उन्होंने तत्कालीन इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में यह प्रस्ताव पेश किया था कि निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा भारत में आरम्भ कर दी जाय। इस प्रस्ताव पर व्याख्यान देते हुए आपने कहा था कि यदि बीस वर्ष के भीतर भी भारत भर में शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य हो जाय तो भी मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा। उस बात को बीस नहीं तेईस वर्ष हो चुके परन्तु अभी तक महामति गोखले की इच्छा पूरी नहीं हुई। इन दिनों प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध पूर्णतया प्रान्तीय कौंसिलों और सरकारों के हाथ में है। लोक-सेवकों को चाहिए कि वे इस सम्बन्ध में लोकमत का निर्माण करके शीघ्र से शीघ्र सर्वत्र प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य करा दें।

हमारे देश के विद्यार्थी-गण, सभा-समाजों में शिक्षा-प्रचार की आवश्यकता पर प्रायः बड़ी-बड़ी लम्बी-चौड़ी वक्तृताएँ सुनते होंगे परन्तु यदि वे गर्मी की लम्बी छुट्टियों में, ऐसे महत्त्वपूर्ण कार्य के मार्ग की अनिवार्य कठिनाइयों और विरोधों का सामना सहानुभूति के साथ करते हुए, अपने ही गाँव अथवा अपने ही कुटुम्ब में इस प्रश्न को हल करने का वास्त-

विक प्रयत्न करें तो वह बीसियों व्याख्यानों से अधिक लाभ-दायक सिद्ध होगा। भावी सुधारक को चाहिए कि वह जहाँ जाने के लिए औरों से कहे वहाँ जाने के लिए स्वयं पहले तैयार रहे और इस प्रकार साहित्य-सभाओं के काल्पनिक आदर्शों का वास्तविक जीवन के संसर्ग से स्थिर और नियमित बनावे।

सुधारक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि जिस काम के करने के लिए वह औरों से अनुरोध करे उसे करने के लिए स्वयं सब से पहले तैयार रहे। इण्डियन सोशल रिफार्मर के सम्पादक का कहना है कि, "अपने वैयक्तिक जीवन में, अपने ही कुटुम्ब के दायरे में, उन प्रारम्भिक विरोधों और कठिनाइयों का सामना करो जो जनसाधारण के लिए, उच्च धार्मिक और सामाजिक आदर्शों की पूर्त्ति का मार्ग परिष्कृत करती हैं।" यह कार्य अत्यन्त प्रेम और सहानुभूति के साथ किया जाना चाहिए। गृह-शिक्षा में भी स्त्री-शिक्षा स्वदेश की सर्वोपरि वास्तविक सेवा है, क्योंकि कौटुम्बिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाला कोई भी सुधार स्त्रियों की सहायता के बिना नहीं हो सकता। बेपढ़ी-लिखी स्त्रियों की अधिकता ही आजकल सुधारक-सम्बन्धी लगभग सभी कार्यों की उन्नति में बाधक सिद्ध हो रही है। परन्तु कुटुम्ब में स्त्रियों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान बालकों का है। फिलिप्स कुक्स का कहना है कि "जो मनुष्य बच्चों की सहायता करता है वह मनुष्य जाति की सब से अधिक प्रत्यक्ष और तात्कालिक सहायता करता है। क्योंकि बचपन में दी हुई सहायता जितनी स्थायी, मूल्यवान और आवश्यक होती है उतनी और किसी उम्र में दी हुई सहायता कदापि नहीं हो सकती।

प्रत्येक लोक-सेवक अपने ही घर की ओर देखकर अपने आपसे यह प्रश्न पूछ सकता है कि, "अपने घर में मैं साक्षरता का प्रचार करने में सेवा के आदर्श की पूर्त्ति किस प्रकार कर

सकता हूँ ? क्या मेरे घर में कोई ऐसा पुरुष है जो पढ़ना-लिखना नहीं जानता ? अथवा क्या कोई ऐसा बालक है जो स्कूल में पढ़ने नहीं जाता या जिसकी उचित शिक्षा के लिए कोई दूसरा प्रबन्ध नहीं दिखाई देता ?" यदि किसी के घर में बेपढ़ा-लिखा पुरुष, बालक या बालिका हो तो वह वहीं से निरक्षरता को दूर करने का कार्य शुरू कर दें। यदि घर के अथवा गाँव के पास ही कोई अच्छा स्कूल नहीं हो, यदि स्कूल में जाने में कुछ लोगों को कोई आपत्ति हो, तो वे स्वयं ही उन्हें पढ़ाना-लिखना शुरू कर दें। यह काम बड़ी सरलता से किया जा सकता है। वास्तव में अनेक मनुष्य प्रति दिन अपने-अपने घर में यह पुण्य कार्य करते हैं। अपने अवकाश के समय को इस काम में लगाने से लाभ ही होगा, हानि नहीं। पढ़ाने-लिखाने के इस काम में कुटुम्ब के अन्य सदस्यों से भी सहायता ली जा सकती है। हर हालत में शिक्षा देशी भाष के अक्षर-ज्ञान से आरम्भ हो और प्रारम्भ में उस भाषा की—लिखने-पढ़ने की सरल से सरल पुस्तक से काम लिया जाय।

लोक-सेवक को यह चाहिये कि वह सेवा-कार्य करते समय अपनी नम्रता और सुशीलता को न छोड़े। जिन लोगों को पढ़ना है उनको पढ़ने के लिए राजी करने तथा इस कार्य में बड़े-बूढ़ों की सहमति प्राप्त करने के लिए ,यह आवश्यक है कि पहले अपनी सेवा, नम्रता और सुशीलता द्वारा उनके हृदयों में अपने लिए स्थान प्राप्त कर लिया जाय। कालेज के विद्यार्थी साहबी ठाठ छोड़ कर, घर वालों की सेवा के, पानी वगैरः पिलाने के छोटे-छोटे काम करके ही इस काम में सफलता पा सकते हैं।

इस सम्बन्ध में कुछ विद्यार्थियों के अनुभव शिक्षा-प्रद हैं।

एक विद्यार्थी का कहना है कि, "मैंने पहले-पहल अपने कुटुम्ब की स्त्रियों को प्रतिदिन दो घण्टे पढ़ाना शुरू किया।

जब वे पढ़ चुकीं तब मैंने कहा कि तुम मुहल्ले की दूसरी लड़कियों को भी शिक्षा के लाभ बताओ। उनके उद्योग का फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में बहुत-सी लड़कियाँ मेरे पास पढ़ने के लिए आने लगीं।"

एक दूसरे विद्यार्थी की रिपोर्ट है कि, "मैं, अपने कुटुम्ब के सदस्यों को पढ़ाता था और उन्हें वैज्ञानिक संसार के समाचार सुनाया करता था। उन्हें उत्तरी ध्रुव की बातें समझाने और अपने शब्दों को उनके समझने योग्य बनाने का मैं जी तोड़ प्रयत्न करता था। अपनी छोटी बहन और छोटे भाई को रोज की स्कूल की पढ़ाई पढ़ाने के साथ-साथ उनका चित्त प्रसन्न करने के लिए संध्या के समय उन्हें "टाइम्स आफ इन्डिया" के चित्र भी दिखाया करता था।"

बी० ए० की अन्तिम कक्षा का एक विद्यार्थी लिखता है—"मैं अपने कुटुम्ब की स्त्रियों को अन्ध-विश्वासों की निर्मूलता समझाया करता था। सूर्य्यास्त होने के पश्चात् व्यालू के समय हम लोग भिन्न-भिन्न विषयों पर खूब बातें करते थे। इस सुभाषित गोष्ठी में जब किसी प्राकृतिक पदार्थ या सामयिक खोज का वर्णन आता तो प्रत्येक स्त्री उसका अपना-अपना कारण अलग-अलग बताती। ये व्याख्याएँ अधिकतर मिथ्या विश्वासों से पूर्ण और अप्राकृतिक होती थीं परन्तु होती थीं बहुत बुद्धिमतापूर्ण। इन कारणों को मिथ्या सिद्ध करके उनके बदले अधिक सम्भव कारण बताना कोई कठिन काम न था और इन कारणों को स्त्रियाँ बड़े उत्साह और सद्भाव के साथ स्वीकार करती थीं जिससे उनके ज्ञान की परिधि दिन-पर, दिन विस्तृत होती जाती थी।"

इस गृह-शिक्षा के फलस्वरूप पर्दा-प्रथा अवश्य ही मिटनी चाहिये—तभी वह सफल मानी जा सकती है। देशबन्धु सी०

एफ० एण्ड्रूज़ का कहना है कि, "इस सम्बन्ध में बहुत-कुछ काम तो सत्य-परम्परा और देश की सद्रुचि का तिरस्कार किये बिना ही किया जा सकता है। समय-समय पर, घर की असूर्यम्पश्या स्त्रियों को लज्जा और एकान्तवास की आदतों का, जो किन्हीं अंशों में श्रेष्ठ भी है, अनुचित अतिक्रमण किये बिना ही, उन्हें सुन्दर प्रदेशों की सैर कराई जा सकती है तथा ताजी और स्वच्छ वायु से होने वाले स्वास्थ्य और आनन्द का अनुभव कराया जा सकता है। हम लोग स्वार्थवश जितना समय अपने आमोद-प्रमोद में बिता देते हैं, उतना समय अपने ही कुटुम्ब के इन सुकुमार सदस्यों की सेवा में लगावें जो कि कैदियों की भाँति बन्द रहते हैं तो कितना अच्छा हो ? भारतीय विद्यार्थी अब अपने लिये स्वच्छ वायु और व्यायाम के लाभों को अनुभव करते जा रहे हैं। उन्हें चाहिये कि वे घर की स्त्रियों को भी वायु-सेवन और व्यायाम की महिमा बता दें।

यदि किसी घर के सभी बालक-बालिकाएँ उचित शिक्षा पा रहे हों तो उसे अपने गाँव या नगर के अन्य बालकों की ओर ध्यान देना चाहिये। जो स्कूल पहले से कायम हैं उनकी आर्थिक सहायता कराई जा सकती है। विद्यार्थियों को उन स्कूलों में पढ़ने जाने के लिये प्रेरित और प्रोत्साहित किया जा सकता है। यदि आपके यहाँ कोई स्कूल न हो तो स्वयं एक छोटा-सा स्कूल कायम करो या अपने से अधिक पढ़े और अधिक सामर्थ्यवान लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित कराओ। शिक्षा-प्रचार के लिये जो कुछ कर सकते हो, करो।

कालेजों में पढ़ने वाले विद्यार्थी गाँवों के स्कूलों में जाकर, उन स्कूलों में पढ़ने वाले लड़कों का उत्साह बढ़ा सकते हैं। गाँवों के लड़के कालेजों के विद्यार्थियों को बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। कालेजों के विद्यार्थी जब इन स्कूलों में जाकर अपना

हर्ष और उत्साह प्रकट करते हैं तब इन युवा विद्यार्थियों को परम प्रोत्साहन प्राप्त होता है। कालेजों के विद्यार्थी, इन स्कूलों में पढ़ने वाले लड़कों का पढ़ना सुनकर, उनमें से कुछ का काम देखकर अथवा पाठ पूछकर और उन्हें चाकू, पेंसिल, किताब आदि छोटी-छोटी चीजें इनाम में देकर उनका उत्साह बढ़ा सकते हैं। लोक-सेवी इन स्कूलों में जाते समय इन चीजों को खरीद ले जाया करें।

गाँवों के स्कूलों में बहुधा अध्यापकों की कमी होती है। प्रायः एक ही अध्यापक को दो अध्यापकों का काम करना पड़ता है। जिसके फलस्वरूप वह अध्यापक अपना सर्वोत्तम काम नहीं कर सकता। पढ़ाई अच्छी नहीं हो पाती। छात्रों के साथ उसका संसर्ग बहुत कम रहता है जिसकी वजह से उनको मानसिक प्रेरणा का अभाव सहना पड़ता है। ऐसी दशा में लोक-सेवी सहज ही अध्यापक का हाथ बँटाकर साक्षरता-प्रचार में सहायक हो सकते हैं। स्वेच्छापूर्वक कुछ समय पढ़ाने का काम अपने ऊपर ले सकते हैं? यह काम उचित अधिकारियों से पूछ कर करना चाहिये।

इसी तरह कोई लोक-सेवक खेलों की देख-भाल का काम, भक्तिपूर्ण गान सिखाने का काम तथा प्रबन्धकारिणी कमेटी को किसी प्रकार की सहायता देने का काम अपने ऊपर ले सकते हैं।

इस प्रबन्ध में एक विद्यार्थी का कहना है कि "मैंने गाँव वालों को अपने लड़के गाँव के मदरसे में पढ़ने भेजने के लिये उकसाया, फल यह हुआ कि विद्यार्थियों की संख्या बाईस से बढ़कर अड़तीस हो गई।"

अगर कालेज का प्रत्येक विद्यार्थी पढ़ी-लिखी पत्नी का हठ ठान ले तो स्त्री-शिक्षा के प्रचार को भारी उत्तेजना मिले। कई

कालेजों के विद्यार्थियों ने इस बात की प्रतिज्ञा कर ली है कि वे न तो अमुक-अमुक अवस्था से पहले ही विवाह करेंगे और न अपढ़ लड़की से ही विवाह करेंगे।

लोगों को शिक्षा और साक्षरता के लाभ बताने के लिए मेलों तथा ऐसे ही अवसरों का सदुपयोग किया जा सकता है। लोक-सेवकों को चाहिए कि वे बेपढ़े-लिखे मजदूरों और कारीगरों को यह बतावें कि पढ़ना-लिखना और हिसाब जानने से उन्हें उनके रोज के काम में क्या-क्या फायदे होंगे? वे मालिक दूकानदार और चालाक साहूकारों के फन्दे से किस प्रकार बच सकेंगे। इन बेपढ़ों को ऐसे लोगों का हाल बताना चाहिए जो पढ़े-लिखे न होने की वजह से ठगे गये। साथ ही ऐसे लोगों की बात भी बताई जानी चाहिए जो पढ़े-लिखे होने की वजह से ठगे जाने से बच गये। इन कारीगरों और मजदूरों से सम्बन्ध रखने वाले विषयों की पुस्तकों के कुछ अंश पढ़कर उन्हें सुनाने चाहिए, जिससे उनका ज्ञान बढ़े और पुस्तकें पढ़ने की ओर उनमें रुचि उत्पन्न हो। कचहरी के चपरासी आदि लोगों को पद-वृद्धि, वेतन-वृद्धि और मालिक की प्रसन्नता की आशा दिलाकर पढ़ने के लिए विवश करना चाहिए। हर आदमी को यह बात समझाई जानी चाहिए कि पढ़-लिखकर वह अपने धर्म की पुस्तकें पढ़कर अपने धर्म की बातें जान सकेगा, अपने दूर के नातेदारों से पत्र-व्यवहार कर सकेगा और उनके भेजे हुए पत्र पढ़ सकेगा।

गाँव में जाकर लड़कों का झुण्ड इकट्ठा कर लेना बहुत ही आसान काम है। इन लड़कों से पूछने पर ऐसे लड़कों का पता लगाया जा सकता है जो पढ़ना-लिखना जानते हों। इन लोगों को किताब देकर इनसे पढ़वाओ और दूसरों के सामने उनकी तारीफ करके उनका दिल बढ़ाओ। थोड़ी-सी प्रशंसा और

थोड़े-से पारितोषिक से ही सब लड़कों का उत्साह बढ़ाया जा सकता है।

लोक-सेवक गाँवों में मदरसा खुलवाने का काम भी कर सकता है। शिक्षा-प्रचार-सम्बन्धी बड़े-बड़े कामों को इस प्रकार के प्रयत्नों से बहुत लाभ पहुंचा है। और इन प्रयत्नों से लोक-सेवकों को भी कोरी बातें करने की अपेक्षा कहीं अधिक आत्म-सन्तोष और सफलता का आनन्द प्राप्त हुआ है। दस-बारह दिन, पन्द्रह बीस गाँवों में घूमकर गाँव के खास-खास व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराकर डिस्ट्रिक्टबोर्ड को स्कूल खोलने के के लिये अर्जी भिजवाई जा सकती है और फिर हलके के मेम्बर, शिक्षा कमेटी के चेयरमैन आदि से मिलकर स्कूल खुलवाया जा सकता है।

एक विद्यार्थी ने हिन्दी की पचास पहली पुस्तकें लेकर अपने पड़ोस की स्त्रियों में बाँट दी। उसने अपने एक नातेदार को जो गाँव की एक सभा का मन्त्री था इस बात के लिए विवश किया कि वह सभा का उत्सव कराके उसमें लोगों से बहू-बेटियों को पढ़ाने-लिखाने का अनुरोध किया जाय। सभा हुई और उसके परिणाम स्वरूप एक कन्या-पाठशाला भी खुल गई, जिसमें कालान्तर में बाईस लड़कियाँ एक विधवा अध्यापिका से पढ़ने लगीं।

गाँव के थोड़े-से चंचल बालकों को इकट्ठा करके उन्हें प्रति सप्ताह कुछ घण्टे पढ़ाना आसान नहीं, कठिन काम है। परन्तु फिर भी अनेक विद्यार्थियों ने अपनी छुट्टी के दिनों में यह काम कर दिखाया है। इस काम के लिये बड़े-बड़े भवनों, बहुमूल्य पुस्तकों और अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं। एक बरामदे में बैठकर थोड़ी पुस्तकों को पढ़ाने में कुछ घण्टों का स्वार्थ-त्याग करके अपना उत्साह प्रदर्शित किया जा सकता है और धीरे-धीरे

उसका फल भी मिल सकता है। जब कोई विद्यार्थी किसी भंगी को हिन्दी पढ़ाना-लिखाना सिखा चुकता है तब उसे भारत की आवश्यकताओं के गहरेपन का पता चल जाता है। यदि लोक-सेवक अपने अन्य मित्रों तथा साथियों को सहर्ष इस प्रकार की शिक्षा देने के लिये उकसा सकें तो और भी अच्छा हो क्योंकि इस तरह साथ देने से उन्हें सच्ची सहायता मिलेगी। परन्तु पहले उन्हें अपने अवकाश के समय को इस काम में लगा कर यह सिद्ध कर देना चाहिए कि उन्हें स्वयं इस कार्य की उपयोगिता में विश्वास है।

ऐसा कौन-सा गाँव अथवा शहर है जिसमें कोई न कोई अछूत कहलाने वाली जाति न रहती हो? इन जातियों के बिना तो समाज का स्वास्थ्य-सम्बन्धी और सामाजिक काम चल ही नहीं सकता। परन्तु न केवल इन लोक-सेवी जातियों की उपेक्षा ही की जाती है बल्कि वे घृणा की दृष्टि से भी देखी जाती हैं। इन जातियों को शिक्षा-द्वारा उन्नत बनाना तथा इनकी सामाजिक अवस्था में सुधार करना ऐसा पवित्र कार्य है जिसकी उपेक्षा मातृ-भूमि का कोई भी सच्चा पुत्र नहीं कर सकता।

अछूत जातियों के लिए दिन और रात्रि दोनों की पाठशालाएँ काम दे सकती हैं। दिन की पाठशाला खोलते समय सब से पहले पढ़ने वालों की सुविधा का ध्यान रखना चाहिए। जो विद्यार्थी इन मदरसों में शिक्षा पाने के लिए आवेंगे वे कम उम्र के ही होंगे। इनमें से बहुत-से तो एक-दो घण्टे सुबह और एक-दो घण्टे शाम को अपने माता-पिता को उनके काम में सहायता देते होंगे। अतः इन बालकों के लिए ग्यारह बजे से लेकर तीन बजे तक का स्कूल अधिक सुविधाजनक होगा क्योंकि इस समय के होने से उन्हें अपने मा-बाप की सहायता करने में कोई बाधा नहीं पड़ेगी। ऐसी पाठशाला में सौ रुपये सालाना से

अधिक खर्च नहीं पड़ेगा। ऐसी अछूत पाठशाला के लिए कोई मकान न मिल सके तो शीत-घाम-वर्षा आदि से बचने के लिए छाया का प्रबन्ध करना पड़ेगा। पेंशन प्राप्त स्कूल-मास्टर या पढ़ा-लिखा पेंशन प्राप्त सिपाही यह सेवा-कार्य करके सहज ही में अपना जीवन सफल कर सकता है। छाया के प्रबन्ध के लिए, अन्य साधनों के अभाव में किसी विशाल वृक्ष या वृक्षों के घने झुण्ड की छाया से स्कूल के कमरे का काम लिया जा सकता है। अनेक स्थानों पर ऐसा किया भी गया है और वहाँ किसी प्रकार की ऐसी असुविधा भी नहीं हुई। भारत में प्राचीन काल में इसी प्रकार, वृक्षों की शीतल-छाया में ही, शिक्षा दी जाती थी। जापान में तो अब तक ऐसा ही होता है। पेड़ के नीचे बच्चों को पढ़ते देखकर किसी उदार दयावान दानी का हृदय भी स्कूल के लिए भवन बनवाने को प्रेरित हो सकता है।

इन स्कूलों में पढ़ाई-लिखाई और हिसाब के अतिरिक्त पथ्य, नीति, शिष्टता और स्वच्छता के साधारण सिद्धान्तों का सिखाया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

इन जातियों के बड़ी उम्र के लोगों को रात्रि में शिक्षा देने के लिए उसी अध्यापक और कदाचित् उसी स्थान से काम चल सकता है। हाँ, वेतन कुछ अधिक देना पड़ेगा।

इन जातियों को इस बात के लिए तैयार करना कोई आसान काम नहीं फिर भी अब वह उतना कठिन नहीं रहा जितना पहले था। समय की प्रगति से इन जातियों ने भी करवट बदली है और वे अपनी उन्नति की इच्छा करने लगी हैं। लोक-सेवकों का कर्त्तव्य है कि वे इन लोगों के पास जाकर इनसे हिलें-मिलें और बातें करें। आवश्यकता हो तो उन्हें समुचित सलाह दें और जहाँ तक सम्भव हो किसी न किसी ढङ्ग से उनकी सहायता करें। ऐसे मनुष्य से वे स्वभावतः हार्दिक-प्रेम करने लगेंगे और

उसकी अपने लिए हितकर बातें मानने को तैयार रहेंगे। ऐसा लोक-सेवक यदि उनसे यह कहेगा कि अपने बाल-बच्चों को पढ़ाओ-लिखाओ तो वे अवश्य ही उसकी बात मान लेंगे।

आज-कल हर एक गाँव और हर एक नगर में ऐसा समुदाय मिलेगा जो पढ़ना-लिखना सीखने की थोड़ी-बहुत इच्छा अवश्य रखता है। परन्तु उनकी इस इच्छा की पूर्ति का कोई साधन नहीं होता। ऐसे ही लोगों के लिए रात्रि-पाठशालाओं की विशेष आवश्यकता है। जिन किसानों, मजदूरों, कारीगरों और चपरासियों आदि को बाल्यावस्था में पढ़ने का अवसर नहीं मिला और जिनके पास अवैतनिक पाठशाला में जाने का समय नहीं उनसे यदि समुचित सहानुभूतिपूर्वक कहा जाय तो वे ऐसे अवसर से लाभ उठाने के लिए सहर्ष तैयार हो जायेंगे। रात्रि-पाठशाला खोलने के लिए नीचे लिखी चीजों की जरूरत है—

(१) पूँजी, (२) स्थान और सामग्री, (३) सर्वोपरि दृढ़ उत्साही और स्वेच्छा-सेवी पर्यवेक्षक (सुपरिन्टेन्डेन्ट)।

जहाँ प्रतिज्ञा-बद्ध अथवा वैसे ही नव-युवक रात्रि पाठशाला में पढ़ाने के लिये एक या दो घण्टे देने को तैयार हों वहाँ अधिक धन की आवश्यकता नहीं होगी। परन्तु फिर भी यह अच्छा रहेगा कि स्कूल के प्रबन्धक रात्रि-पाठशाला खोलने से पहले साठ रुपये का प्रबन्ध करलें जिससे कम-से-कम एक साल के लिए तो एक अल्प वेतन-भोगी अध्यापक आसानी से रख सकें। जो लोक-सेवक अपनी सचाई और योग्यता के लिए प्रसिद्ध हैं उनके लिए इतना धन इकट्ठा करना कोई कठिन काम नहीं।

इतने धन से एक ऐसा अध्यापक रक्खा जा सकता है जो कम-से-कम पच्चीस विद्यार्थियों को पढ़ा सके। रोशनी, दिया-बत्ती, खड़िया, झाड़न, पेंसिल इत्यादि के लिये पन्द्रह-बीस रुपये साल की आवश्यकता अलग होगी। इस प्रकार सब मिलाकर

अस्सी रुपये साल में साल भर तक एक रात्रि-पाठशाला का काम मजे से चल सकता है।

जिस गाँव या मुहल्ले में रात्रि-पाठशाला खोली जा रही हो उसमें दिन की पाठशाला भी हो तो उस पाठशाला के अधिकारी गण प्रार्थना करने पर रात्रि-पाठशाला के लिए स्कूल का स्थान और कुछ सामग्री भी देने को सहर्ष तैयार हो जायेंगे। इस दशा में केवल एक अच्छी और मजबूत लैम्प की आवश्यकता होगी जिसका व्यय दस रुपये से अधिक न होगा। अधिक गरीब बालकों के लिए कुछ स्लेटें और किताबें रक्खी जा सकती हैं। इन सबको शामिल करके पहले साल स्कूल का कुल खर्च सौ रुपये होगा और फिर पिचहत्तर रुपये साल। यदि स्वेच्छा-सेवी अवैतनिक अध्यापक मिल जाय तब तो यह खर्च निश्चय ही बहुत कम रह जायगा।

यदि कोई सच्चा और उत्साही लोक-सेवक स्वेच्छापूर्वक रात्रि-पाठशाला में पढ़ाने को तैयार हो जाय तो उसके ऊपर कोई पर्यवेक्षक रखने की आवश्यकता न होगी क्योंकि उसकी आत्मा ही उसकी पर्यवेक्षक है। परन्तु जहाँ वेतन-भोगी अध्यापक काम करता हो वहाँ एक ऐसे उत्साही पर्यवेक्षक का होना अत्यन्त आवश्यक है जो पाठशाला के लिए तीन या चार घण्टे प्रति सप्ताह दे सके। बहुत-सी रात्रि-पाठशालाएँ तो ऐसा पर्यवेक्षक न मिलने के कारण ही खुलकर बन्द हो गयीं। गाँव या मुहल्ले के किसी सम्मानीय व्यक्ति को कोषाध्यक्ष बनाकर समस्त रुपया उसके पास रखना आवश्यक है। यदि ऐसे कोषाध्यक्ष में स्कूल के लिए चन्दा इकट्ठा करने की चतुराई और हो, तो रात्रि-पाठशाला धनाभाव के कारण कभी बन्द न हो सकेगी।

रात्रि-पाठशाला खोलने का समय ठीक होना चाहिए। गाँवों में जब फसल काटने का समय आवे अथवा जब कभी गाँव

वालों पर काम की भीड़ हो तब स्कूल की छुट्टी कर देनी चाहिए। और उसके बाद नियत समय पर स्कूल खुल जाना चाहिए। पाठशाला के विद्यार्थियों को अनुपस्थित होने के लिये मजबूर करने से पाठशाला की छुट्टी कर देना कहीं अच्छा है।

पाठशाला के प्रबन्धक या अध्यापक को चाहिये कि वह अपने यहाँ के पढ़े-लिखे लोगों को तथा दर्शकों को इस बात के लिए निमन्त्रित करे कि वे स्कूल में आकर उसका निरीक्षण करें तथा छात्रों को कुछ उपदेश दें। अथवा उन्हें किसी धार्मिक या अन्य पुस्तक का कुछ अंश पढ़कर सुनावें। इससे पाठशाला के विद्यार्थियों का उत्साह बढ़ेगा और शिक्षित-अशिक्षितों में एक नैसर्गिक संसर्ग स्थापित होगा। स्थानीय डाक्टरों से प्रार्थना की जानी चाहिए कि वे स्कूल में आकर आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा के सिद्धान्त समझावें।

उत्साही कार्यकर्त्ता को रात्रि-पाठशाला खोलने के लिए यदि प्रारम्भ में बिल्कुल पूँजी न मिले तब भी पाठशाला खोल कर बहुत कम व्यय पर चलाई जा सकती है।

स्थानीय मन्दिर या किसी उत्साही सज्जन के घर का बरंडा पाठशाला का काम दे सकता है। अच्छी तरह से झाड़ी-बुहारी हुई जमीन फर्श का काम दे सकती है, और कठोर भूमि पर अच्छी और महीन धूल फैलाकर उससे तथा एक लकड़ी के टुकड़े से स्लेट और पेंखिल का काम लिया जा सकता है। ऐसी दशा में सिर्फ लैम्प और किताबों का ही खर्च रह जायगा। इस प्रकार की पाठशालाओं का प्रारम्भिक व्यय केवल दस रुपये होगा और फिर एक रुपया प्रति-मास से काम चल जायगा।

शुरू में यदि रात्रि-पाठशाला के लिए विद्यार्थी इकट्ठा करने में कुछ कठिनाई पड़े तो उससे घबड़ाना नहीं चाहिए।

सम्भवतः आधे कार्यकर्त्ता वेतन-भोगी और आधे स्वेच्छा-

सेवी रखना सर्वोत्तम है। आरम्भ में उत्साही और सामाजिक सेवा के लिए स्वयं-सेवी अध्यापक का होना अत्यन्त लाभदायक है। परन्तु जब शिक्षा देने का काम आता है तब बहुधा स्वेच्छा-सेवी अध्यापक असफल होता है। क्योंकि शिक्षा देना पढ़ाना-लिखाना भी एक कला है जो नियमानुसार किये गये दीर्घ अध्ययन और अनवरत अभ्यास से प्राप्त होती है। सम्भव है कि स्वेच्छापूर्वक काम करने वाला अवैतनिक पण्डित योग्य और विद्वान् होने पर भी अपनी विद्वत्ता से दूसरों को लाभ पहुँचाने की कला से अनभिज्ञ हो। इसके अतिरिक्त वेतन-भोगी अध्यापक अधिक गम्भीरता से काम करता है और बहुत अधिक नियमानुकूल रहता है।

बी० ए० की अन्तिम कक्षा के एक विद्यार्थी ने बी० ए० की पहली कक्षा की पढ़ाई पढ़ते समय एक रात्रि-पाठशाला स्थापित की जिसमें वह एक घण्टे रोज निःशुल्क पढ़ाता था। इस पाठशाला में पिचहत्तर विद्यार्थियों ने हिन्दी, मामूली अङ्कगणित और अँग्रेजी की शिक्षा पाई। स्कूल के लिए किसी ने मकान दिया, तो किसी ने तेल। पाठशाला में एक वेतन-भोगी अध्यापक पढ़ाता था और एक स्वयंसेवी।

सड़क या मार्ग के किनारे के किसी स्थान में, अथवा गाँव के चौक में ऐसे मनुष्यों की बड़ी भीड़ इकट्ठी की जा सकती है, जो जो अपनी निरक्षरता के कारण पुस्तकें या समाचार पत्रादि पढ़ने में असमर्थ हैं। इस मनुष्य-समूह को उचित अहार-विहार, मलेरिया, तपेदिक इत्यादि लोकोपयोगी विषयों पर छोटी-छोटी पुस्तकाएँ पढ़कर सुनानी चाहिए। ऐसी पुस्तिकाएँ सुगमता से मिल सकती हैं। उन लोगों को, जिनके लिए छापाखाना अश्रुतपूर्व वस्तु है, कम उपदेशप्रद और अधिक लोकप्रिय बातें पढ़कर सुनाई जा सकती हैं। गाँव के चौक में या चौपार पर

लोग समुचित ढङ्ग से चुने हुए समाचार-पत्रों को प्रायः बड़ी उत्सुकता के साथ सुनते हैं और यदि इन समाचार-पत्रों में बाजार-भाव तथा मौसम सम्बन्धी-समाचार हों तब तो कहना ही क्या है ?

डिस्ट्रिक्ट बोर्डों और म्यूनिसिपल बोर्डों से प्रारम्भिक पाठशालाएँ, अथवा रात्रि-पाठशालएँ खुलवाना, या पहले से खुली हुई पाठशालाओं को मदद दिलवाना और इससे भी आगे बढ़ कर निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा जारी कराना ऐसे काम हैं जिन्हें लोक-सेवी थोड़े-से प्रयत्न से लोक-मत को संघटित करके प्रसन्नतापूर्वक कर सकते हैं।

बालकों के लिए शिक्षा की भिन्न-भिन्न श्रेष्ठ पद्धतियों का अध्ययन कीजिये। इन सब पद्धतियों का प्रयोग कीजिये और इनमें से जो पद्धति अपनी देश-कालावस्था के अनुसार सर्वश्रेष्ठ मालूम हो उसका प्रचार कीजिए। किन्डरगार्टन, नर्सरी स्कूल, क्रिक, क्रैचेज़ और बाल-पथ-प्रदर्शक समितियों (child guidance clinics) इत्यादि अर्वाचीन शिक्षा पद्धतियों का प्रयोग बढ़वाइये और बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में माता-पिता के, विशेषतया माताओं के घोर अज्ञान को दूर करने के लिए नर्सरी स्कूलों में मातृ-शिक्षा-कक्षा खुलवाइये।

प्रारम्भिक शिक्षा के प्रबन्ध का अध्ययन कीजिए और उसके दोषों का पता लगाकर उनको दूर करने के विधेयात्मक उपाय ढूँढ़ निकालिये और फिर बोर्डों को तथा प्रान्तीय सरकार को इन दोषों को दूर करने के लिए खटखटाइये। उदाहरणार्थ यदि किसी जगह आधे या एक मील के अन्दर एक से अधिक पाठाशाला हो तो या तो एक पाठशाला बन्द करवा कर ऐसी जगह खुलवाइये जहाँ तीन मील से भी अधिक दूरी पर कोई पाठशाला न हो, अथवा दोनों पाठशालाओं को एक करा के

उसमें अध्यापकों का बेहतर प्रबन्ध कराइये । प्रत्येक जिले में नमूने की एक ऐसी उन्नत पाठशाला खुलवाइये जिसकी पढ़ाई को देखकर दूसरी पाठशालाओं को तरक्की करने की सूझे! लोगों से स्वयं ऐसा स्कूल खुलवाकर उसे बोर्ड अथवा प्रान्तीय सरकार से इमदाद दिलवाइये । जहाँ तक हो सके वहाँ तक सरकार से इमदाद लेकर स्कूल की ऐसी अपनी इमारत अवश्य बनवाइये। यह इमारत स्वास्थ्यप्रद होने के साथ-साथ बहुत ही सस्ती होनी चाहिए। स्कूल की इमारत का उपयोग बढ़ाइये। आज-कल स्कूल के समय के बाद वह इमारत यों ही पड़ी रहती है। उसमें स्कूल के समय के बाद बालकों के लिए अथवा अछूतों के लिए रात्रि-पाठशालायें खुलवाइये । मुहल्ले अथवा गाँव के लोगों की सभायें कराइये अथवा सार्वजनिक विषयों पर व्याख्यान करवाइये। हो सके तो अध्यापक के लिए एक अच्छे से घर का प्रबन्ध भी करवाइये जिससे गाँव वालों में उसकी प्रतिष्ठा बढ़े और उन्हें छोटे-से साफ-सुथरे मकान को देखने का सुभीता मिले । गाँवों को बड़ी-बड़ी पाठशालाओं में दो एकड़ ऐसी जमीन का इन्तजाम करवाइये जो खेल, कवायद और खेती की शिक्षा के काम आ सके। इन उद्देशों के लिए प्रान्तीय सरकारें खाली जमीनों में से उपयुक्त भूमि सरलता से दिला सकती है।

गाँव से जो प्रतिष्ठित और प्रभावशाली पुरुष शिक्षा-प्रचार में दिलचस्पी लेते हों उन्हें स्कूलों का निरीक्षण करने के लिए प्रेरित कीजिये। स्कूल के काम और उद्देश के बारे में इन लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने की पूरी-पूरी कोशिश की जानी चाहिये।

गाँव की पब्लिक में भी गाँव के स्कूल के कार्य के प्रति श्रद्धा और आदर के भाव उत्पन्न कीजिये। यह तभी हो सकता है

जब स्कूल को गाँव वालों के दैनिक जीवन के लिये उपयोगी बना दिया जाय और उनको स्कूल की वर्त्तमान तथा भावी उपयोगिता दिखा दी जाय।

अपने गाँव की पाठशाला को इस बात के लिए तैयार कीजिए कि वे बालकों की शिक्षा के उन कामों को भी अपने हाथ में ले लें जिन्हें दूसरा कोई उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ पाठशाला में ही लड़कों-लड़कियों को कहानियाँ, चित्रों, पुस्तकों और गीतों द्वारा मातृभूमि के जीवन के सब अङ्गों की जितनी झलक सम्भव हो दिखा दी जाय। बच्चों को स्वास्थ्य-सम्बन्धी वे आदतें सिखा दी जायँ जो उनके मा-बापों ने कभी नहीं सीखी थी। बालकों को स्कूल से बाहर जो अनुभव होते हैं उनको स्कूल के भीतर के अनुभवों से सम्बन्धित कर दिया जाय जिससे वे एक दूसरे का असर मिटाने के बदले एक दूसरे की शक्ति को बढ़ावें। अध्यापकगण बालकों को घरों में बगीचा लगाने तथा इसी तरह के दूसरे उपयोगी कार्य करने के लिये प्रेरित कर सकते हैं। उनको ऐसे गीत सिखा दीजिए जिन्हें वे खेतों या चरागाहों में काम करते समय गा सकें। बच्चों में समस्याओं को हल करने की, सोच-विचार कर काम करने की और मिल कर काम करने की आदतें डलवानी चाहिये।

इस बात का उद्योग कीजिये कि आपके स्कूल के बालकों में व्यवहार-द्वारा सेवा करने की आदत पड़ जावे और उनमें दृढ़ चरित्र का निर्माण हो। कोरा 'सत्यंवद धर्मंचर' का उपदेश देने से कोई लाभ नहीं हो सकता। बहुधा उसका परिणाम विपरीत होता है। परन्तु पाठशाला का पुनीत सामाजिक जीवन उनमें नैतिक शिक्षा के अनेक भाव भर देता है। गाँव की सेवा के कार्य में बालकों से काम लीजिये और उनमें ऐसी आदत डाल दीजिये कि वे सब के भले के लिए मिलकर काम करने के लिए

सदैव सहर्ष तैयार रहें। बालकों को ग्राम-निवासियों के कर्त्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान कराया जाना चाहिये और उनमें दूसरे गाँव वालों की सहायता करने का अभ्यास रहना चाहिये।

भारत के अतीत और वर्त्तमान में जो कुछ सर्वोत्तम है उसके प्रति हार्दिक भक्ति और राष्ट्रीय-एकता के भावों को बालकों में पाठशाला में ही सुदृढ़ कर देना चाहिये। यह काम देश के प्रसिद्ध और सुन्दर स्थानों, श्रेष्ठ महाकाव्यों, महापुरुषों और उनकी उच्चतम आकांक्षाओं के सम्बन्ध में लोगों को गीत, कहानियाँ सुना कर और तस्वीरें दिखा कर करना चाहिये।

बालकों में प्राकृतिक परिस्थिति के निरीक्षण और अध्ययन की आदत पाठशाला में ही डाल दी जानी चाहिये।

पाठशाला में ही बालकों में सत्साहित्य के अर्थ और उसके मतलब की परख कर सकने की सामर्थ्य उत्पन्न करनी चाहिये। यह तभी हो सकता है जब शुरू की कक्षाओं में ही बालकों को तरह-तरह की कहानियाँ, मात्राओं के वर्णन और प्राकृतिक आश्चर्य की बातें सुनाई जायँ। इस प्रकार उनकी कल्पना-शक्ति को जाग्रत करके उनसे पूछा जा सकता है कि जो कुछ उनको पढ़ कर सुनाया गया है उसको वे स्वयं अपनी भाषा में कह सुनावें। बालकों से यह कहा जाय कि वे सरल पुस्तकों को चुपचाप घर पर पढ़ें और अपनी कक्षा या समस्त स्कूल के सामने उसकी रिपोर्ट करें। पाठशाला के कार्य-सम्बन्धी सरल दृश्यों के सम्बन्ध में बालक नाटक बना कर खेलें। बालक अपने माता-पिताओं से पूछ कर भारतीय किंवदन्तियों, कहानियों और कहावतों को इकट्ठा करके कक्षा में रिपोर्ट किया करें और जो इस काम में सर्वश्रेष्ठ रहे उसे पारितोषिक दिया जाया करे।

पाठशाला में ही बालकों को अपने स्कूल तथा घर को साफ रखना सिखा देना चाहिये। बच्चों को तरह-तरह के ऐसे देशी

खेल सिखा दिये जाने चाहियें जिन्हें वे बिना खर्च के खेल सकें। ये खेल ऐसे हों जिनमें शरीर और दिमाग दोनों का व्यायाम होता हो, जिन्हें खेलने से बच्चों में खेल की रुचि उत्पन्न होकर बढ़े और जो घर पर, स्कूल में तथा खेतों पर सब जगह खेले जा सकें। पाठशालाओं में कन्याओं के स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि सबसे अधिक उपेक्षा उन्हीं के स्वास्थ्य की होती है।

बालकों को अपनी बात कहने के, किसी बात के वर्णन करने के, जितने अधिक अवसर दिये जा सकें दिये जाने चाहिए। उन्हें कहानियाँ कहने के लिए, तथा लोगों से व्यवस्थित बात कहने के लिए, प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उन्हें काम की चीजें, जैसे—निजी पत्र, गाँव के पट्टे, खाते-खतौने, इकरार-नामे, परचे, मासिक-पत्र वगैरः पढ़ना सिखाना चाहिए। उन्हें निजी तथा सीधे-साधे व्यवसाय के पत्र लिखना भी सिखाया जाना चाहिए।

पाठशाला के अध्यापकों को इस बात के लिए प्रेरित कीजिए कि वे अपना समय पहले तो बालकों की जरूरी पढ़ाई में लगावें, ऐसी पढ़ाई में जो बहुत जरूरी हो। बाकी समय गाँव वालों की सेवा और उत्थान के काम में। बहुधा पाठशाला में अच्छी शिक्षा उस समय तक दी ही नहीं जा सकती जब तक कि गाँव की दशा न सुधर जाय। पाठशाला के बहुत-से कार्य इस ढङ्ग से किये जा सकते हैं जिससे उन कार्यों से गाँव का भी भला होता रहे। जब लोगों को काम से छुट्टी रहे तब उनसे भी इस काम में सह-योग लिया जा सकता है।

गाँवों के हित के जिस काम को सहयोग समितियाँ भी नहीं कर सकतीं उसे पाठशाला से कराइए, जैसे पाठशाला अच्छा बीज बाँटने, पौधे और छोटे-छोटे पेड़ बाँटने का काम कर सकती

है। गाँव की पञ्चायत को इस बात के लिये प्रोत्साहित किया जा सकता है कि वे कर्ज को, फिजूलखर्ची, आपसी बैर-भाव, मुकदमेबाजी वगैरह को कम कराकर गाँव और उसके स्कूल की तरक्की में क्रियात्मक भाग ले। गाँव के नवयुवकों के भिन्न-भिन्न दल बनाइये। इन दलों में से कोई खेती की तरक्की का काम करे, कोई पशु-पालन का, कोई गाँव की तरक्की का। संयुक्तप्रांत अमेरिका की बाल-समितियों ने इन कामों में बड़ी सफलता पाई है।

जो बड़े लोग पढ़े-लिखे-साक्षर हैं उनको कुछ छोटे-छोटे खिताब, तथा विशेषाधिकार देकर उनका विशेष सम्मान कीजिये और उन्हें इस बात के लिए प्रोत्साहित कीजिये कि वे निजी तथा व्यवसाय-सम्बन्धी पत्र लिखा करें। गाँवों के लिये ऐसी पुस्तकें तैयार कीजिये जिन्हें पढ़ने के लिये गाँव वाले लालायित हो उठें, जिससे उनमें पढ़ना-लिखना सीखने की रुचि उत्पन्न हो। गाँव में जगह-जगह पर नोटिस, मूल-मन्त्र तथा घर वालों के नाम आदि लिख दीजिये जिन्हें देखने से लोगों में लिखे हुए अक्षर देखने की आदत पड़े और उनका कौतूहल बढ़े।

पाठशाला के अध्यापक की पत्नी को इस बात के लिए राजी कीजिये कि वह गाँव की लड़कियों और स्त्रियों में शिक्षा तथा सुविचारों का प्रचार कार्य करे।

शिक्षा के प्रबन्ध में सुधार कराने के साथ-साथ लोक-सेवी मैजिक लाल्टेनों द्वारा व्याख्यान देकर तथा विद्यार्थियों को मिल, कारखाना, अजायब घर, वगैरः दिखाकर भी शिक्षा का प्रचार कर सकते हैं।

अधिक अवस्था वाले और अधिक शिक्षा पाये हुए लोक-सेवी तथा विद्यार्थी मैजिक लैन्टर्न से बहुत अच्छा काम कर सकते हैं। इस प्रकार की लाल्टेनें अब ऐसी महँगी

भी नहीं हैं। विगत महायुद्ध से पहले आई० एस० एस० यू० जबलपुर सी० पी० के आफिस ऐसिस्टैंट से लालटेन पिचहत्तर रुपये में और "कामा" सेफ्टी कारबाइड की गैस लैम्प पैंतीस या पैंतालीस रुपये में मिल सकती थी। तेल की लैम्प तीस-पैंतीस रुपये में वावा जी सखाराम एन्ड को यूसुफ बिल्डिङ्ग बम्बई से मिल सकती थी। इन दिनों इनकी कीमतें और भी कम हो गई होंगी। नई नई किस्म की लैंएटर्न चलगई होंगी। क्यों कि यहाँ इनका प्रचार काफी बढ़ गया है।

लगभग प्रत्येक म्यूनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के पास मैजिक लैन्टर्न हैं जिन्हें लोक-सेवी उनके अधिकारियों की अनुमति से अपने सेवा-कार्य के लिए माँग सकते हैं। जादू की यह लाल्टेन प्राप्त कर लेने के बाद दूसरी समस्या ऐसे चित्रपट इकट्ठा करने की है जो दिलचस्प होने के साथ-साथ शिक्षाप्रद भी हों। परन्तु इन दिनों इस प्रकार के चित्र-पटों का भी ऐसा अभाव नहीं है। लाल्टेन-द्वारा चित्र-पट दिखाना सीख कर लोक-सेवी सहज ही गाँव अथवा मुहल्ले वालों को इकट्ठा करके उनका मनोरञ्जन करके साथ-साथ उन्हें उच्चकोटि की स्थायी शिक्षा दे सकते हैं। जो लोक-सेवी इन लाल्टेनों द्वारा काम करना चाहें वे किसी लोक-सेवी कार्य-कर्त्ता द्वारा जो इस काम को पहले ही से जानता हो अथवा कालेज के विज्ञान-शिक्षक द्वारा लाल्टैनों से काम लेना सीख लें। ऐसे कार्य-कर्त्ताओं का एक समूह तैयार कर लेना, जो इन लाल्टैनों से चित्र-पट दिखाते हुए व्याख्यान दे सकें, कोई साधारण सेवा नहीं।

एक विद्यार्थी ने लाल्टेन के जरिये वायस्कोप की-सी तस्वीरें दिखाने का काम सीख कर छुट्टी के दिनों में उससे काम लिया। उसका अनुभव इस प्रकार है—"साधारण गाँवों में जादू की लाल्टेन अब भी ऐसी अनोखी चीज है जैसी किसी कस्बे में

हवाई जहाज ! उसे देखने के लिए झुण्ड के झुण्ड लोग इक्ट्ठे हो जाते हैं। ऋतु खराब होने के कारण यद्यपि एक स्थान पर पाँच से अधिक चित्र नहीं दिखाए जा सके तथापि मैंने यह अनुभव किया कि स्वच्छता अथवा उचित आहार-विहार आदि विषयों पर मैंने जो व्याख्यान दिये वे हमारे देश-बन्धुओं के लिए परम सहायक सिद्ध हुए।"

लाल्टेन-द्वारा व्याख्यान अनुकूल ऋतु में ही देना अच्छा रहता है। हर एक ऋतु में लाल्टैनों के जरिये तस्वीरें दिखाने की सुविधा नहीं रहती। अच्छा यह रहेगा कि कार्यकर्त्ता पहले सभी आवश्यक वस्तुओं की एक सूची बना ले क्योंकि यदि एक भी आवश्यक वस्तु घर पर कार्यालय में पड़ी रह गई तो फिर ऐन वक्त पर सब मजा किरकिरा हो जायगा। कार्य के सम्बन्ध में सबसे पहली बात परदे के लिए उचित स्थान का तय करना है। परदा इस तरह लटकाया जाना चाहिए कि तस्वीर लोगों के सिर से ऊँची हो जिससे सब लोग उसे आसानी से देख सकें। परदा टाँगते समय इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि उसमें सलवटें न रह जायँ। सञ्चालक को इस प्रकार से संकेत करना चाहिए जिससे दर्शकों को यथासम्भव उसका पता ही न चलने पावे। बेंत या किसी ऐसी ही चीज से इशारा कर देना अच्छा रहता है।

औद्योगिक और वैज्ञानिक शिक्षा की ओर बालकों की रुचि उत्पन्न करने के लिए तथा उनके मानसिक क्षितिज को उन्नत करने के लिए यह आवश्यक है कि कि वद्यार्थियों को यदा-कदा मिल, कारखाने, अजायब-घर वगैरः भी दिखाये जायँ। मिल कारखाने तथा ऐसे सभी स्थान जहाँ मशीनों से काम होता हो, औद्योगिक शिक्षा के वास्तविक स्थान हो सकते हैं। ऐसे स्थानों में जाकर उनका निरीक्षण करने के लिए पास अथवा आज्ञा ले

लेना और फिर विद्यार्थियों को वहाँ ले जाना अथवा विद्यार्थियों के सामने किसी पौधे की सरल व्यवस्था और उनके रोचक वर्णन का प्रबन्ध करना उनकी शिक्षा में स्पष्ट सहायता करना है। छापेखानों को, रुई की मिलों को तथा दूसरे कारखानों को देख कर विद्यार्थियों को ऐसे उपायों का ज्ञान होता है जिनसे मनुष्यों का परिश्रम कम होता है, बच जाता है और आदमियों का काम मशीनों से लिया जाता है। जब तक भारतीय ऐसे ढङ्गों से काम नहीं लेते जिनसे प्रत्येक मनुष्य की दैनिक आय से उसकी उदर-पूर्त्ति होकर उसके पास कुछ बच रहे तब तक उसकी आर्थिक उन्नति की कोई आशा नहीं। सार्वजनिक भवनों, ऐतिहासिक स्मारकों और विशाल उद्यानों को देखकर बालकों को अपनी पूर्वकालीन पैतृक सम्पत्ति का पता चलता है और उनमें स्वदेश के गौरव का भाव उत्पन्न होता है।

लाल्टैनों-द्वारा तस्वीरें दिखाना अब लगभग बहुत से शिक्षणालयों में सिखाया जाता है। ट्रेनिङ्ग कालेज इलाहाबाद में इसका समुचित प्रबन्ध है। इलाहाबाद यूनीवर्सिटी की एक ग्राम-सेवा लीग भी है जो ग्राम-सेवा का कार्य कर रही है। लखनऊ में प्रान्तीय सरकार के प्रकाशन-विभाग के पास चित्र-पटों का अच्छा प्रबन्ध है। सन् १६३४ में प्रान्तीय सार्वजनिक स्वास्थ्य-विभाग ने रेड-क्रास सोसाइटी को इस काम के लिए काफी रुपया देना तय किया था कि वह स्वास्थ्य के सम्बन्ध में दिखाने लायक प्रभावोत्पादक चित्र-पट तैयार करे। बनारस में ग्राम-पुनस्संगठन-सङ्घ एक अर्द्ध-सरकारी संस्था है। इसने अपनी ओर से ग्राम्य-कार्यकर्त्ताओं और अध्यापकों के लिये एक शिक्षा-क्लास भी खोल रक्खी है। रात्रि-पाठशालाओं तथा सहयोग समितियों-द्वारा स्थापित वयस्कों की प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिये प्रान्तीय सरकार की ओर से भी इमदाद मिलती है। लोक-

सेवी इन और ऐसे सभी साधनों से काम ले सकते हैं।

वयस्कों को अक्षर-ज्ञान कराने के साथ-साथ, व्याख्यानों द्वारा, बात-चीत-द्वारा तथा पदार्थ-पाठ-द्वारा, पशु-पालन, कृषि-उन्नति, सहयोग-महिमा, स्वास्थ्य-रक्षा आदि उपयोगी विषयों की शिक्षा भी दी जानी चाहिये।

स्त्री-शिक्षा

पर जितना महत्व दिया जाय थोड़ा है। जब तक स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होतीं तब तक किसी भी प्रकार का सुधार होना असम्भव ही समझिये। स्त्रियों की शिक्षा के बिना देश की उन्नति तो हो ही नहीं सकती। साइमन कमीशन का कहना है कि "हिन्दुस्तान में उन्नति की कुञ्जी स्त्रियों के हाथ में है। स्त्रियों की जाग्रति के सुपरिणामों की कल्पना नहीं की जा सकती। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि हिन्दुस्तान संसार के राष्ट्रों में जो पद हासिल करना चाहता है उस पद पर वह उस समय तक कदापि नहीं पहुँच सकता जब तक कि यहाँ की स्त्रियाँ सुशिक्षित नागरिकों के कर्त्तव्यों का पालन नहीं करतीं!" शाही कृषि कमीशन ने भी इस बात पर बहुत जोर दिया है कि जब तक गाँवों की स्त्रियाँ शिक्षित नहीं होतीं तब तक गाँवों की दशा नहीं सुधर सकती!

फलतः लोक-सेवकों को चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते स्त्री-शिक्षा पर जोर देना चाहिये। लड़कियों को पढ़ाओ, लड़कियों को पढ़ाओ, इस ध्वनि से उन्हें वायुमण्डल को गुँजा देना चाहिये जिससे बहरे भी स्त्री-शिक्षा की पुकार सुन लें।

हर्ष की बात है कि देशवासियों का ध्यान स्त्रियों को पढ़ाने-लिखाने की ओर गया है। इस दिशा में पहले से काफी

तरक्की हो चुकी है; परन्तु तरक्की की गति सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। यद्यपि बड़े-बड़े शहरों में बीसियों कन्या-पाठशालाएँ हैं, जिनमें हजारों लड़कियाँ पढ़ती हैं। हिन्दुस्तान-भर की कन्या-पाठाशालाओं में पढ़ने वाली लड़कियों की तादाद तो बीस लाख तक होगी! लड़कियों के हाईस्कूल और कालेज भी हैं। इनमें भी हजारों ही लड़कियाँ पढ़ती हैं। पूना में प्रोफेसर कारवे का स्त्रियों का विश्व-विद्यालय है। प्रयाग में महिला विद्यापीठ है। लखनऊ में इसीवेला थौवर्न कालेज, और इलाहाबाद में क्रौस्थवेर गर्ल्स कालेज हैं। हजारों ही स्त्रियाँ देश भर में बी० ए०, एम० ए० पास कर चुकी हैं। कई वकालत और वैरिस्टरी भी कर रही हैं। स्त्री डाक्टरों की तादाद तो सैकड़ों में होगी। डिस्ट्रिक्ट बोर्डों, म्यूनिसिपल बोर्डों और प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिलों में भी स्त्री सदस्याएँ हैं। अनेक स्त्रियाँ आनरेरी मैजिस्ट्रेटी का काम भी कर रहीं हैं। फिर भी गाँवों में स्त्रियों की शिक्षा का बहुत कम प्रबन्ध है।

शहरों में ही नहीं गाँवों में भी कन्या-पाठशालाओं की माँग बढ़ रही है, डिस्ट्रिक्ट और म्यूनिसिपल बोर्ड इस माँग को पूरा करने में असमर्थ हैं। रुपये की ही नहीं अध्यापिकाओं की भी कमी है! यह कमी कैसे पूरी हो? क्या स्त्री-शिक्षा की गति रुक जायगी?

लोक-सेवकों को इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। सह-शिक्षा, बालक-बालिकाओं को साथ-साथ एक ही स्कूल में पढ़ाया जाना, इस विषम-समस्या का एकमात्र हल है।

इस सम्बन्ध में The Bihar and Orissa Co-operative Journal में मिस्टर एफ० एल० ब्राइन (F. L. Brayne) ने जो विचार प्रकट किये हैं, वे नीचे दिये जाते हैं—

"संसार भर में ऐसा एक भी देश नहीं, जो एक-एक गाँव में दो-दो पाठशालाओं का प्रबन्ध कर सके, एक लड़कों के लिए और एक लड़कियों के लिए। जिस गाँव में मैं जाता हूँ, उसी में एक तरफ मुझ से यह कहा जाता है कि मालगुजारी कम करो और उसी साँस में दूसरी तरफ यह कहा जाता है कि लड़कियों के लिए एक मदरसा और खोलो। अगर आप दो-दो स्कूल चाहते हैं तो दुगुना टैक्स भी दीजिये। जब कि हजारों-लाखों गाँवों में एक भी स्कूल नहीं, तब एक ही गाँव में दो स्कूल खोलना अन्याय है। यदि आप हर एक गाँव में एक कन्या-पाठशाला खोल भी दें तो उनके लिए अध्यापिकाओं का प्रबन्ध करने में कम-से-कम पचीस बरस लग जायेंगे। शहरों की स्त्रियाँ पढ़ाने के लिए गाँव जाना पसन्द नहीं करतीं और गाँवों में अभी अध्यापिकाएँ कहाँ? इसके अलावा जब हर एक गाँव में कन्या-पाठशाला हो जायगी, तब उसका निरीक्षण कैसा होगा? कितनी स्त्री निरीक्षकाएँ मिल सकेंगी जो ग्राम-पाठशालाओं के निरीक्षण के लिए गाँव-गाँव मारी-मारी फिरें। बिना निरीक्षण के पढ़ाई अच्छी कैसे हो सकेगी?

हार कर हमें इसी नतीजे पर पहुँचना पड़ता है कि स्त्रियों में साक्षरता का प्रचार करने का एकमात्र उपाय यही है कि छोटी-छोटी बालिकाओं को उनके भाइयों के साथ-साथ प्रारम्भिक बाल-पाठशालाओं में ही पढ़ने भेजा जाय। ये पाठशालाएँ ही दोनों की पाठशालाएँ हों। इन्हीं में लड़कियाँ भी लड़कों के साथ-साथ किताब पढ़ना, हिसाब करना और इबारत लिखना सीखें। रसोई पकाना, सीना-पिरोना, बुनना, कसीदा काढ़ना वगैरः घर के काम उन्हें अध्यापक की पत्नी या गाँव की कोई बुद्धिमती स्त्री अथवा उनके घर की स्त्रियाँ सिखा देंगी। बड़ी होने पर लड़कियाँ अपने मिडिल स्कूलों में चली जायँगी और लड़के अपने

मिडिल स्कूलों में। संसार के हर एक देश में यही किया जा रहा है। हिन्दुस्तान में भी कुछ जगह ऐसा ही किया जा रहा है। फिर देश भर में ऐसा ही क्यों न किया जाय ?

गाँवों के अध्यापकों की पत्नियों या उनकी रिश्तेदारों का घर के कार्यों की अध्यापिका का काम सिखाने के लिए जिले-जिले में एक गृह-प्रबन्ध-शास्त्र की पाठशाला खोल दीजिये! ये अध्यापिकाएँ गाँवों में बड़ी स्त्रियों को अक्षर-ज्ञान कराने, घर के काम-काज सिखाने और उन्हें तरह-तरह की शिक्षा देने का काम कर सकेंगी। लड़के-लड़कियां एक ही प्रारम्भिक पाठशाला में साथ-साथ पढ़ेंगी, तो अध्यापिकाएँ इन स्कूलों में पढ़ाने लगेंगी, और यह मानी हुई बात है कि बच्चों को स्त्रियाँ जितनी अच्छी तरह पढ़ा सकती हैं, उतनी अच्छी तरह पुरुष नहीं पढ़ा सकते।

स्त्री-शिक्षा के महत्व के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि "लड़कों की पढ़ाई तो हिन्दुस्तान में पचास बरस से हो रही है; परन्तु क्या उससे गांवों की दशा में कुछ सुधार हुआ है ? सच बात तो यह है कि आज-कल के गांव पचास बरस पहले के गाँवों से बहुत ज्यादा गन्दे हैं। न उनमें पहले जैसा सदाचार और शील है। जो काम मर्द न कर सके, उन कामों के करने का मौका औरतों को भी दीजिये! जब कभी मैं किसी आदमी से यह पूछता हूँ कि "आपके बालक गहने क्यों पहनते हैं ? उनके टीका क्यों नहीं लगा है ?" तो हमेशा मुझे यही जवाब मिलता है, "हम क्या करें ? घर की औरतें तो मानती ही नहीं ?"...मुझे पक्का विश्वास है कि हमारी उन्नति की धीमी गति का एक सब से बड़ा कारण यह है कि हम अभी तक अपनी स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करने में असमर्थ रहे हैं।"

परन्तु सह-शिक्षा की यह समस्या इतने ही से हल नहीं होती। जिस तरह एक-एक गाँव में दो-दो स्कूल नहीं हो सकते।

उसी तरह हर एक जिले में दो-दो कालेज भी नहीं हो सकते! फलतः जो माता-पिता अपनी लड़कियों को उच्च शिक्षा दिलाना चाहते हैं, बी० ए०, एम० ए० पास कराना चाहते हैं, उन्हें उन लड़कियों को कालेजों में लड़कों के साथ-साथ भेजना पड़ता है। छात्रालयों का प्रश्न भी बड़ा विकट है। लड़कियों के लिए अलग छात्रावास कहाँ से आवें? माँ-बाप अलग छात्रावास का भारी खर्च कहाँ से लावें?

इन्हीं कारणों से विवश होकर संसार भर के सब देश इसी परिणाम पर पहुँच रहे हैं कि लड़के-लड़कियों को साथ-साथ ही पढ़ाना चाहिए।

परन्तु क्या लड़के-लड़कियों का साथ-साथ पढ़ाना कोई बुरी बात है? क्या उससे कोई नैतिक हानियाँ होती हैं? प्रारम्भ में, इस प्रबन्ध से कुछ नैतिक व्यतिरेक अवश्य होंगे; परन्तु क्या ऐसी घटनाएँ अलग-अलग पढ़ने पर नहीं होतीं? क्या घरों में बन्द रहने पर ऐसी घटनाएँ कभी नहीं होतीं? इस प्रकार के व्यतिरेकों से इस नतीजे पर पहुँच जाना कि सह-शिक्षा की पद्धति ही बुरी है, तर्क-सम्मत नहीं कहा जा सकता। इस विषय के आचार्यों का कहना है कि सह-शिक्षा से स्त्री-पुरुषों को, लड़के-लड़कियों को नैतिक लाभ ही होगा, हानि नहीं। व्यवहार में भी, हम देखते हैं कि स्त्री-पुरुष सम्मानपूर्वक एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं, तो उससे सदैव बुरे परिणाम ही होते हों, ऐसी बात नहीं है।

नवम्बर १६३३ में धरमपुर में महिलाओं की ओर से माननीय श्रीयुत श्रीनिवास शास्त्री को अभिनन्दन-पत्र दिया गया था। उसका जवाब देते हुए उन्होंने कहा था कि, "आज-कल जहाँ देखो वहीं महिलाओं के क्लब खोले जा रहे हैं। इसका एक फैशन-सा हो गया है। किन्तु यह रास्ता ठीक नहीं है। जब तक स्त्रियाँ तथा पुरुष एक ही स्थान में समवेत होकर आमोद-

प्रमोद, हास्य-विनोद, सामाजिक-आलाप आदि में भाग नहीं लेंगे, तब तक वही असमानता बनी रहेगी, जो हमारे देश की प्रगति की महती बाधा है। अब वे दिन आ गये हैं, जब स्त्री-पुरुष का कार्य-क्षेत्र एक होना चाहिए। समाज का एक रूप होना आवश्यक है। इसलिए अब ऐसी संस्थाओं की आवश्यकता है, जहाँ स्त्रियाँ तथा पुरुष समान भाव से एकत्रित हो सकें।"

पढ़-लिख कर स्त्री क्या कर सकती है, इसका एक उदाहरण लीजिए। श्रीमती सीताबाई अनीगेरी बारह वर्ष की अवस्था में ही विधवा हो गई थी। उसी समय सन् १६०५ में उन्होंने प्रोफेसर कार्वे के विधवा-सदन में भरती होकर ओलम, बारह-खड़ी पढ़नी शुरू की, और १६२५ में उन्होंने भारतीय महिला विश्वविद्यालय की जी० ए० (बी० ए०) की उपाधि प्राप्त की, और निश्चय कर लिया कि स्त्रियों की शिक्षा के शुभ कार्य के लिए जीवन समर्पित कर दिया जाय। वे हिन्दू-विधवा-सदन-सङ्घ की आजीवन कार्यकर्त्री बन गईं। फलतः वे बम्बई में इस विश्वविद्यालय के स्कूल की अध्यक्षा बनाई गईं। इस स्कूल की उन्होंने इतनी उन्नति की कि वह हाईस्कूल हो गया और उसमें दो सौ पिचहत्तर लड़कियाँ पढ़ने लगीं। इसके बाद इन्होंने कैलीफोर्निया अमेरिका के विश्वविद्यालय में दो साल शिक्षा पाकर गृह-अर्थ-शास्त्र में बी० ए० की उपाधि प्राप्त की।

लोक-सेवक कन्या-पाठशालाएँ खोल कर, लड़कियों के माता-पिताओं को लड़कियों को अपने भाइयों के साथ प्रारम्भिक पाठशालाओं में पढ़ने भेजने के लिए प्रेरित करके, सह-शिक्षा के सम्बन्ध में लोक-मत तैयार करके इस ओर उपयोगी लोक-सेवा कर सकते हैं। वे कन्याओं के लिए भी बोर्डों से शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य करा सकते हैं।

लड़के-लड़कियों के लिए सङ्गीत-शिक्षा का, कम-से-कम

मिलकर प्रार्थना करने का प्रबन्ध करना भी लोक-सेवकों का कार्य है।

कन्या-पाठशाला के लिए तीन घण्टे प्रति दिन पढ़ाने वाला एक पुरुष अध्यापक पर्याप्त है। इस काम के लिए वे मनुष्य समय निकाल सकते हैं, जो किसी आफिस में या घर पर काम करते हों। और यदि, कोई ऐसी भारत-पुत्री और मिल जाय जो सीना-पिरोना या गृहस्थी के दूसरे काम सिखाने के लिए एक घण्टा प्रति-दिन अथवा कम-से-कम दो-तीन सप्ताह दे सके तो पाठशाला साधारण प्रयत्न का अच्छा नमूना बन सकती है।

गाँव, मुहल्ले अथवा शहर के सम्माननीय श्रीमानों और श्रीमतियों को समुचित अवसरों पर पाठशाला का निरीक्षण करने के लिए और उनमें से जो भाषण दे सकते हैं, उन्हें उपदेश देने के लिए निमन्त्रित करना चाहिए।

यदि उचित स्थान प्राप्त हो सके, तो एक ऐसी कन्या-पाठशाला को चलाने में, डेढ़ सौ रुपये वार्षिक व्यय होगा। स्त्री अध्यापिका रखने में अधिक व्यय होगा।

यद्यपि समय ने पलटा खाया है और भारत की उच्च जातियों के अधिकांश लोग स्त्री-शिक्षा के विरुद्ध नहीं रहे। परन्तु अभी दीन-हीन कृषकों, श्रमजीवियों, छोटे-छोटे दूकानदारों तथा दलित जातियों की लड़कियों के माता-पिता को इस बात के लिए राजी करना पड़ेगा कि वे अपनी कन्याओं को पढ़ाने के लिए पाठशालाओं में भेजें।

पाठशाला की कन्याओं में गुड़ियों, खिलौनों और पुस्तकों आदि का पारितोषिक बाँटने से उनके लिए शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक खेल-तमाशों का प्रबन्ध करने तथा उन्हें यहाँ-वहाँ खुले मैदानों की सैर कराने से उनका उत्साह बढ़ेगा तथा स्थानीय बालिकाओं का ध्यान पाठशाला की ओर जायगा।

कलकत्ते की सरोज नलिनी दत्त ऐसोशिएशन स्त्रियों की सेवा करने वाली एक संस्था है। इसकी स्थापना १६२५ में हुई थी; परन्तु इस समय बङ्गाल और आसाम में इसकी कोई पाँच सौ शाखाएँ हैं। संस्था की ओर से नर्सरी स्कूल, औद्योगिक स्कूल विधवा-सदन आदि खुले हुए हैं। चार संगठन कर्त्ता बङ्गाल के गाँवों में घूमते हैं। कृषि, उद्योग-धन्धों और, शिक्षा, स्वच्छता, स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध में व्याख्यान कराये जाते हैं। बच्चों को पढ़ाने का प्रबन्ध किया जाता है। स्त्रियों के घरों में किये गये कामों को बेचने का प्रबन्ध किया जाता है। कन्या पाठशालाएँ तथा पुस्तकालय खोले जाते हैं। परदे के विरुद्ध प्रचार किया जाता है। बङ्ग-लक्ष्मी नामका मासिक पत्र भी इस संस्था की ओर से निकलता है। जनवरी सन् १६३४ में इस संस्था का नवम वार्षिकोत्सव हुआ था। इस अवसर पर अनेक वक्ताओं ने कहा कि इस संस्था का उद्देश है कि प्रत्येक कसबों में और हर गाँव में महिला-समतियाँ सङ्गठित की ज.यँ।

गाँवों की महिला-समितियों का संगठन तथा सञ्चालन करने के लिए महिला कार्यकर्त्रियों को शिक्षा दी जाती है। घरों में व्यावहारिक व्यवसाय सिखाये जाते हैं, और गाँवों की स्त्रियों को स्वास्थ्य, स्वच्छता-सम्बन्धी नवीन नियम बताये और समझाये जाते हैं। गुरुगाँव जिले की गृह-प्रबन्ध-शास्त्र की पाठशाला में अध्यापिकाओं को ६ महीने खाना बनाने, सीने बुनने, कपड़े काटने, ब्योंतने, कपड़ों की मरम्मत करने, कपड़े धोने, खिलौने बनाने, आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा करने, स्वास्थ्य सुधारने, महामारियों से बचने, सफाई और आरोग्यता के नियमों के अनुसार रहने, बच्चों की देख-भाल करने, गाने, खेलने, जादू की लालटैनों से तस्वीरें दिखाने, व्याख्यान देने, और मिल कर काम करने तथा ऐसी ही अन्य बातों की शिक्षा

दी जाती है। शिक्षाकाल में उन्हें पर्याप्त छात्र-वृत्ति भी दी जाती है।

पुस्तकालय

पुस्तकालय शिक्षा-प्रचार के अति उत्तम साधन हैं। इसलिए प्रत्येक लोक-सेवक का कर्त्तव्य है कि वह गाँव-गाँव में और मुहल्ले-मुहल्ले में पुस्तकालय स्थापित करने की कोशिश करे। विद्यार्थियों को चाहिए कि वे अपनी छुट्टियों के लिए कुछ अच्छी पुस्तकें पहले ही से इकट्ठी कर लिया करें। जब अपने गाँव जायँ, तब इन पुस्तकों को ले जाया करें और गाँव वालों को पढ़ने के लिए दे आया करें।

प्रायः दूकानदार दूकानों पर, दूसरे कम पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुष अपने-अपने घरों पर जो पुस्तकें पढ़ते हैं, वे कुत्सित और बुरे विचारों की होती हैं, जैसे—सास-बहू का झगड़ा, छैल छबीली भटियारी, साढ़े तीन यार का किस्सा, किस्सा तोता मैना इत्यादि। इनके लिए सुपाठ्य, सरल और मनोरञ्जक अच्छी पुस्तकें छपाना इन पुस्तकों को इकट्ठी करके इन लोगों के पास पहुँचाना और इस प्रकार उनकी रुचि को परिमार्जित करना लोक-सेवा का काम है।

चलते फिरते पुस्तकालयों की स्थापना अत्यन्त आवश्यक है। लोक-सेवक पुस्तकालय तथा वाचनालय खुलवा सकते हैं। खुले हुए पुस्तकालयों के लिए पुस्तकें तथा वाचनालयों के लिए पत्र इकट्ठे कर सकते हैं, और पब्लिक से चन्दा तथा सरकार से इमदाद दिला सकते हैं।

शिक्षा-सम्बन्धी अर्वाचीन प्रयोगों की जानकारी हासिल करने के लिए लोक-सेवकों को A. B. Vardoren द्वारा सम्पादित Fourteen Experiments in Rural Education नामक पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए।

खेलों की महिमा

अभी हमारे देश के लोक सेवकों ने खेलों की महिमा को नहीं समझ पाया है। वे यह नहीं जानते कि जे० राय कुमारप्पा एम० ए०, पी० एच० डी० के शब्दों में, खेलों से "बालकों को अपने शरीर पर शासन करने की शक्ति बढ़ती है, उनके स्नायु-तन्तु तथा उनकी पाचनेन्द्रियाँ सुदृढ़ होती हैं, उनका रक्त पवित्र होता है तथा उनका हृदय और फेफड़े मजबूत होते हैं। उनकी हरकतों में स्थिरता आ जाती है। उन्हें अपनी देशकालावस्था का ज्ञान हो जाता है और उनमें बीमारियों के कीटाणुओं को मार भगाने की शक्ति आ जाती है।" संक्षेप में, खेलों द्वारा बच्चे स्वास्थ्य, शक्ति, धैर्य सहिष्णु-शक्ति, और सौन्दर्य प्राप्त करते हैं। परन्तु खेलों के लाभ शरीर तक ही सीमित नहीं है। बच्चे के मस्तिष्क के विकास के लिए व्यायाम की आवश्यकता होती है। वह मानसिक व्यायाम भी बच्चों को खेलों से मिल जाता है। वास्तव में खेलों से मस्तिष्क का जितना अच्छा विकास होता है उतना स्कूल के काम के चरखे से नहीं होता। इसी तरह खेलों से बच्चों की नैतिक प्रकृति की गहरी-से-गहरी प्रवृत्तियाँ परितृप्त होती हैं। इन्हीं कारणों से शिक्षा-शास्त्रियों और दर्शनाचार्यों ने सदा से खेलों की महिमा का बखान किया है। प्लेटो का कहना है कि शिक्षा का प्रारम्भ बच्चों के खेलों के उचित पथ-प्रदर्शन से होना चाहिये !

"परन्तु खेलों के लाभ मानसिक और शारीरिक ही नहीं होते। उनसे नैतिक और सामाजिक लाभ भी होते हैं। समाज की क्षमता को बढ़ाने में खेलों का स्थान नगण्य नहीं कहा जा सकता। बच्चों का सच्चा संसार खेल ही है। वे सदा खेलों की ही भाषा में सोचते हैं और खेल के नियमानुसार ही काम करते हैं। खेलों द्वारा तथा खेल-मैदानों में साथियों द्वारा ही वे अनुभव प्राप्त करते

हैं तथा अपनी आदतें बनाते हैं। इसलिए बच्चों पर खेलों का जो नैतिक और सामाजिक प्रभाव पड़ता है, वह अमिट होता है।"

"खेलों द्वारा बच्चे दूसरों के अधिकारों को स्वीकार करने लगते हैं तथा आत्म-संयम की शिक्षा पाते हैं। खेलों से ही वे व्यवस्था, आज्ञा-पालन, आत्म-त्याग और अनुशासन की शिक्षा-ग्रहण करते हैं। खेलों में ही उनकी आत्म-व्यञ्जना होती है और खेलों द्वारा ही उनमें भक्ति का, सच्चाई से साथ देने का, भाव उदय होता है। उनका परस्पर मिल कर काम करने का सहज ज्ञान भी खेलों द्वारा ही विकसित होता है। खेल-मैदानों की एक विशेषता यह भी है कि उनमें भिन्न-भिन्न जातियों के, तथा गरीबों और अमीरों सभी के बच्चे बराबरी की हैसियत से मिलते हैं। खेलों से मैत्री तथा सहकारिता का भाव भी उदय होता है।"

The Field Madras नाम के एक पत्र में उपर्युक्त लेखक ने लिखा था कि—"यदि स्कूलों में खेल का प्रबन्ध अधिक किया जाय, तो उससे अध्यापकों और विद्यार्थियों दोनों की, दिन भर की मानसिक थकान में बहुत कुछ कमी आ जायगी। यदि स्कूलों का समय बढ़ा कर उनमें खेलों का प्रबन्ध कर दिया जाय, तो मेरा विश्वास है कि इससे बहुत लाभ होगा। ऐसा करने से बालक गलियों के अनुचित प्रलोभनों और बुरे प्रभावों से बच जायेंगे। उनका स्वास्थ्य सुधरेगा और बीमारी के कारण होने वाली गैरहाजिरी कम हो जायगी। इसके साथ ही स्कूल का जीवन अधिक सुखमय हो जायगा जिसके फल स्वरूप लड़के स्वयं स्कूल में पढ़ना पसन्द करेंगे।

दूसरे देशों ने खेलों की महिमा को भली भाँति जान लिया है। नैपोलियन पर विजय पाने वाले ड्यूक आफ वैलिङ्गटन का कहना था कि मैंने वाटरलू की लड़ाई एटन के खेल-मैदान में

ही जीती थी। यही कारण है कि इङ्गलैण्ड में खेलों का इतना प्रचार है। वहाँ के शिक्षा-विभाग ने स्कूलों में खेलों को प्रोत्साहन देने के लिए सीधा और विशेष उद्योग किया है। लन्दन काउण्टी कौंसिल छुट्टी के दिनों में या शाम के वक्त खेलों का सङ्गठन करने वाले लोगों को अपने स्कूल का खेल-मैदान खेलने के लिए दे देती है।

अमेरिका में तो कई सहस्र, लगभग सभी नगरों में खेलने के मैदान बना दिये गये हैं, जिससे बालक अधिक श्रेष्ठ, सुरक्षित और सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें। वहाँ खेल-मैदानों की माँग दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। अकेले शिकागो ने अपने यहाँ खेलों के मैदान बनाने में कई करोड़ रुपये खर्च कर दिए हैं। राष्ट्रीय खेल-महासभाओं के बीसियों अधिवेशन बड़ी धूम-धाम और सफलता के साथ हो चुके हैं। न्यूयार्क नगर ने एक सहस्र से अधिक अध्यापक केवल इसलिए नौकर रक्खे हैं कि वे गर्मियों में खेल के मैदानों के सदुपयोग का और विश्राम सम्बन्धी अन्य मुख्य-मुख्य कार्यों का सङ्गठन करें। एक सुप्रसिद्ध अमेरिकन समाचार-पत्र का कहना है कि "निस्सन्देह देश में खेल के मैदानों की माँग बढ़ी है और अधिकारियों ने खेल मैदान कायम करना मंजूर कर लिया है।" आज-कल सरकारी बजटों में खेल-मैदानों की मद का भी उतना ही महत्व है जितना कि पार्कों की मद का और खेल-मैदानों की आवश्यकता उतनी ही अधिक मानी जाती है जितनी कि स्कूलों की। बाल्टीमोर में खेल-मैदानों का प्रबन्ध करने वाली एक कमेटी है। इस कमेटी ने खेल-मैदानों के प्रबन्ध करने वालों की शिक्षा का एक पाठ्य-क्रम नियत किया और पहले ही साल पिचासी युवतियों ने उस पाठ्य-क्रम को पढ़ना शुरू कर दिया।

गाँवों और नगरों, दोनों में ही, खेल-मैदानों की आवश्यकता

है। बिना खेल के लड़के और युवक बुरी सोहबत में फँस जाते हैं, बुरे कामों की ओर झुक जाते हैं। इसलिए जो लोग अपने यहाँ खेल-मैदान नहीं कायम करते, उन्हें जेल, पुलिस की चौकियाँ, अदालत और अस्पताल कायम करने पड़ते हैं।

बम्बई में कुछ युवकों ने खेलों-द्वारा ही बालकों में शिक्षा का प्राचार किया। वास्तव में बालकों को गलियों में जुआ वगैरः खेलों से बचाने और कुकर्मों में फँसने से बचाने के लिए उन्हें अच्छे खेलों में लगाना अनिवार्यतः आवश्यक है। जब ये बालक खेलते-खेलते थक जायँ तब अगर उन्हें एक अच्छी कहानी कहने वाला कहानी सुनावे, तो उनके झुण्ड-के-झुण्ड प्रसन्नतापूर्वक उन कहानियों को सुनेंगे। खेलों-द्वारा बालकों में सम्मान, स्वाभिमान, सत्यता, आज्ञा-पालन, दूसरों के स्वत्वों के प्रति आदर-भाव, निर्बलों के हितों का ध्यान, सहयोगिता के लाभ और अधिकारियों के प्रति सम्मान आदि गुण सहज ही में आ जायँगे।

गाँव में खेलों का संघठन करो। बालकों को शासनित खेल खेलना सिखाओ। शहरों में म्यूनिसिपैलिटी से खेल के मैदान बनवा कर वहाँ भी यही काम करो।

१६३२ में आयर्लैण्ड में इस बात का घनघोर आन्दोलन उठ-खड़ा हुआ कि कस्बों में सरकार की ओर से व्यायाम और खेलों के लिए पार्क बनवाये जायँ, जिनमें सब लोग खेल सकें, और इन खेल-मैदानों के प्रबन्ध के लिए एक कमेटी भी कायम कर दी जाय। इस आन्दोलन में वहाँ बहुत सफलता भी मिली।

फिलैडिलफिया अमेरिका में डाक्टर चारलोटी डैवन पेण्टी नाम की एक महिला ने दिसम्बर १६३३ में अपनी एक सौ नौवीं वर्ष गाँठ मनाई। पत्र प्रतिनिधियों के पूछने पर उसने कहा कि, मुझे अभी मरने की फुरसत नहीं। हर वक्त काम में लगे

रहना दीर्घायु प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय है।"

नवम्बर १९३३ में इलाहाबाद म्यूनिसिपल एजूकेशन कमेटी के प्रबन्ध विद्यार्थियों ने तरह-तरह के व्यायाम और खेल दिखाए। म्यूनिसिपैलिटी ने इस काम में एक सहस्र रुपया व्यय किया। डाक्टर कैलाशनाथ काटजू ने इन कार्यों की प्रशंसा करते हुए कहा कि, "यूरोपीय देशों में मोहल्ले-मोहल्ले में इस तरह की व्यायामशालाएँ होती हैं!"

स्त्रियाँ और लड़कियों के लिए भी खेलों की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी पुरुषों और लड़कों के लिए। यूरोप और अमेरिका में तो अब स्त्रियाँ लगभग वे सभी खेल खेलती हैं जो पुरुष खेलते हैं। हाकी, क्रिकेट, पोलो, गोल्फ, टैनिस, फुटबौल सभी खेल स्त्रियाँ खेलने लगी हैं। गटूया रोडेसिया में सन् १९३३ में स्त्रियों का घूसेबाजी का दंगल होने वाला था। हर्ष की बात है कि हमारे देश में भी लोक-सेवियों का ध्यान इस ओर गया है। बारह सितम्बर १९३३ को प्रयाग महिला-व्यायाम-मन्दिर में बालिकाओं और युवतियों ने व्यायाम के खेल दिखाये। समाचार पत्रों में लड़कियों के व्यायामों के समाचार व चित्र इन दिनों आये दिन प्रकाशित होते रहते हैं। लोक-सेवियों को चाहिए कि वे लोकमत निर्माण करके इस सुप्रवृत्ति को बढ़ावें और बालक-बालिका दोनों के खेलों और खेल-मैदानों का संगठन करें।

अपने नगर की सेवा

"मैं ऐसे मनुष्य से मिलना पसन्द करता हूँ, जो जिस स्थान में रहता है उसका अभिमान करता है। मैं ऐसे मनुष्य के दर्शन करना पसन्द करता हूँ, जो इस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करता है कि जिस स्थान में रहता है उसके निवासी उसके जीवन पर गर्व कर सकें।" मनुष्य जाति के एक महान पुरुष 'अब्राहीम लिंकन' अमेरिका के उपर्युक्त वाक्य प्रत्येक नगर-निवासी लोक-सेवी को अपने नगर को सेवा के लिये प्रेरित करेंगे। सेवाधर्म की दृष्टि से निकृष्टतम व्यक्ति वह है, जो अपने सिवा दूसरों के हिताहित की तनिक भी परवाह नहीं करता, जो पेट और परिवार के दायरे से आगे नहीं बढ़ता। वह पहले प्रकार के नराधम से कुछ कम निकृष्ट है; परन्तु सेवा-धर्म का श्रीगणेश उसी समय हो सकता है जब कि मनुष्य पेट और परिवार के दायरे से आगे बढ़ कर कम-से-कम अपने नगर और ग्राम की सेवा करना प्रारम्भ करे। इसलिए जो व्यक्ति नगर में रहते हुए भी नगर की सेवा की ओर ध्यान नहीं देता, वह अपने धर्म का पालन नहीं करता। अतः अपने नगर की सेवा करना प्रत्येक लोक-सेवी का प्रारम्भिक धर्म हो जाता है।

बहुत सम्भव है कि पहले पहल जिस व्यक्ति के हृदय में सेवा-धर्म का अङ्कुर उदय हो, वह अपने को अकेला पावे। परन्तु ऐसे अकेलेपन से घबड़ाने को आवश्यकता नहीं। सेवा-धर्म की एक बहुत बड़ी खूबी यह भी है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक दशा में सर्वत्र उसे एकाकी भी कर सकता है। और लोक-सेवी कार्यों और संस्थाओं का इतिहास हमें यह बताता है कि इन कार्यों का सूत्रपात और संस्थाओं की स्थापना तथा उनका सञ्चालन किसी एक ही व्यक्ति ने किया है।

लाहौर के फोरमैन क्रिश्चियन कालेज के भूतपूर्व प्रधानाध्यक्ष फ्लेपिंग साहब ने अपनी "Suggestions for Social Helpfulness" नामक पुस्तक में एक व्यक्ति के करने योग्य निम्नलिखित कार्यक्रम दिया है—

(१) अपने घर को और उसके आसपास के स्थान को सुन्दर और स्वच्छ बना कर आदर्श उपस्थित कर दो।

(२) अपने मुहल्ला या वार्ड निवासियों का ध्यान वार्ड-हितकारिणी सभा स्थापित करने की ओर दिलाओ। एक रुपया प्रति वर्ष या इससे कुछ न्यूनाधिक फीस रक्खो। स्कूल की भूमि को उन्नत करना, सार्वजनिक पुस्तकालय या वाचनालय स्थापित करना, पाठशाला के कमरों में उत्तम-उत्तम चित्र टाँगना, वार्ड के किसी भवन या पाठशाला के भवन में शिक्षाप्रद व्याख्यानों का प्रबन्ध करना, इत्यादि उपयोगी कार्य अपने हाथ में ले लो।

(३) कागज उठा कर, पत्थर हटा कर या इसी प्रकार के अन्य कार्यों-द्वारा गलियाँ साफ करने और साफ रखने के लिए बालकों की एक सभा बनाओ।

(४) सार्वजनिक स्थानों पर मल-मूत्रादि करने के विरुद्ध प्रायः आन्दोलन करो या ऐसा करने वालों की रिपोर्ट करो।

५—हरियाली दिवस मनाने के सुपरिणाम, अपने मुहल्ले

वालों को समझाओ। हरियाली दिवस क्या है, और पश्चिमी देशों को सुन्दर बनाने में हरियाली दिवसों का कितना भाग है? इस विषय पर लेख लिखवाओ। अपने मुहल्ले में ही हरियाली-दिवस मनवा कर घर-घर में हरे पौधे लगवाओ।

६—पेड़ और अंगूर की बेलें लगाओ। लोगों को, कुछ काल पहले जो पेड़ लगाया गया था, उसकी फैलती हुई शाखाओं पर तथा इसी तरह से लगाये हुए पौधे की वृद्धि पर गर्व करना सिखाओ। लोगों को जिस तरह के पौधे की जरूरत है, उनके लिए वैसे पौधों का इन्तजाम करके इस कार्य के प्रसार की सफलता में सहायता दो। चाहो तो पौधों के दाम ले लो।

७—अपने वार्ड और मुहल्ले में पानी, नाली, मोरी आदि के समुचित प्रबन्ध के लिये आन्दोलन करो।

८—अपनी गली में सुन्दर लैम्पें, पथ-सूचक-चिह्न और फव्वारे इत्यादि बनवाओ।

९—गली में बच्चों (लड़के-लड़कियों) के खेलने के लिए खेल-मैदान, स्त्रियों के लिए छोटे-छोटे पार्क बनवाने के लिए कोशिश करो।

१०—गली के कूड़े-करकट को गली भर में फैल कर गली को गन्दा करने से बचाने के लिए ऐसे कनस्टर वगैरः जगह-जगह रखवा दो जिनमें लोग घरों का कूड़ा गली में न डाल कर आसानी से उनमें डाल सकें।

११—नगर-कमेटियों को कर्त्तव्य-पालन करने के लिए प्रेरित करते रहो।

१२—इस बात के लिए आन्दोलन करो कि गाँव में अब से बेहतर स्कूल कायम हों और ये स्कूल किसी एक जाति या एक धर्म के लोगों के न हो कर सब जातियों और सब धर्मों के लोगों के लिए हों।

१३—जो लोग अपने घर और अपनी जगह को सबसे ज्यादा साफ रक्खें, उन्हें इनाम देकर सफाई के लिए लोगों का उत्साह बढ़ाओ।

१४—बालकों को पहिले बीज बाँट दो। बीजों में जो बालक अपने यहाँ सब से अच्छा फूल बाग लगवावे उसे इनाम दो। अमेरिका के गृहोद्यान-समाज (Home Gardening Association) ने एक साल में चार लाख छब्बीस हजार छः सौ ग्यारह अधन्नी पैकटें मोल ले कर बाँटी।

१५—स्कूलों और पाठशालाओं में हरियाली और फूल बागों को प्रविष्ट करो।

१६—अपने मुहल्ले अथवा वार्ड की स्वच्छता का दिन मनाओ। इस काम में पानी, गलियों और नालियों को साफ करने, पथादि-सूचक चिह्नों पर फिर से स्याही फेरने के लिए, खिड़कियों को धोने और गलियों तथा घरों का कूड़ा-करकट हटवाने के लिए नगर की म्यूनिसिपैलिटी के स्वास्थ्य-विभाग से, सफाई के कमिश्नरों से, स्कूल के अधिकारियों और नगर-निवासियों से सहायता लेने की तथा उनके पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता पड़ेगी।

इस कार्य-क्रम को बहुत कुछ उन्नत किया जा सकता है, परन्तु इस कार्य-क्रम से भी यह भली भाँति विदित हो जाता है कि सेवा करने की इच्छा हो, तो किसी भी लोक-सेवक के लिए सेवा-कार्यों की, सेवा के क्षेत्र की और सेवा करने के अवसरों की कमी नहीं है। नगर की सेवा के लिए यह अनिवार्यतः आवश्यकीय है कि लोक-सेवी अपने नगर के टाउन एरिया, नटीफाइड एरिया—

म्यूनिसिपल बोर्ड

की तरफ ध्यान दे क्योंकि ये संस्थाएँ वास्तव में लोक-हित

कारिणी संस्थाएँ हैं। प्रोफेसर शिवराम एन फेरवानी एम० ए० का कहना है कि जिसको मनुष्य जाति की भलाई का कुछ भी ख्याल है वह म्यूनिसिपैलिटी के सुप्रबन्ध की ओर से उदासीन नहीं रह सकता। म्यूनिसिपैलिटियाँ क्या हैं? क्या वे मनुष्य-जाति की सेवा के लिए विशद और सुसङ्गठित संस्थाएँ नहीं हैं? सोच कर देखिये तो, म्यूनिसिपैलिटी को मनुष्यों की सेवा करने का कितना अवसर मिलता है? म्यूनिसिपैलिटी शहर को फूल-बाग भी बना सकती है और कब्रिस्तान भी।

महात्मा गान्धी का कहना

है कि, "अगर हम अपने शहर का इन्तजाम नहीं कर सकते, अगर हमारी गलियाँ साफ नहीं रहतीं, अगर हमारे घरों की हालत खस्ता है, और हमारी सड़कें खराब, अगर हम शासन के कार्य के लिए निःस्वार्थ नागरिकों की सेवा नहीं प्राप्त कर सकते और जिनके हाथ में हमारे शहर का प्रबन्ध है, वे स्वार्थी या लापरवाह हैं, तो हम स्वराज्य के विस्तृत अधिकार माँगने का दावा कैसे कर सकते हैं? राष्ट्रीय जीवन का रास्ता नगरों में हो कर जाता है।" आगे चल कर महात्माजी कहते हैं—"प्लेग ने हिन्दुस्तान में घर कर लिया है। हैजा तो सदा से हमारा मेहमान बना हुआ है। मलेरिया प्रति वर्ष लाखों की भेंट ले जाता है; परन्तु संसार के दूसरे सभी देशों में से प्लेग मार के भगा दी गई है। ग्लासगो ने तो ज्यों ही प्लेग वहाँ आई त्यों ही उसे मार भगाया। जौनवर्ग में प्लेग सिर्फ एक बार ही हो सकी। वहाँ की म्यूनिसिपैलिटी ने भगीरथ प्रयत्न करके उसे एक महीने के अन्दर ही मिटा दिया। लेकिन हम प्लेग का कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। अपनी इस दुर्दशा के लिए हम सरकार को दोषी नहीं ठहरा सकते। वास्तव में, अपने शहर

के कुप्रबन्ध और उसमें बीमारियों के निवास का दोष हम अपनी गरीबी के मत्थे भी नहीं मढ़ सकते। अपने शहर को बीमारियों और कुप्रबन्ध से बचाने के लिए हम जो अभिप्राय काम में लाना चाहें, उनका प्रयोग करने से हमें कोई नहीं रोक सकता।"

वोटरों की शिक्षा

म्यूनिसिपैलिटी के मेम्बरों का चुनाव वोटर करते हैं। इसलिए उसके सुप्रबन्ध और कुप्रबन्ध का सारा दारमदार वोटरों के ही ऊपर है। वे चाहें तो सुयोग्य, लोक-सेवा-व्रती और स्वार्थहीन तथा परोपकारपरायण लोगों को वोट देकर म्यूनिसिपैलिटी को आदर्श म्यूनिसिपैलिटी बना कर शहर की अधिकांश शिकायतों और तकलीफों को दूर कर के उसे पृथ्वी पर स्वर्ग बना सकते हैं और चाहें तो घोर स्वार्थी, सर्वथा अयोग्य और चरित्रहीन तथा सार्वजनिक सेवा की भावना से रहित सदस्यों को भेज कर शहर को रौरव नरक बना सकते हैं।

शहर की गलियाँ साफ हों, सड़कें ठीक बनी हों, गली-गली में रोशनी का काफ़ी और अच्छा इन्तज़ाम हो, हर मुहल्ले में जनाने पार्क और बच्चों के लिए खेलने के मैदान हों, हरियाली तथा फूलबाग हों, हर मुहल्ले में अच्छे मदरसे हों, जिनमें सब के लड़के-लड़कियाँ उत्तम शिक्षा पा सकें, रात्रि-पाठशाला हो जिनमें वैश्यों को अक्षर-ज्ञान कराया जा सके, शुद्ध और निर्मल पानी का पर्याप्त प्रबन्ध हो, नालियाँ साफ हों, कहीं कूड़ा-करकट और दुर्गन्धि न हो, सार्वजनिक सफाई और आरोग्य-संरक्षण शास्त्र के नियमों के प्रचार और प्रसार-द्वारा प्लेग, हैजा, शीतला इत्यादि महामारियाँ मार भगाई गई हों, जो बीमार पड़ जायँ, उनके इलाज के लिए अच्छे वैद्यों, डाक्टरों,

औषधालयों और अस्पतालों का काफी इन्तजाम हो, सब लोगों के पढ़ने के लिए मुहल्ले-मुहल्ले में वाचनालय और पुस्तकालय हों, खाने की चीजों, हलवाइयों की दूकानों की देख-भाल होती हो जिससे उनमें मिलावट न हो और वे स्वास्थ्य के लिए हानि न पहुँचा सकें, निर्दोष और बिना मिलावट का घी तथा बच्चों के लिए ऐसे ही दूध का पर्याप्त प्रबन्ध हो, तो देखने वालों के मुँह से सहसा यही निकल पड़ेगा कि अगर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है।

अब दूसरी, और अधिकांश शहरों में इस समय विद्यमान चित्र की कल्पना कीजिये। सड़कें टूटी-फूटी हैं, उनमें काफी बड़े-बड़े और गहरे-गहरे गड्ढे हैं, सवारियों में चलना दुश्वार है। गर्भवती स्त्री ऐसी सड़कों पर इक्कों में बैठ कर जायँ, तो गर्भ गिरने का डर रहे। और कौन कह सकता है कि कितनी माताओं का इस प्रकार गर्भपात और समय से पहले प्रसव नहीं होता होगा, गलियाँ गन्दी हों उनमें जगह-जगह कूड़ा-करकट पड़ा हुआ हो, इस कूड़े पर और नालियों में बच्चों का मल खुला पड़ा हो, इस गन्दगी की दुर्गन्धि से नाक सड़ती हो; निर्दोष मनोविनोद का, शुद्ध वायु-सेवन का कोई प्रबन्ध न होने के कारण स्त्रियों का जीवन नीरस और दुःखमय हो, वे क्षय आदि तरह-तरह की बीमारियों की शिकार हो रही हों, अच्छी दाइयों का और बाल-हितकारी तथा मातृ-हितकारी केन्द्रों (Child and maternity welfare centres) का कोई प्रबन्ध न होने के कारण, जच्चाएँ और बच्चे प्रसवकाल में ही तथा जन्म लेते ही मर जाते हों, अच्छा दूध न मिलने के कारण बच्चे कच्चे फलों की तरह मुरझा कर विनष्ट हो जाते हों; घी, पूड़ी-मिठाई वगैरः चीजों का कोई नियन्त्रण न होने के कारण लोगों को खाने-पीने की सख्त तकलीफ हो, उनके स्वास्थ्य को काफी हानि पहुँचती हो, खेल-मैदान

न होने के कारण बच्चों का विकास और उनकी वृद्धि मारी जाती हो, वयस्कों के लिए वाचनालयों-पुस्तकालयों, गश्ती-पुस्तकालयों आदि का कोई समुचित प्रबन्ध न होने से लोगों का मानसिक विकास रुका हुआ हो और उनके विश्राम का समय उन्हें बुरी बातें सोचने, बुरी आदतें सीखने और कुमार्ग में पड़ने को प्रेरित करता हो, लड़के-लड़कियों और वयस्कों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध न हो, आये दिन बीमारियाँ घेरे रहती हों, प्लेग से, हैजे से, शीतला से तथा दूसरी महामारियों से घर-घर में त्राहि-त्राहि पड़ी हुई हो, गलियों में अंधेरा हो, पानी की तकलीफ हो, सुबह टहलने जाइये तो जाते वक्त धूल फाँकनी पड़ती हो, टहल कर आइये तो मैले और कूड़े की खुली गाड़ियों के शुभ-दर्शन और उनकी सुगन्धि मिले, शाम को घर से बाहर निकलिये, तो धुएँ से दम घुटता हो और आँखें फूटी जाती हों तो फिर नरक में और बाकी क्या रहा? अगर यह नरक नहीं है, तो फिर नरक क्या है? ब्रिटेन, यूरुप और अमेरिका के सुप्रबन्धित नगरों को देखिये और अपने यहाँ के शहरों से उनका मुक़ाबिला कीजिये तो एक जगह स्वर्ग दिखाई देगा, दूसरी जगह नरक। सचमुच, जीते-जी, स्वर्ग के सुख भोगना और नरक में सड़ना, स्वयं हमारे अपने हाथ में है! हम वोटरों को उनका कर्त्तव्य बता कर तथा उन्हें अपने उस पवित्र-उत्तरदायित्व का पालन करने के लिए प्रेरित करके अपने शहर को स्वर्ग बना सकते हैं और अपने इस कर्त्तव्य से उदासीन होने के कारण इस समय नारकीय दुःख भोग रहे हैं।

वोटरों को हमें क्या सिखाना है?

वोटरों को हमें दो बातें सिखानी हैं, एक तो यह कि वे अपनी वोट का महत्व समझें। यह समझें कि उनकी एक वोट

पर लाखों का भला-बुरा निर्भर है। अगर वे गलत उम्मेद्वार को वोट देते हैं, तो लाखों की बुराई करने का महापाप अपने सर पर लेते हैं। और, अगर वे अच्छे उम्मेद्वार को वोट देकर मेम्बर बनाते हैं, तो वे अपने कर्त्तव्य का पालन करके भारी पुण्य के भागी बनते हैं! दूसरी बात जो हमें वोटरों को सिखानी है, वह यह है कि उनका कर्त्तव्य वोट देकर ही समाप्त नहीं हो जाता! चुनाव के बाद भी उन्हें अपने मैम्बरों के कार्यों और म्यूनिसिपैलिटी की कार्यवाही पर पूरी-पूरी निगरानी रखनी चाहिये।

पहली बात के लिए

वोटरों के दिलों में उनको वोट के महत्व को भली भाँति बैठा दो। उनको यह बता दो कि हजारों जच्चाओं और बच्चों के मरने तथा तरह-तरह की बीमारियों और प्लेग, हैजा, शीतलादि महामारियों से प्रतिवर्ष हजारों ही के काल-कवलित होने की हत्या उन्हें लगती है यदि वे ठीक उम्मेद्वार को, लोक-सेवी सुयोग्य और निस्वार्थी तथा लोक-हित-परायण उम्मेद्वार को वोट नहीं देते! वोटरों को उनके दायित्व की इतनी गम्भीरता और पवित्रता समझाने के लिए जितने उद्योग और परिश्रम की आवश्यकता है, उतना सैकड़ों सेवा-व्रती रात-दिन परिश्रम करके भी नहीं कर सकते। इस प्रकार यहाँ सेवा-पथ के प्रत्येक पथिक को सहज ही सेवा का सुविशाल क्षेत्र मिल जाता है। कुछ बातें तो ऐसी हैं जो सर्व सम्मति से, संसार भर के सभी मनुष्यों की सम्मति से वोटरों को बताई जानी चाहिए; जैसे यह कि रिश्वत लेकर, वोट देना, महान पातक है। वोट बेचना बेटी बेचने से भी बढ़ कर सहस्र गुना बड़ा पाप है। लगाव-दबाव में आकर जाति-बिरादरी के नाम पर वोट देना भी इसी प्रकार जघन्य पाप है। यदि सेवा-व्रती

वोटरों को इन पापों से बचा दें, तो वे अपने नगर की सेवा के तीन-चौथाई से भी अधिक भाग को पूरा कर लेंगे।

उम्मेदवारों की पहचान

अगर वोटर लगाव-दबाव, जाति-बिरादरी के लालची, स्वार्थ और लालच से बच कर वोट दें तो उनके सामने यह सवाल खड़ा हो जाता है कि वे यह कैसे पहचानें कि कौन उम्मेदवार सुयोग्य, स्वार्थशून्य और सेवाव्रती है, और कौन स्वार्थी? अचार्य शिवराम एन० फेरवानी का कहना है कि अगर ऐसे उम्मेदवार को वोट दिया जाय जो नीचे लिखी या इसी प्रकार की प्रतिज्ञा करे, तो अच्छा होगा—

(१) मैं अपने नगर और स्वदेश की सेवा का सब से अधिक ध्यान रखूँगा और उनकी सेवा में अपनी सर्वोत्तम शक्तियाँ लगाऊँगा।

(२) नगर और देश की सेवा करते हुए मैं अपनी स्वार्थ-साधना करने की कोशिश नहीं करूँगा।

(३) सब हिन्दुस्तानियों को मैं अपना भाई समझूँगा और जाति तथा धर्म का ख्याल न करके सब की समान सेवा करूँगा।

(४) मैं भारत-सेवक-समिति या लोक-सेवक-मण्डल के सदस्यों की तरह अधिक-से-अधिक सौ-दो सौ मासिक में ही अपना जीवन-निर्वाह करके सन्तुष्ट हूँगा। अपने तथा अपने परिवार के लिए इससे अधिक रुपया कमाने में अपनी शक्तियों का अपव्यय नहीं करूँगा।

(५) मैं पवित्र व्यक्तिगत जीवन व्यतीत करूँगा।

(६) मैं किसी के साथ कोई व्यक्तिगत झगड़ा नहीं करूँगा।

(७) मैं नागरिकों की तथा नगर की भलाई करने के शास्त्र और कला का अध्ययन करूँगा। अधिक-से-अधिक उत्साह के साथ नगर के हितों की निगरानी करके उनका सम्पादन करूँगा। और कभी कोई ऐसा काम नहीं करूँगा जो सब नागरिकों के अधिक-से-अधिक हितों के विरुद्ध हो।

आचार्य का यह कहना भी ठीक है कि यह भी देख लेना चाहिये कि उम्मेदवार नगर की सेवा और भलाई करने के भाव से प्रेरित होकर मेम्बर होना चाहता है, या अपने सम्मान और प्रभाव को बढ़ाने की भावना से। हमारी राय में उम्मेदवारों का चुनाव करते वक्त वोटरों को यह मालूम कर लेना चाहिए कि उसने अपने जीवन का कोई हिस्सा मेम्बरी के लिए खड़े होने से पहले अपने नगर, देश या समाज की सेवा में लगाया है या नहीं? क्या उसने कभी परोपकार की भावना से प्रेरित होकर अपना स्वार्थ-त्याग किया है? क्या उसने कभी सेवाभाव से प्रेरित होकर कष्ट सहे हैं? साधारणतः जो उम्मेदवार पहले से ही अपने देश, नगर या समाज की सेवा करते रहे हों, जिन्होंने पर-हित-निरत होकर अपने स्वार्थ को त्यागा हो, दूसरों के लिए कष्ट उठाये हों, उनको ही वोट दी जानी चाहिए। उनके अभाव में ऐसे लोगों को वोट देना चाहिये जिनकी बाबत में लोक-सेवी और स्वार्थ त्यागी नागरिक यह जिम्मेदारी लें कि वह मेम्बर होकर अपना स्वार्थ न साधेगा, सच्चाई से अपने नगर की सेवा करने का प्रयत्न करेगा।

परन्तु, उम्मेदवारों का पूर्व चरित्र जानना ही काफी नहीं है, उनके विचार और कार्यक्रम पर ध्यान देना बहुत अधिक आवश्यक है। लोक-सेवी और स्वार्थ-त्यागी उम्मेदवारों तथा ऐसे उम्मेदवारों को जिनकी जमानत के लोक-सेवी और स्वार्थ-त्यागी सज्जन या लोक-सेवी संस्थाएँ हामी हों, वोट देना चाहिए

तथा जिनका निजी कार्य-क्रम या उस संस्था अथवा पार्टी का कार्य-क्रम जिसकी ओर से वे खड़े हुए हों, अधिक लोक-हितकारी हो। प्रतिनिधि संस्थाओं में साधारणतः एक व्यक्ति विशेष कुछ नहीं कर सकता। वहाँ तो बहुमत से ही काम होता है। इस-लिए व्यक्तियों के मुकाबिले में लोक-सेवी संस्थाओं या पार्टियों की अब तक की सेवाओं तथा भावी कार्य-क्रम को देख कर वोट दी जानी चाहिए जो ऐसी पार्टी, लोक-सेवी संस्था की ओर से खड़े हों जो पहले से ही देश, नगर तथा समाज की सेवा में लगी हुई हो और जिनका चुनाव के बाद का कार्य-क्रम सब से अधिक नगर-हितकर हो।

दूसरी बात के लिए

यह आवश्यक है कि वोटर नगर की सेवा के काम में अधिक व्यवस्थित और टिकाऊ दिलचस्पी लें। उनकी दिल-चस्पी वोट देने के वाद ही समाप्त न हो जाय। बल्कि वे बराबर म्यूनिसिपैलिटी की कार्यवाही और मेम्बरों के कार्यों में दिलचस्पी लेते रहें। इसके लिए सामाजिक केन्द्र स्थापित होने चाहिए। प्रत्येक वार्ड के वोटरों की सभा का स्थापित किया जाना अनिवार्यतः आवश्यक है, परन्तु बेहतर यह होगा कि प्रत्येक मुहल्ले के वोटरों को सङ्गठित किया जाय। प्रति इतवार को इनकी कार्यकारिणी की बैठक हुआ करे, जिसमें वोटर इस बात पर विचार करें कि उनके मुहल्ले की तकलीफें कहाँ तक दूर हुईं, उनकी जरूरतें कितनी पूरी हुईं? जो तकलीफें दूर नहीं हुईं और जो जरूरतें पूरी नहीं हुईं उनको पूरा कैसे कराया जाय? मुहल्ले की जिस गली में रोशनी का, नल का इन्तजाम नहीं है, उसमें नल लगने और रोशनी का इन्त-जाम होने में क्यों देर हो रही है? नालियों, गलियों और संडासों की सफाई में गड़बड़ी क्यों है? इत्यादि। मुहल्ला कमेटी

अपनी इस तरह की तय की हुई शिकायतें और जरूरतें वार्ड कमेटी के पास पहुँचावें, और वार्ड कमेटी उसे वार्ड के मेम्बर के जरिये रफा करावे। ये सभाएँ बोर्ड के स्कूलों में की जा सकती हैं। यहीं मुहल्ले अथवा वार्ड के सब वोटरों और निवासियों की सभाएँ करके व्याख्यानों द्वारा उन्हें उनके नागरिक कर्तव्यों का, वोट के दायित्व तथा महत्व का बोध कराया जा सकता है, यहाँ उन्हें सार्वजनिक और वैयक्तिक सफाई तथा आरोग्य-संरक्षण-शास्त्र के नियमों का ज्ञान कराया जा सकता है।

इन सामाजिक केन्द्रों से ही नगर-सेवा का भाव नागरिकों के हृदयों में घर कर सकता है और इन्हीं केन्द्रों के बल पर नगर-सेवा के शुभ कार्य को पूरा किया जा सकता है। इस सामाजिक-केन्द्र के उपाय का आविष्कार अमेरिका ने किया है। वहाँ के एक विद्वान का कहना है कि "जब नागरिक संगठित हो जायेंगे, तभी हमारे नगरों में लोक-हित की रक्षा हो सकती है।" विलियम फोवैल (William Fowell) का कहना है कि अगर लोक-तन्त्र का अस्तित्व कायम रहना है और उसके जरिये सुशासन की स्थापना होती है, तो यह तभी हो सकता है जब लोक-तन्त्र के भिन्न-भिन्न अवयव एक ही शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों की तरह सुसङ्गठित हो जायँ। वोटरों का प्रत्यक्ष सङ्गठन होना चाहिए, जिसके जरिए वे एक दूसरे से मिल-भेंट सकें, बात-चीत कर सकें, परस्पर विचार-परिवर्त्तन कर सकें। और उनके हाथ में एक ऐसा यन्त्र (वार्ड-मुहल्ला कमेटी आदि) होना चाहिए जिसके जरिए वे आपस में कारगर और फल-प्रद सहयोग कर सकें।

अगर कोई लोक-सेवी नगर के प्रत्येक स्कूल में आस-पास के वोटरों की कमेटी संगठित करके प्रति इतिवार को कमेटी की

बैठक और वोटरों की आम सभाएँ कराने का प्रबन्ध करा सके, तो वह वोटरों की शिक्षा और उनके सङ्गठन का नगर के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जाने वाला काम कर जायगा। उस हालत में वोटर पाँच साल में एक बार वोट देकर ही अपने कर्त्तव्य की इति-श्री नहीं समझ बैठेंगे बल्कि अपने मुहल्ले और नगर की भलाई के कामों, बातों तथा विवादों में वास्तविक तथा क्रियात्मक भाग लेने लगेंगे। लोकमत सुशिक्षित तथा सुसङ्गठित हो जायगा। जिसके फलस्वरूप म्यूनिसिपैलिटी का प्रबन्ध बहुत हद तक सुधर जायगा। ये स्कूल वयस्कों की शिक्षा के लिए भी काम में लाये जा सकते हैं और इन सामाजिक केन्द्रों के जरिए गश्ती पुस्तकालय उपयोगी तथा मनोरञ्जक साहित्य भी घर-घर बाँट सकते हैं। जो सेवा-व्रती सज्जन इस सुन्दर आयोजना का विस्तृत अध्ययन करना चाहें वे Edward ward की "The Social centre" नामक पुस्तक पढ़ें, जो Municipal National League नाम की Series में Appleton ने प्रकाशित की है।

इस प्रकार सेवा-व्रती लोक-सेवकों का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह नगर के सब मुहल्लों का संगठन करके वार्ड का संगठन करें और सब वार्डों का संगठन करके शहर-भर का संगठन कर दें। इस कार्य का प्रारम्भ इस प्रकार किया जा सकता है कि, या तो जिस मुहल्ले का आप संगठन करना चाहते हैं, उसमें स्वयं जाकर वस जायँ और सेवा की दृष्टि से उसकी माप-तौल (Survay), मर्दुमशुमारी आदि करें, या जिस मुहल्ले में बसते हों उसी से कार्य का प्रारम्भ करें। पड़ोस की माप-तौल, और मर्दुमशुमारी का काम समाप्त करके उसकी सेवा के कार्य में लग जाओ और मुहल्ले के निवासियों को, मुहल्ले को सुखी और सुन्दर बनाने में सहायता देने के लिये निमन्त्रित करो। वार्ड

या मुहल्लों के वोटरों की मीटिङ्गों में म्यूनिसिपैलिटी के महीने भर के काम की रिपोर्ट ज्यामित की मूर्त्तियों (Graphs) द्वारा दिखाओ और उन पर विचार तथा विवाद को उत्तेजित करो। परिणाम यह होगा कि धीरे-धीरे समझदार नागरिकों का उनके म्यूनिसिपिल-भवन में क्या हो रहा है, इसका कुछ अनुमान हो जायगा। म्यूनिसिपैलिटी के बजट को इन मीटिङ्गों में लोगों को समझाओ, जिससे उसको अधिक सूक्ष्म बनाया जा सके। पब्लिक की गाढ़ी कमाई का उन्हीं की भलाई के लिए अधिक से अधिक अच्छा उपयोग हो सके। अगर वोटरों की सभाएँ हर मुहल्लों में प्रति इतवार को हुआ करें, तो बहुत से नागरिकों में अपनी भलाई या अपने नगर के प्रति समुचित गर्व का, सामाजिक कामों में दिलचस्पी और सार्वजनिक सेवा का जो भाव सुषुप्त है, वह जाग्रत हो जाय और इस भाव के जग जाने से नगर की सेवा के शुभकार्य में भारी सहायता मिलेगी। शहर की भलाई के काम के लिए बहुत-से स्वयं-सेवक मिल जायँगे। हर एक नागरिक यह समझने लगेगा कि अगर शहर का इन्तजाम ठीक नहीं है, तो इसका दोष बहुत हद तक उसके ऊ पर भी है। हर एक पढ़े-लिखे व्यक्ति को हर डाक्टर, हर वकील, हर उपदेशक और हर शिक्षक को अपनी आत्मा से यह प्रश्न पूछना चाहिए कि अपने नगर की भलाई के लिए मुझे जितना करना चाहिए क्या मैं उतना कर रहा हूँ? अगर सुशिक्षित नगर-निवासी अपने पेट और परिवार की चिन्ता में ही निमग्न रहें, तो शहर का सुधार कदापि नहीं हो सकता। प्रत्येक नागरिक का पवित्र कर्त्तव्य है कि वह शहर के प्रबन्ध में उचित भाग ले, अपनी सामर्थ्य भर नगर की भलाई के कामों में योग दे। जिन लोगों ने शहर की शिक्षा-संस्कृति संबंधी साधनों से सब से अधिक लाभ उठाया है, उनका यानी शिक्षित समाज का यह कर्त्तव्य और भी बढ़ जाता है।

नगर सुधार का कार्य-क्रम

ब्रूरे (Brure) के अनुसार नगर-सुधार का व्यापक कार्य-क्रम इस प्रकार होना चाहिए—

वैयक्तिक और सामाजिक आरोग्यता।

समाज की भलाई के सब पर न्यायानुमोदित टैक्स।

उद्देश्यपूर्ण शिक्षा।

जमींदारों, मालिकों और दूकानदारों द्वारा होने वाली ठगी से रक्षा।

जानोमाल की हानि से रक्षा।

माकूल किराये पर मकानों का काफी प्रबन्ध।

साफ-सुथरी, सुचारू रूप से पटी हुई गलियाँ, जिनमें रोशनी का पूरा-पूरा प्रबन्ध हो।

काफी और कारगर लोकोपयोगी सेवा और लोक-सेवक।

विश्राम, मनोविनोद तथा खेल-कूद का काफी प्रबन्ध।

मृत्यु, बीमारी, बेकारी आदि दुर्भाग्यों से होने वाले अपाहिजपने की रोक।

म्यूनिसिपैलिटी के कामों, कार्य-क्रमों और जो कार्य पूरे कर दिये गये हों, उनका प्रकाशन म्यूनिसिपैलिटी के स्वास्थ्य-विभाग के जरिये से नगर की जनता को व्याख्यानों, प्रदर्शनों और प्रदर्शनीय वस्तुओं द्वारा बीमारी के मूल कारण बता कर उस विभाग को स्वास्थ्य-शिक्षा का स्रोत बना दो। जच्चाओं और बच्चों की सेवा-शुश्रूषा कर सकने वाली सुशिक्षित दाइयाँ लोक-सेविकाओं का काम करें। जिनके बाल-बच्चा होने वाला है, उनको यानी माताओं को वे बता दें कि प्रसव-काल में वे किस प्रकार सफाई से रहें और आरोग्य-संरक्षण के लिए किन नियमों का पालन करें और जब तक उनके बच्चे मदरसे में भरती न हो जायँ, तब तक उनके स्वास्थ्य की निगरानी रख कर उनके स्वास्थ्य की दशा की

रिपोर्ट किस प्रकार देती रहें। स्कूलों में इस बात का प्रबन्ध हो कि सुयोग्य डाक्टर बालकों के स्वास्थ्य की परीक्षा करते रहें और जिनके स्वास्थ्य में कोई कमी या गड़बड़ी हो, उनकी रिपोर्ट करते रहें। लोक-सेवी सज्जन लोगों के रहन-सहन की दशा की जाँच करके न सिर्फ उनके घरों और मुहल्लों की ही सफाई करावें, परन्तु उन्हें उदाहरण द्वारा यह बतादें कि गरीबी में भी किस प्रकार कम से कम शिष्टता के साथ रहा जा सकता है।

जैसे वोटर होंगे वैसी ही म्यूनिसिपैलिटी होगी। जैसे नागरिक होंगे वैसा ही नगर होगा। नागरिक अच्छे होंगे, तो नगर भी अच्छा होगा और नगर अच्छा होगा तो नागरिकों की भी श्रेष्ठता बढ़ेगी। जहाँ के नागरिक स्वार्थी होते हैं, वहाँ की म्यूनिसिपैलिटी भ्रष्ट होती है। जहाँ के नागरिक अपने कर्त्तव्य से उदासीन होते हैं, वहाँ की म्यूनिसिपैलिटी भी रद्दी होती है। नगर और नागरिक, लोभी गुरू लालची चेला की तरह एक दूसरे को नरक में ढकेलें, इससे यह अच्छा है कि वे एक-दूसरे की उन्नति और बेहतरी में सहायक हों। नागरिकों का कर्त्तव्य है कि वे अपने मुहल्ले और नगर की उन्नति की ओर सदैव ध्यान देते रहें। वे हफ्ते में कम से कम कुछ घण्टे बैठ कर तो यह सोच लिया करें कि अपनी, अपने पड़ौसियों की, अपने मुहल्ले और शहर की भलाई कैसे कर सकते हैं? अपने यहाँ के सब लोगों को मनसा, वाचा, कर्मणा इस ओर लाने के लिए कैसे प्रेरित कर सकते हैं? वोटर हर वार्ड में प्रति सप्ताह अपनी सभाएँ करके यह सोचें कि वे अपने वार्ड को सुन्दर, स्वस्थ और सुखी किस प्रकार बना सकते हैं, उसकी लज्जाजनक बातों को, बीमारियों को, उदासी को, अज्ञान और दरिद्रता को, और गन्दगी को कैसे दूर कर सकते हैं? जो उम्मेदवार चुनाव में असफल रहे हों, वे अपनी सेवाओं द्वारा यह सिद्ध कर दें कि

उनका उद्देश अपना गौरव और प्रभाव बढ़ाना अथवा स्वार्थ-सिद्धि नहीं था, केवल सेवा करना था। यही इस बात की कसौटी है कि उनमें सचमुच सेवा-भाव था। कोई गलियाँ साफ करे और करवावे, कोई पेड़-पौधे लगावे और लगवावे, कोई बीमारों की सेवा-शुश्रूषा करे, कोई दीन-दुखियों को सान्त्वना दे, जिस काम में स्वार्थ न हो, और जिससे जो हो सके वह करे।

दूसरे तरीके जिनसे सेवा-व्रती नागरिकों में सेवा-भाव और नगर की भलाई के कार्यों के प्रति दिलचस्पी पैदा कर सकते हैं—नियमित रूप से भिन्न-भिन्न दिवस मनाना; जैसे—कभी हरियाली दिवस तो कभी सफाई-दिवस। कभी स्वास्थ्य-सप्ताह तो कभी बच्चा-जच्चा-सप्ताह। कभी शिक्षा-सप्ताह तो कभी नगर-हित-सप्ताह। हर एक शहर में नागरिक प्रदर्शनियाँ करके भी बहुत कुछ किया जा सकता है। इन प्रदर्शनियों में नगर की दशा सम्बन्धी आँकड़े इकट्ठे करके दिखाये जा सकते हैं जिनसे लोगों की आँखें खुलें और वे नगर-सेवा की ओर झुकें। सार्वजनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी कामों में विद्यार्थियों से बहुत कुछ सहायता ली जा सकती है।

शहर भर के डाक्टरों को शहर के स्वास्थ्य की रक्षा के काम की ओर, इसी तरह शहर-भर के इञ्जीनियरों को पब्लिक वर्क के कामों की देख-भाल की ओर प्रवृत्त करो। और जिन लोगों की सेवा की जाय उनकी राय माँगो। शहर की मृत्यु-संख्या आदि का खूब प्रकाशन करो। अभी हमारे यहाँ की म्यूनिसिपैलिटियों ने प्रकाशन के महत्व को नहीं समझा है। अधिकतर म्यूनिसिपैलिटियाँ, तो प्रकाशन के काम को बिल्कुल बेकार ही समझती हैं, जो दो-एक फीसदी रिपोर्टें प्रकाशित भी करती हैं, उनकी रिपोर्टें ऐसी नहीं है होती, जिनके पढ़ने में लोगों का मन लगे, या जिन्हें पढ़ कर उनसे कुछ लाभ हो, या कुछ स्फूर्त्ति

मिले। नागरिकों पर रुपये का टैक्स तो सरकार और म्यूनिसिपैलिटी लगाती है; परन्तु सेवा-व्रती उन पर शक्तियों और समय का टैक्स लगावें, जिससे हर एक नागरिक को नगर-सुधार के काम में कुछ न कुछ शक्ति और समय खर्च करना पड़े।

उपर्युक्त आदर्श से यदि हमारी वर्त्तमान म्यूनिसिपैलिटियों की तुलना की जाय, तो सेवा-पथ के पथिकों को आप ही आप नगर-सेवा की ओर अपने दायित्व का पता चल जायगा। संयुक्तप्रान्त की म्यूनिसिपैलिटियों के १६३१-३२ के कार्य के संबन्ध में जो सरकारी प्रस्ताव प्रकाशित हुआ है उसमें साफ-साफ शब्दों में यह कहा गया है कि म्यूनिसिपैलिटियों का प्रारम्भिक कर्त्तव्य यह है कि वे नगर के जीवन को जितना सुखमय बना सकें, बनावें। परन्तु यहाँ लोगों को आपसी राग-द्वेष, व्यक्तिगत दलबन्दी और लड़ाई-झगड़ों से ही फुरसत नहीं, सरकार का कहना है कि जब तक वोटर अपनी वोट का ठीक इस्तेमाल करना नही सीखेंगे, तब तक उन्नति की आशा करना दुराशा मात्र है। सोचने की बात है कि जब इङ्गलैन्ड और अमेरिका की म्यूनिसिपैलिटियाँ शहरों की मृत्यु इतनी घटा सकती हैं कि वह गाँवों की मृत्यु-संख्या से कम हो जाय, तो फिर हमारे यहाँ की म्यूनिसिपैलिटियाँ सफाई तथा चिकित्सा के प्रबन्ध द्वारा यही बात क्यों नहीं कर सकतीं?

कुछ प्रयत्नों के उदाहरण

प्रयाग म्यूनिसिपल बोर्ड ने नवम्बर १६३३ में विद्यार्थियों द्वारा शारीरिक खेलों का मनोरञ्जक प्रदर्शन करवाया और अच्छा खेल दिखाने वाले विद्यार्थियों को तमगे बाँटे। इसी महीने में लुधियाना से म्यूनिसिपैलिटी के अपव्यय का एक

ज्वलन्त उदाहरण मिला। यहाँ की म्यूनिसिपैलिटी ने महन्त मथुराप्रसाद से चुङ्गी के छः पाई वसूल करने के लिए मुकद्दमा चलाया जिसमें दो सौ रुपये म्यूनिसिपैलिटी के और तीन सौ महन्त के बरबाद हुए। नौ जनवरी १६३४ का दिल्ली का समाचार है कि वहाँ के म्यूनिसिपल बोर्ड ने हरफूलसिंह की बस्ती की दशा सुधार कर उसे मनुष्यों के रहने योग्य बनाने का निश्चय किया है।

हरिजनों की सेवा

महापुरुषों की सूक्तियाँ

जाति पाँति पूछे नहीं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई॥

—कबीर

"जब तक एक भी मनुष्य नीच है तब तक कोई मनुष्य पूर्णतया श्रेष्ठ नहीं हो सकता।"

—मार्गरैट फुलर (Margaret Fuller)

"हिन्दुओ, अस्पृश्यता के कलङ्क को दूर करो, अन्यथा यह पाप तुम्हें खा जायगा।"

—महात्मा गाँधी

"हिन्दू धर्म पर यह अस्पृश्यता बड़ा भारी कलङ्क है। अगर यह बनी रही तो हिन्दू धर्म की खैर नहीं। ईश्वर ने अब तक हमारे साथ बड़े धीरज से काम लिया है; परन्तु, एक हद के बाद, ईश्वर का भी धीरज छूट सकता है। और वह हिन्दू समाज में, मनुष्य मनुष्य के साथ जो अत्याचार कर रहा है, उसे अब अधिक बरदाश्त नहीं करेगा।"

—महात्मा गाँधी

"भारत के नव युवको! मैं तुम्हारे लिए एक सम्पत्ति छोड़ जाऊँगा। तुम अपने दीन-दुखी, निर्बल-निराश्रित तथा पीड़ित

और पद-दलित भाइयों के सुख के लिए अपना जीवन समर्पित कर दो।"
—विवेकानन्द

"हिन्दू जाति को ऐसे वीर पुरुषों की आवश्यकता है जो अपने हृदय में अपने कार्य की पवित्रता पर पूर्ण विश्वास रखते हों और दरिद्र तथा विपद्ग्रस्त भाइयों को मुक्त करने के लिए चाहे जो कर डालने का असीम तथा अदम्य साहस रखते हों। हिन्दू समाज को आज ऐसे पुरुष-पुङ्गवों की आवश्यकता है जिन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य यही बना रखा है कि वे अपने नीच जाति के तथा अछूत कहलाने वाले भाइयों को उनकी गिरी हुई दशा से मुक्त करें, सब प्रकार से उनकी मदद करें और सर्वत्र सद्भाव उत्पन्न करें।"
—विवेकानन्द

"जब तक संसार में कीट-पतङ्गादि की मुक्ति नहीं हो जायगी तब तक मैं अपनी मुक्ति नहीं चाहता। —महात्मा बुद्ध

महापुरुषों की उपर्युक्त सूक्तियों से पाठकों का ध्यान सहज ही उस अनीति की ओर खिंच जाता है जो हिन्दू-जाति अपने ही भाइयों के साथ कर रही है। इस अन्याय की उत्पत्ति कैसे हुई, जिस समय उसकी उत्पत्ति हुई उस समय की परिस्थितियाँ क्या थीं हमें इन बातों पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। हमारे लिये तो इतना ही पर्याप्त है कि हम इस समय इस पाप की गुरुता को समझने लगे हैं और उससे मुक्त होने के प्रयत्न में लग गये हैं।

सुशिक्षित हिन्दू-समाज उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम अर्ध भाग से ही यह अनुभव करने लगा था कि अछूतपन बहुत बुरी चीज़ है और वह दूर होना चाहिये। सामाजिक परिषदों के प्रस्ताव और इन परिषदों के प्रधानों के भाषण इस बात के साक्षी हैं। बीसवीं शताब्दी में अछूतपन के विरुद्ध आन्दोलन जोर पकड़ने लगा। जी० ए० नेटसन, मद्रास के

यहाँ से प्रकाशित The Depressed Classes (दलित जातियाँ) नामक अंग्रेजी पुस्तक इस बात का प्रमाण है।

हरिजनों के साथ अन्याय

निस्संदेह अछूत कही जाने वाली जातियों के साथ जो अन्याय तथा अत्याचार किया जाता है वह सर्वथा असह्य है। मदरास में तो यह अत्याचार अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच गया है। वहाँ तो पञ्चम आदि अछूत जातियों को निकृष्ट से निकृष्ट-पशु से भी बदतर समझा जाता है। वे जमीन पर नहीं रह सकते, पेड़ों पर रहते हैं। उन्हें सड़कों पर चलने का अधिकार नहीं है। रास्ते में यदि उन्हें कोई द्विज मिल जाय तो उन्हें एक निश्चित फासले पर ही रुक जाना पड़ता है क्योंकि यह समझा जाता है कि किसी अछूत के निश्चित दूरी से कम दूरी पर आजाने से द्विज अपवित्र हो जाता है। सन् १६३३ में गुजरात के खेड़ा जिले के रूपरखा गाँव के एक ईसाई हरिजन ने सार्वजनिक कुएँ से पानी भर लिया था इसलिए सवर्ण हिन्दुओं ने नाराज होकर उसकी पकी हुई खेती जलाकर भस्म करदी।

संयुक्तप्रान्त में यद्यपि अछूतपन इतना भीषण नहीं है, फिर भी अछूत कही जाने वाली जातियों के साथ किया जाने वाला व्यवहार अत्यन्त निन्दनीय है, पग-पग पर उनका अपमान किया जाता है! जिन कुओं से द्विज पानी भरते हैं उन कुओं पर अछूत नहीं जा सकते। फलस्वरूप बहुत-सी जगह अछूत कहे जाने वाले भाइयों को पानी का घोर कष्ट होता है। देहातों में और शहरों में भी, उनकी बस्तियाँ द्विजों की बस्तियों से अलग, बहुत ही गन्दी और बुरी जगहों पर होती हैं। भंगी कन्धे पर लाठी रख ले और कोई चमारिन बिछुए पहन ले तो उन्हें ब्राह्मण ठाकुरों की गालियाँ और मार खानी पड़ती है। मन्दिरों में जाने की उनके लिए मनाही है। उन्हें द्विजों के बराबर

बैठालने की तो बात ही क्या है, उनका स्पर्श तक अपवित्र समझा जाता है।

हर्ष की बात

है कि समय की गति से ये बातें धीरे-धीरे दूर होती जारही हैं। मेलों-ठेलों, रेलों और लौरियों में तथा शहरों में तो अब अछूतपन का भाव बहुत हद तक विलीन ही हो गया है, देहातों में भी अब वह बात नहीं रही जो पहले थी।

शुभ चिह्न

तो ये हैं कि अछूत कहे जाने वाले भाई स्वयं ही जग गये हैं। वे अपनी सामाजिक कुरीतियों को दूर करने लगे हैं और अपने अधिकारों के लिए अड़ने लगे हैं। चमार कहे जाने वाले हरिजन भाइयों ने इस दशा में विशेष उन्नति की है। उनकी आर्थिक दशा सुधर रही है। अपनी शिक्षा की ओर उनका ध्यान है और सबसे बढ़कर बात यह है कि उनमें दिन-दूना और रात चौगुना बढ़ने वाला जात्याभिमान है। वे अपने को जाटव कहते हैं और द्विज मानते हैं! द्विजों में भी श्रेष्ठतम द्विज होने का दावा करते हैं और अपनी जाति की जागृति और उसके सङ्गठन के शुभ-कार्य में दत्तचित्त हैं। अमृतसर के वाल्मीक (भङ्गी) भाइयों ने एक मन्दिर में प्रवेश करने के लिए नवम्बर १६३३ में रामतीर्थ-आन्दोलन किया। सैकड़ों ने स्वजाति की अधिकार-रक्षा के लिए जेल के कष्ट सहे और अन्त में उनकी तपस्या फल लाई। उन्हें वचन दिया गया कि रामतीर्थ का मन्दिर उनके लिए खुल जायगा। उनकी इच्छा बहुत हद तक पूरी हुई! जनवरी १६३४ में दिल्ली के हरिजन अपने स्त्री-बच्चों समेत सैकड़ों की तादाद में म्यूनिसिपल-अधिकारियों के पास पहुँचे और उनसे अपनी हरिफूलसिंह की बस्ती को सुधरवाने

की माँग पूरी कराने का वचन लेकर घर लौटे। सवर्ण-कुल-महिलाओं ने इस जुलूस का नेतृत्व किया था।

सरकार ने भी हरिजन भाइयों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करने की ओर ध्यान दिया है। डिस्ट्रिक्ट बोर्डों और म्यूनिसिपल बोर्डों में हरिजनों की शिक्षा के लिए ग्राण्ट दी जाने लगी है। व्यवस्थापिका-सभाओं में उनको विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया है।

अछूतपन के विरुद्ध धर्म-युद्ध

महात्मा गान्धी ने तो अछूतपन के विरुद्ध धर्म-युद्ध ही छेड़ दिया है। कोई बीस वर्ष से वे अछूतपन को मिटाने में लगे हुए हैं। एक बाल्मीक (भंगी) लड़की को उन्होंने अपनी दत्तक पुत्री बना लिया है। सत्याग्रह-आश्रम साबरमती में उन्होंने द्विजों को स्वयं हरिजनों का कार्य करने—पाखाना स्वयं साफ करने का कार्य सिखा कर अपने आदर्श द्वारा यह दिखा दिया है कि काम कोई भी बुरा नहीं है। कोई पन्द्रह वर्ष से उन्होंने अछूतपन के मिटाने के पुण्य कार्य को कांग्रेस के कार्य-क्रम का—राष्ट्र-रचना के काम का—मुख्य अंग बना लिया है। सन् १९३२ से उन्होंने अछूतपन को मिटाने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी है। १९३३ के मई मास में उन्होंने अछूतपन के विरुद्ध इक्कीस दिन का अनशन किया जिससे समस्त हिन्दू-समाज में घनघोर खल-बली मच गई। अछूतपन की जड़ हिल गई और इक्कीस दिन तक हिन्दू-समाज की सर्वोत्तम शक्ति अछूतपन को मिटाने में लग गई। नवम्बर १९३३ से महात्माजी ने अछूतपन को मिटाने तथा हरिजनों की सेवा के लिए हिन्दुस्तान भर में दौरा करना शुरू कर दिया। काटोल की एक सभा में भाषण करते हुए महात्मा जी ने कहा कि अस्पृश्यता की बुराई को दूर करने के लिए मैं भारत भर का दौरा कर रहा हूँ। या तो अस्पृश्यता का

ही नाश होगा या इसके हटाने के प्रयत्न में मैं ही मरूँगा। इसी दिन शाम को नागपुर में पच्चीस हजार की सार्वजनिक सभा में आपने घोषणा की कि अस्पृश्यता निवारण मेरा धर्म है इसके लिए मैं अपनी जान दे दूंगा और कहा कि—"यह धन जो मैं खड़ा हुआ इकट्ठा कर रहा हूँ इस बात का प्रमाण है कि सवर्ण हिन्दुओं के हृदयों में अछूतों के प्रति कितना प्रेम और सहानुभूति है। यदि आप लोग सड़क, कुएँ, आदि सार्वजनिक स्थान अछूतों के लिए खोल देंगे तो अपना कर्त्तव्य बहुत कुछ पूरा कर लेंगे।' मद्रास के दौरे में राजामन्द्री में भाषण देते हुए महात्मा जी ने कहा कि—सवर्ण हिन्दुओं को हरिजनों की सेवा करके अपना ऋण चुकाना चाहिए। इन दिनों महात्माजी को एक ही धुन सवार थी और वह धुन थी हरिजन-सेवा की। वे हरिजनों से कहते थे कि, 'माँस, मदिरा और गंदगी छोड़कर पवित्र बन जाओ, फिर देखें कि किसमें शक्ति है जो तुम्हें तुम्हारे मनुष्योचित अधिकारों से वञ्चित रक्खे ?' स्त्रियों से कहते, 'तुम पर्दे की गुलामी से मुक्त हो तो अपने भाई-बहिनों को भी अछूतपन की दासता से मुक्त करो।' मद्रास के छात्रों को आपने उपदेश दिया कि—'अपने चरित्र शुद्ध करो, झाड़ू टोकरा सम्हालो और शुद्ध भावना से हरिजनों में पहुँच कर उनमें स्वच्छता और प्रकाश फैलाओ।' पेरम्बूर के मजदूरों को आपने चेतावनी दी कि, हरिजन हो या सवर्ण, मजदूर-मजदूर में क्या भेद ? न्याय करो न्याय मिलेगा।' जार्ज टाउन मद्रास के व्यापारियों से आपने कहा कि, 'धर्म में अस्पृश्यता रूपी जो अधर्म घुस गया है कि उसे निकालने में सहायता देकर आत्म शुद्धि करो। आन्ध्र के हरिजन कार्य-कर्त्ताओं को सभा में भाषण देते हुए आप ने कहा कि 'इस कार्य में पवित्रतम त्याग की आवश्यकता है। यह कार्य मूलतः धार्मिक कार्य है। इसके द्वारा करोड़ों का हृदय

बदलता है। इसमें असत्य, स्वार्थ और दम्भ के लिए तनिक भी स्थान नहीं है। ऊँच-नीच और छूआ-छूत के भावों ने हिन्दू-धर्म में जड़ पकड़ ली है और सदियों से हिन्दू-समाज पर आसुरी साम्राज्य स्थापित कर रक्खा है। इस बुरे भाव का नाश सर्वथा निष्कलंक चरित्र और शुद्ध उपायों से ही हो सकता है। सभी हिन्दू ऋषि मुनियों ने हमें अपने वचन और कर्म से यही सिखाया है कि धर्म की रक्षा और शुद्धि तपस्या, अर्थात् सम्पूर्ण आत्म शुद्धि से ही हो सकती है।

सुधारकों को उपदेश

देते हुए आपने कहा कि 'आपका स्पष्ट कर्त्तव्य है कि आप अपने विरोधियों के प्रति पूर्ण सहिष्णुता दिखावें और उनकी बात बहुत ध्यान और धीरज से सुनें। आपको विरोधियों के प्रति कभी क्रोध अथवा वैर-भाव नहीं रखना चाहिए। प्रेम से उनके हृदयों पर विजय प्राप्त करना चाहिए। हमारा उद्देश्य है कि हम अपने विरोधियों को भी अपने विचारों के अनुकूल और इस शुद्धि-यज्ञ का सहायक बनालें। मेरा पक्का विश्वास है कि अगर हम शुद्ध भावना से काम करेंगे और अपने विरोधियों को शत्रु न समझ कर उनके साथ बन्धु-बान्धव का-सा व्यवहार करेंगे तो एक दिन वे अवश्यमेव हमारा साथ देंगे। हमारी शुद्धता और कष्ट-सहिष्णुता उनके हृदय को स्पर्श किए बिना नहीं रह सकती।

बारह जनवरी १९३४ को पातम्बी की एक महती सार्वजनिक सभा में मन्दिर-प्रवेश के प्रश्न पर भाषण देते हुए महात्मा गाँधी ने कहा कि अपने पचास वर्ष के अनुभव के आधार पर यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि जैसी अस्पृश्यता आज-कल व्यवहार में लाई जाती है उसका उल्लेख किसी शास्त्र में नहीं किया गया

है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि जब तक गुरुवयूर तथा दूसरे प्राचीन मन्दिर हरिजनों के लिए नहीं खोल दिए जाते तब तक हिन्दू अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकते।"
महात्माजी के—

सदुद्योग का फल

यह हुआ है कि हरिजन-सेवा-कार्य को अभूतपूर्व उत्तेजना मिली है। बड़े-बड़े नामी वकीलों, बैरिस्टरों और दूसरे रईसों ने स्वयं झाड़ू लेकर सड़कों की सफाई करने में अपना गौरव समझा है। अमीरों की कुल-बधुओं ने स्वयं जाकर हरिजनों की बस्तियाँ साफ की हैं। और इन दृश्यों को देखकर पत्थर के हृदय भी द्रवित हो गए हैं। महात्माजी जहाँ गये वहाँ हजारों लाखों की भीड़ों ने उनका स्वागत किया और थैलियाँ भेंट की। इस प्रकार कुछ ही समय में महात्माजी ने हरिजनों की सेवा के लिए कई लाख रुपया इकट्ठा कर लिया। हरिजनों की सेवा का सन्देश बड़े से बड़े महलों से लेकर छोटे से छोटे झोपड़े तक पहुँच गया। दक्षिण भारत की एक रियासत सन्दूर के राजा ने अपने राज्य में घोषणा कर दी कि हरिजनों को सार्वजनिक मन्दिरों में सवर्ण हिन्दुओं के साथ-साथ दर्शनादि का पूर्ण अधिकार है। मोरवी के महाराज ने श्री मणिलाल कोठारी क अछूतोद्धार कार्य के लिए दो हजार रुपए दिये। अपनी बैंक के मैनेजर के साथ जाकर कोठारीजी को हरिजनों की बस्तियाँ दिखायीं। महाराज ने हरिजनों के लिए राज्य की ओर से नाम मात्र मूल्य पर जमीन दे दी है जिस पर हरिजनों ने अपने मकान बनवा लिये हैं। हरिजनों (भंगी-चमारों) के लिए दो कुएँ बनवाने के लिए भी आपने पैंतालीस सौ रुपये दिये हैं। महाराज स्वतन्त्रतापूर्वक हरिजनों के घरों में गये और उन्हें समझाया कि मरे हुए पशुओं का माँस न खाओ। भंगियों की

प्रार्थना पर महाराज ने उनके लिए एक मन्दिर बनवा देने का वादा किया और कहा कि उनके बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल भी बनवाये जायँगे। महात्माजी की शिष्या जर्मन महिला डाक्टर स्वैटगैल आदि ने स्वयं हरिजनों की बस्तियाँ साफ़ कीं। महात्माजी ने अपना साबरमती-आश्रम जो कई लाख का माना जाता है हरिजनों को सौंप दिया। १६३१ तक सेठ जमनालाल बजाज के नेतृत्व में अछूतोद्धार मण्डल हरिजनों की सेवा के लिए सतत स्तुत्य प्रयत्न करता था। १६३२ से अखिल भारतीय अछूतपन विरोधी-मण्डल इस कार्य में संलग्न है।

श्री देवधर का मत

उन्नीस दिसम्बर सन् १६३३ को मद्रास में होने वाली अखिल भारतीय सामाजिक परिषद् में उसके सभापति की हैसियत से भाषण देते हुए श्रीयुत जी० के० देवधर ने कहा कि, "यद्यपि अस्पृश्यता और अमेल का ख्याल अब भी हमें तकलीफ देता है, परन्तु अब उसके दिन इने-गिने ही रह गये हैं क्योंकि महात्मा गाँधी की सबसे अधिक प्रचण्ड और बलवती शक्ति ने उसकी नीव हिला दी है! महात्मा गाँधी के इस काम की तुलना मैंने सदैव भारी झंझावात से की है!" सभी

विचारशील हिन्दुओं का ध्यान

अछूतपन को मेट देने की ओर लग गया है। पञ्जाब के राजा नरेन्द्रदेव का कहना है कि, कि "पञ्जाब में अछूतपन को मिटाने में ऐसी कठिनाइयाँ नहीं होंगी। गुरु नानक, गुरु गोविन्दसिंह और स्वामी दयानन्द की शिक्षाओं ने सुधार का पथ पहले ही से सुगम कर दिया है। अछूत कहे जाने वाले यदि केवल सफाई के साथ रहें तो पञ्जाब में कोई भी हिन्दू उनके छूने पर अपने को अपवित्र नहीं समझेगा। अपने सनातन-धर्मी भाइयों

से मैं अपील करूँगा कि केवल मनुष्यता के नाम पर ही नहीं, हिन्दुओं की अखण्डता के नाम पर भी वे उन लोगों को देव-मन्दिरों में दर्शन करने से न रोकें जो कि अपने को हिन्दू कहते हैं। कट्टरपन्थियों के विरोध का फल यह होगा कि जो लोग हिन्दू-धर्म में रहना चाहते हैं वे भी उसे छोड़ जायँगे। हमें अपने पिछले सहस्र वर्ष के इतिहास से शिक्षा लेनी चाहिये। ...मुसलमान पहले ही से हमसे अलग हो गए हैं। अब हमें हिन्दुओं को तो एक रखना चाहिये। हिन्दू-धर्मावलम्बियों के किसी भी अङ्ग को देव-मन्दिरों में दर्शन करने से रोकने से हिन्दू-जाति को जितना धक्का पहुँचेगा उतना और किसी बात से नहीं पहुँच सकता!"

मालवीयजी और हरिजन

सनातन धर्म के साथ महामना मालवीयजी भी हरिजनों की सेवा से विमुख नहीं हैं। उन्होंने हरिद्वार, बनारस तथा प्रयाग धामों में श्री गङ्गा-तट पर सहस्र-सहस्र हरिजनों को दीक्षा दी है। ४ नवम्बर १९३३ को रिसमान नदी के तट पर देहरादून में रैदास-सभा के मान-पत्र का उत्तर देते हुए आपने कहा कि "रैदास ईश्वर के बहुत बड़े भक्त थे और उन्हें बचपन से ही मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखता था! रैदास सभी मनुष्य-मात्र के प्रेम का एक उदाहरण हैं। हमारे विश्वविद्यालय में पहले से ही कुछ हरिजन-विद्यार्थी पढ़ रहे हैं लेकिन मैं पच्चीस हरिजन विद्यार्थियों को हिन्दू-विश्वविद्यालय में स्थान दूँगा।" आगे आपने कहा कि "हम लोग

एक ही पिता के पुत्र

हैं। हम में से प्रत्येक को परब्रह्म परमात्मा की पूजा करने का पूरा अधिकार है। परमात्मा अपने बच्चों में भेद नहीं सम-

झता। धर्म अथवा जाति में भेद मानना गलती है। हम सब एक ही भ्रातृमण्डल के सदस्य हैं। हमें इस बात की खुशी है कि आपका विश्वास हिन्दू-धर्म से नहीं डिगने वाला है। हम आप से प्रार्थना करते हैं कि आप लोग पिछले किये गये अत्याचारों को भूल कर भविष्य की ओर देखें।

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्यूनिसिपल बोर्ड

भी इस ओर अपने कर्त्तव्य का पालन करने लगे हैं। अनेक बोर्डों में हरिजनों की सेवा के लिए विशेष प्रयत्न प्रारम्भ हो गये हैं। वे हरिजनों की माँगों को ध्यान से सुनने लगे हैं और हरिजन तथा उनके सेवक भी बोर्डों का ध्यान हरिजनों के प्रति उनके कर्त्तव्य की ओर दिलाने लगे हैं। प्रयाग म्यूनिसिपल बोर्ड ने नवम्बर १९३३ में भङ्गियों की माँगें मंजूर कीं और हरिजनों की पाठशालाओं को सहायता देने का वचन दिया। बरेली के मेहतरों ने वहाँ की म्यूनिसिपैलिटी के सामने माँग पेश की कि मेहतर जमीदारों में से कुछ लोगों को सफाई का ओवरसीयर मुकर्रर किया जाना चाहिये। लाहौर का सत्ताईस अक्टूबर १९३२ का समाचार है कि लाहौर जिला अछूत सेवा-सङ्घ के मन्त्री ने म्यूनिसिपैलिटी को चिट्ठी भेजी कि शहर में हरिजनों के लिए एक हजार मकान बनवाने में बारह लाख रुपये खर्च होंगे। चिट्ठी में लिखा है कि लाहौर के भंगियों की संख्या पाँच हजार है और उनके वास-स्थान बहुत खराब हैं। इन लोगों के लिए एक हजार मकान बनवाने का काम पाँच साल तक रह सकता है। इस प्रकार इस काम में प्रतिवर्ष दो लाख चालीस हजार रुपया खर्च होगा। लाहौर म्यूनिसिपैलिटी की आय चौबीस लाख रुपया वार्षिक है, अतः यहाँ की म्यूनिसिपैलिटी के लिए हरिजनों के मकानों के लिये प्रतिवर्ष अपनी आय का दसवाँ

भाग व्यय करने में ऐसी कठिनाई नहीं होनी चाहिये। यदि कोई कठिनाई हो भी तो कम सूद पर सरकार से रुपया कर्ज ले लिया जाय। वास्तव में हरिजनों की बस्तियों में सफाई की और उनके लिए मकान बनवाने की बहुत आवश्यकता है। म्यूनिसिपैलिटियों का कर्त्तव्य है कि वे हरिजनों के लिये समुचित साधनों का प्रबन्ध करें। डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को हरिजनों के लिए जहाँ उन्हें पीने के पानी का कष्ट हो वहाँ कुएँ बनवाने चाहिये।

अचल ग्राम-सेवा-संघ आगरा ने हरिजनों के पानी पीने के लिए दो कुएँ बनवाने का निश्चय किया है। अन्य लोक-सेवी संस्थाएँ बनवाने का निश्चय किया है। अन्य लोक-सेवी संस्थाएँ तथा दानी पुरुष इस शुभ कार्य का अनुकरण कर सकते हैं।

कुछ प्रयत्नों के उदाहरण

महात्मा गांधी के सदुद्योगों से हरिजन-सेवा कार्य को कितनी भारी गति मिली इसकी कुछ-कुछ झलक आगे दी हुई कुछ रिपोर्टों से चल सकती है। अखिल भारतीय हरिजन-सेवा-सङ्घ की वार्षिक रिपोर्ट तथा 'हरिजन-सेवक' पत्र के अङ्कों से उसका अच्छा अनुमान लगाया जा सकता है।

सितम्बर १९३३ तक ६ महीने में वर्धा (मध्यप्रदेश) में हरिजनों के लिए छत्तीस मन्दिर खुले और एक सौ पैंतालीस कुओं पर उन्हें सवर्णों के साथ-साथ पानी भरने की इजाजत मिली।

कानपुर में भी इन्हीं छः महीनों में शहर में सत्तावन मन्दिर तथा चार कुएँ हरिजनों के लिए खुले और देहातों में पैंतीस कुओं पर उन्हें सवर्णों के साथ-साथ पानी भरने का अधिकार मिल गया। स्थानीय हरिजन सङ्घ ने हरिजनों के लिये पाँच बाल तथा दो बालिका पाठशालाएँ खोलीं। चार पाठशालाओं

को मदद दी। कालेजों में पढ़ने वाले चार हरिजन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दी। इसी सभा के उद्योग से एक हरिजन विद्यार्थी कालेज के छात्रालय में सवर्णों के साथ रहता है। सभा की ओर से हरिजनों लिए मुफ्त दवाएँ भी बाँटी गईं। सङ्घ हरिजनों के लिए क्लब, वाचनालय, सेवा-समिति और सहयोग-समितियाँ भी खोलना चाहती है। कुछ सज्जनों ने हरिजनों की दशा का ज्ञान प्राप्त करने और वह ज्ञान सब के लिए प्राप्त करने के लिए उनकी मर्दुमशुमारी भी की। इस संघ को इस साल सात हजार एक सौ इकहत्तर रुपये पौने आठ आने की आमदनी हुई थी। आगरा की दलितोद्धार-सभा भी हरिजनों की सेवा का स्तुत्य कार्य कर रही है। इस सभा के अधीन आगरा शहर में कोई ग्यारह हरिजन पाठशालएँ हैं जिनमें लगभग पाँच सौ हरिजन बालक पढ़ते हैं। श्रीयुत चन्द्रधर जौहरी ने दो वर्ष से अधिक इस सभा के काम को बढ़ाया और उसकी जड़ मजबूत की। उन दिनों हरिजनों का बैण्ड भी संगठित किया गया, जिससे उन्हें स्वतंत्र जीविका का साधन मिल गया। सम्भवतः सन् १९२९ में मनिकामेश्वर बारहदरी में नगर के पाधा-पुरोहितों और पण्डितों की एक सभा की गई जिसमें लेखक भी सम्मिलित था और उस सभा में सर्व सम्मति से अछूतपन के विरुद्ध प्रस्ताव पास हुआ। तपस्विनी पार्वतीदेवी ने कुछ बाल्मिक लड़कों को लाहौर पढ़ने के लिए भेजा। यह सभा लाला लाजपतराय के स्मारक में स्थापित दलितोद्धार-सभा की प्रान्तीय शाखा के अधीन काम कर रही है। प्रान्तीय शाखा का सञ्चालन लालजी द्वारा संस्थापित लोक-सेवक मण्डल के उत्साही तथा लोक-सेवी सदस्य अलगूरायजी शास्त्री कर रहे हैं।

रोहतक जिले के हरिजन-सेवक-संघ के सितम्बर १९३३ तक

के छः महीने के कार्य की रिपोर्ट इस प्रकार है—रोहतक के हरिजन विद्यार्थियों के लिए एक आश्रम है। इस आश्रम में अट्ठाईस हरिजन छात्र रहते हैं जिनमें से चार को खुराक, दस को कपड़े और शेष सब को स्कूल की फीस, किताबों के दाम, कपड़े धोने का सामान, स्टेशनरी (कागज, पेन्सिल आदि) पढ़ने के कमरे, खेलने की चीजें, रोशनी मिठाई इत्यादि संघ की ओर से दिए जाते हैं। आश्रम की एक विशेषता यह है कि रसोई बनाने सफाई करने, कपड़े धोने, पानी भरने और जरूरत पड़ने पर टट्टी तक साफ करने का सब काम आश्रमवासी ही करते हैं। आश्रम में नौकर कोई नहीं है। जिले के चार सुदूरवर्त्ती गाँवों में चार केन्द्र हैं जिनमें एक-एक सवर्ण तथा एक-एक हरिजन कार्यकर्त्ता काम करते हैं। प्रधान कार्यालय में कुछ दवाएँ भी मुफ्त बाँटी जाती हैं। इन दवाओं से नौ सौ नौ व्यक्तियों ने लाभ उठाया जिनमें सात सौ व्यालीस हरिजन और शेष सवर्ण! प्रत्येक केन्द्र के प्रधान गाँव में एक-एक वयस्क पाठशाला है जिनमें एक सौ अड़तीस वयस्क शिक्षा पाते हैं। इनमें निन्यानवे हरिजन हैं। दोनों हरिजन कार्यकार्त्ता नित्य प्रति हरिजनों की बस्ती में जाकर उनकी गलियों तथा मकानों को साफ करके तथा उनके बच्चों को निहलाकर और उनके मकानों के पास पड़ा हुआ कूड़ा गाँव के बाहर खुदे हुए गड्ढों में स्वयं डालकर उन्हें सफाई तथा गृह-स्वच्छता का क्रियात्मक पाठ पढ़ाते हैं! खास रोहतक में तीन रात्रि पाठशालाएँ हैं जिनमें अड़सठ वयस्क हरिजन शिक्षा पाते हैं। संघ को ६ महीने में दो हजार अड़तीस रुपये बारह आने की आमदनी हुई और अठारह सौ अट्ठावन का खर्च। खर्च में से बावन फीसदी शिक्षा पर हुआ, चौंतीस फीसदी दूसरे सेवा-कार्यों में। प्रचार कार्य में दस तथा दफ्तर से केवल चार फीसदी खर्च हुआ।

संयुक्त प्रान्तीय हरिजन सेवा-संघ के अक्टूबर नवम्बर १९३३ के कार्य की रिपोर्ट इस प्रकार है—इन दो महीनों में गोरखपुर जिले में चार नये स्कूल खोले गये। खेरी के हरिजन सेवक-संघ द्वारा स्थापित एक प्राइमरी स्कूल वहाँ के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने अपने प्रबन्ध में ले लिया है। संघ ने कच्यानी गाँव में दूसरा स्कूल खोला है। यहाँ का संघ—दो दिन की तथा दो रात्रि की पाठशालायें चला रहा है! कानपुर और गढ़वाल के जिला संघों ने भी एक-एक नया स्कूल खोला है। मैनपुरी जिला सेवा-संघ ने चार हरिजन विद्यार्थियों को पुस्तकें तथा कापियाँ दीं और दो को ढाई-ढाई रुपये मासिक की छात्रवृत्ति। प्रान्तीय बोर्ड अब तक तेतालीस हरिजनों को छात्रवृत्ति देता था। अब वह खुरजा के औद्योगिक स्कूल के चार हरिजन छात्रों को और फर्रुखाबाद की एक हरिजन छात्रा को छात्रवृत्ति और देने लगा है। छात्रवृत्तियों में अब प्रान्तीय हरिजन सेवक-संघ का एक सौ ब्यासी रुपया मासिक खर्च हो रहा है। उन्हीं महीनों में सीतापुर जिला संघ ने गाँवों में इकतालीस सभाएँ कीं, जिसमें हरिजन बड़ी संख्या में उपस्थित हुए और उनमें से चार सौ चालीस ने मरे जानवरों का माँस खाना तथा शराब पीना छोड़ने की प्रतिज्ञा की। कानपुर में बारह नवम्बर को महतरों के यहाँ कथा कही गई। कानपुर संघ की ओर से औषधियों की एक गाड़ी अनवरगंज तथा सीसामऊ की हरिजन बस्तियों में रोज दवा बाँटती है। मैनपुरी के संघ ने हरिजनों की बस्तियों की मदुमशुमारी करने के लिये एक कमेटी मुकर्रर करदी है। मैनपुरी के पंडित शम्भूदयाल शुक्ल न अपने स्कूल में सबसे अधिक हरिजन छात्र भरती करने वाले अध्यापक को सोने का पदक देने की घोषणा की है।

बम्बई के प्रान्तीय अछूत सेवा-संघ के बोर्ड की सितम्बर

१६३३ तक की वार्षिक रिपोर्ट से मालूम होता है कि वहाँ इस समय के भीतर हरिजनों के लिये नगर और बाहरी स्थानों में बाईस देव-मन्दिर खोले गये, और अछूतों की सेवा के लिये संघ को पचास हजार रुपये चन्दे से मिले। बम्बई के कुछ व्यापारियों ने बीस हजार रुपये और देने का वादा किया है। वे चाहते हैं कि यह धन केवल अछूतों की शिक्षा में खर्च किया जाय। संघ की ओर से अछूतों के कितने ही बालक-बालिकाओं को छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती हैं। कई रात्रि-पाठशालाएँ खोली गई हैं। और अब हरिजनों के लिए दिन का स्कूल खोलने का भी विचार है।

सेवा-पथ के पथिकों से

इन उदाहरणों से पर्याप्त प्रोत्साहन मिलना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति इस पवित्र कार्य में योग दे सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने हृदय पर हाथ रख कर, अपनी अन्तरात्मा से यह प्रश्न कर सकता है कि क्या मैं अपने पददलित हरिजन भाइयों के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूँ? क्या मैं अपने पूर्वजों के पूर्व-पापों का पर्याप्त प्रायश्चित कर रहा हूँ? क्या मैं सवर्णों पर हरिजनों का जो ऋण है उससे उऋण होने का वास्तविक प्रयत्न कर रहा हूँ? क्या मैं, इस बात को अनुभव करता हूँ कि उन लोगों के साथ जो अन्त में हमारे ही भाई हैं और जो हमारे ऐसे आवश्यक कार्यों को पूरा करते हैं, जिनके बिना एक दिन भी हमारा काम नहीं चल सकता, सब ओर से अत्यन्त मित्रता और दया-दृष्टि का बर्ताव होना चाहिए।

प्रत्येक सेवा-व्रती

प्रति दिन ईश्वर से निम्नलिखित प्रार्थना कर सकता है—

"हे प्रेम के अचूक स्रोत, मुझमें उदारता और परोपकार की

दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने वाली इच्छा पैदा कर। दिन-भर मेरे हृदय में बास कर, जिससे मैं प्रेमपूर्वक सहानुभूति और भ्रातृत्व के नये सम्बन्ध करने की ओर बढ़ता चलूँ। यदि मैंने अपने प्रेम करने के कमनीय कर्त्तव्य को किसी संकीर्ण वृत्ति से परिमित कर रक्खा हो, तो उस वृत्ति को दूर कर। और मुझमें जाति, कुटुम्ब और परिस्थितिओं के हानिकर बाँध को लाँघने के लिए पर्याप्त बल दे। मेरी तुझसे यही प्रार्थना है कि यदि तेरी इच्छा की पूर्त्ति करने में मुझे कष्ट सहने पड़ें, तो मुझे उन्हें सहने की शक्ति दे।"

सहकारिता की आवश्यकता

प्रत्येक सेवक को चाहिए कि वह शीघ्र से शीघ्र अपने को किसी संगठित हरिजन-सेवक-संघ से सम्बन्धित कर ले। यदि उसके यहाँ कोई संघ न हो, तो नया संघ स्थापित कर ले। क्योंकि हमें किसी भी दशा में संगठन की महिमा को नहीं भूलना चाहिए। विशेषकर रूढ़ि-विरोधी हरिजन-सेवा जैसे कार्य में तो सहकारिता बिना सफलता मिलना बहुत ही कठिन है। सेवक को पहले लोकमत शिक्षित बनाना होगा और लक्ष्य की ओर समाज की प्रवृत्ति बदलनी होगी। सेवक को इस बात की पूरी-पूरी साव-धानी रखनी चाहिए कि सङ्घ में ऐसा एक भी सभासद न हो जो स्वयं जाकर अछूत जातियों के बीच में काम करने से हिचके; क्योंकि केवल दूर की सहानुभूति व्यर्थ है, उससे सहायता मिलना तो दूर, उल्टी बाधा पड़ती है।

सेवा का कार्य-क्रम

स्थानीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए बनाना चाहिए। वैसे, उदाहरणार्थ, इस व्यापक

कार्य-क्रम से काम लिया जा सकता है। हरिजनों में रात्रि और दिन की पाठशालाएँ खोल कर, वयस्कों की पाठशालाएँ खोल कर तथा अन्य सब साधनों से शिक्षा-प्रचार करना। शिक्षा के साथ-साथ चिकित्सा और आरोग्यता सम्बन्धी कार्यों का करना भी अत्यन्त आवश्यक है। रोगियों को चंगा करने से लोगों के हृदयों में व्यावहारिक सहानुभूति का जो प्रवाह बहता है, उससे स्वच्छता और शिष्टता सम्बन्धी बातों की शिक्षा सरल रीति से दी जा सकती है। स्वच्छता और शिष्टता के भीतर सर्वसाधारण के उत्थान के बहुत-कुछ गूढ़ रहस्य भरे हुए हैं। इनके साथ-साथ सार्वजनिक स्कूलों में हरिजन-बालकों को भरती कराना, बोर्डों द्वारा उनकी बस्तियों की सफाई कराना, उनमें पानी, नल, रोशनी आदि का प्रबन्ध कराना, हरिजन विद्यार्थियों को छात्र-वृत्ति दिलाना, तरह-तरह के कष्टों से उन्हें बचाना भी अत्यन्त आवश्यक है।

कुछ उपयोगी प्रस्ताव

लाहौर के क्रिश्चियन कालेज में प्रधानाध्यक्ष फ्लेलिङ्क साहब ने अपनी "Suggestions for Social Helpfulness" नामक पुस्तक में निम्नलिखित उपयोगी प्रस्ताव दिये हैं—

१—हरिजनों की सामाजिक अवस्था का अध्ययन करो।

२—इन लोगों के अधिकारों की समानता, इनके प्रति उत्तम वर्त्ताव तथा इनका समुचित आदर करने की ओर पुस्तिकाओं, बात-चीत और व्याख्यानादि द्वारा जनता के अन्तःकरण को जगाने का सतत प्रयत्न और परिश्रम करो। यदि ऊँची जातियों के तीस-चालीस लाख सवर्णों को उनके कर्त्तव्य का, अछूतपन की घातकता का ज्ञान करा दो तो यह विकट समस्या सहज में ही हल हो जाय।

३—स्कूल के अधिकारियों को अछूत बालकों को स्कूल में दाखिल करने के लिए राजी करने का भरसक प्रयत्न करो और जहाँ स्कूल न हो वहाँ उनकी शिक्षा के साधन उपस्थित करो।

४—स्वयं उनके लिए पाठशालाएँ खोलो।

५—हरिजनों में से मुख्य-मुख्य लोगों—पंच-चौधरियों की क्रियात्मक सहानुभूति प्राप्त करो और उनकी सहायता से कार्य करने के लिए कमेटियाँ सङ्गठित करो। ये कमेटियाँ चन्दा इकट्ठा कर के होनहार हरिजन-बालकों को मासिक छात्रवृत्ति दें।

६—रुपया-पैसा देते समय, पत्र देते समय तथा अन्य छोटे-छोटे कार्यों के समय उन्हें छुआ करो, जिससे उन्हें यह ज्ञान और विश्वास हो जाय कि तुम उनको भी मनुष्य समझते हो।

७—उनको गन्दगी से बचाने के लिए आवश्यक हो तो कुछ कष्ट भी उठाओ और दाम भी खर्च करो।

८—यदि हरिजन भाइयों की सहायता के लिए स्वयं सम्पन्न सङ्घ सङ्गठित और स्थापित न कर सको, तो जो लोग इस क्षेत्र में पहले से काम कर रहे हैं उन्हें अपनी सहानुभूति और सहायता दो।

इन प्रस्तावों के आधार पर कार्य करने और सुन्दर कार्य-क्रम बनाने में किसी भी लोक-सेवी को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

पशुओं की सेवा

ईश्वर-अंश जीव अविनाशी। —तुलसीदास

पशुओं की रक्षा उनका रचयिता करता है और वह पशु-तथा मनुष्य दोनों के ही अत्याचारियों से बदला लेता है।

मनुष्य-जाति में बालक और हीन श्रेणी के जीवों में पशु दया के योग्य हैं। और वे जो कि इनके अधिकारों की उपेक्षा करते हैं, अपने ऊपर दया या न्याय किए जाने की कोई आशा या अधिकार नहीं रख सकते।

जैसे तू अपनी रक्षा के लिए अपने परमात्मा के भरोसे है, वैसे ही गूँगे और असहाय पशु अपने बचाव के लिए तेरे भरोसे हैं। यदि तू उनके ऊपर दया नहीं करता तो तुझे अपने ऊपर परमात्मा की दया का कोई अधिकार नहीं। —महात्मा बुद्ध

"दया का गुण परिमित नहीं है। वह आसमान से नीचे की पृथ्वी पर, धीमे-धीमे मेह की भाँति, टपकता हुआ गिरता है। इस गुण में दो प्रसाद हैं। एक उसके लिए जो दया करता है। दूसरा उसके लिए जिस पर दया की जाती है या जो दया का पात्र होता है। —शेक्सपियर

पशु-रक्षा और भारत

लोक-सेवा मनुष्यों तक ही परिमित नहीं है। उसमें पशु और मनुष्य दोनों ही सम्मिलित हैं। हीन श्रेणी के इन जीवों अर्थात् पशुओं के प्रति मनुष्य के कर्त्तव्य का भाव भारत में सदा से ही अत्यन्त उच्च रहा है। यहाँ पशुओं के दुःखों का निराकरण करना शताब्दियों तक व्यक्तिगत और सार्वजनिक सेवा-कार्य का एक निश्चित भाग रहा है। परन्तु कोई बीस बरस पहले लन्दन में, समस्त संसार के पशुओं की रक्षा के बेहतर उपाय सोचने के लिए जो अन्तर्राष्ट्रीय सभा हुई थी, उसमें भारत के सम्बन्ध में जितने निबन्ध पढ़े गये थे उन सब में यह कहा गया था कि पशु-रक्षा के लिए यहाँ जो उपाय काम में लाये जाते हैं वे बहुत ही अपूर्ण हैं। यहाँ यूरोपियन और भारतीय दोनों ही पशुओं के दुःखों के प्रति अत्यन्त उपेक्षा और आलस्य से काम लेते हैं। अतः समय अब आगया है जब कि भारत के पशु-जीवन की दुःखमय अवस्था के निराकरणार्थ प्रबल उद्योग किया जाय।

इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए, पशुओं पर की जाने वाली निष्ठुरता को रोकने के लिए एक महती अखिल भारतीय सभा स्थापित की गई और उसका प्रधान कार्यालय कलकत्ते में रक्खा गया। इस संस्था में भारत-भर के पशु-रक्षा-सम्बन्धी समाचार-पत्र रखे जाते हैं। पशु रक्षा-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार और विवाद होता है तथा उनके उपाय सोच कर काम में लाये जाते हैं। और स्थानीय सभाएँ स्थापित करके लोगों का ध्यान इस आवश्यक कार्य की ओर आकर्षित किया जाता है।

पशुओं के प्रति होने वाली निष्ठुरता से उन्हें बचाने के लिए अनेक नगरों में स्थानीय सभाएँ स्थापित हो चुकी हैं। ये सभाएँ सन् १८६० के ऐक्ट नं० ११ के बल पर पशुओं के प्रति

होने वाली निष्ठुरता को रोकने का प्रयत्न करती हैं, गधे, बैल, घोड़े आदि पशुओं के सुपालनादि की ओर उनके अज्ञानी स्वामियों का ध्यान आकर्षित करते हैं और उन दयापूर्ण भावों को उत्तेजित करते हैं, जो मनुष्य जाति के लिए हितकर हैं। कुछ सभाओं ने पशुओं के प्रति कैसा वर्त्ताव करना चाहिए यह बताने वाली छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ भी बाँटी हैं। परन्तु पशुओं के प्रति निष्ठुरता करने वाले अधिकाँश लोगों के लिए काला अक्षर भैंस बराबर होता है। इसलिए इन लोगों को रोकने के लिए पहले उन्हें कानून की चेतावनी दी जानी चाहिए, उससे न मानें तो उनकी रिपोर्ट करके उनको कानून के फल भोगने के लिए छोड़ देना चाहिए। इस कानून की कापियाँ एक आने में लाला गुलाबसिंह के छापेखाने से, जो लाहौर में है, मिल सकती हैं। इस कानून में अपराधी को दण्ड देना आवश्यक नहीं है, साधारणतः अपराधी को धमका कर तथा चेतावनी देकर छोड़ दिया जाता है; परन्तु जो लोग पशुओं के प्रति निष्ठुरता के गर्हित कार्य करते हैं, वे कानून के दण्ड पाते हैं।

यदि आप किसी को किसी पशु के साथ निन्दनीय निष्ठुरतापूर्वक व्यवहार करते हुए पावें तो स्थानीय सभा के मन्त्री के पास अपराधी के नाम की, उसके पिता के नाम, तथा पूरे पते की और जिस पशु या जिन पशुओं पर निष्ठुरता की गई है उनकी सब सूचनाएँ भेज दो। यदि आपके यहाँ कोई सभा न हो और अपराधी लैसन्सी गाड़ी, जैसे ताँगा, बग्घी, इक्का इत्यादि का हाँकने वाला हो, तो म्यूनिसिपैलिटी के मन्त्री के पास उसके नम्बर की रिपोर्ट करदो। यदि अपराधी की गाड़ी वगैर लैसंस की हो, तो डिप्टी कमिश्नर या कलक्टर के यहाँ उसके नाम की रिपोर्ट मय पूरे पते के कर दो।

अधिकतर नगरों में ही पशुओं पर निष्ठुरता की जाती है।

घोड़ागाड़ी के घोड़ों से बहुत काम लिया जाता है। बैलों पर बहुत अधिक बोझा लादा जाता है। उन्हें भरपेट खाने को नहीं दिया जाता और उन्हें अपनी शक्ति से अधिक बोझा खींचने को मजबूर करने के लिए बुरी तरह मारा-पीटा जाता है। बोझ के मारे बैलों की आँखें निकल आती हैं। यदि वे बोझ के मारे गिर पड़ते हैं या बैठ जाते हैं, तो उन्हें किसी लकड़ी से पीट-पीट कर खड़ा किया जाता है और फिर वही बोझा उनसे खिंचवाया जाता है। दूध देने वाली गायें बहुत ही गन्दे और अस्वास्थ्यकर स्थानों में ठूँस दी जाती हैं। और उनके लिए काफी हरी घास वा प्रकाश का कोई प्रबन्ध नहीं है। घोड़ों पर बेतहास सवारी लाद दी जाती हैं और कोड़ों की मार से उनसे बेहद काम लिया जाता है। मुर्गी और अन्य पक्षियों के साथ गर्भवती होने पर और बच्चा जनने के पश्चात् जिस हृदय-हीनता से वर्ताव किया जाता है उसे सभी ने देखा होगा।

कुछ प्रयत्नों के उदाहरण

बम्बई की एक सभा ने एक वर्ष में घोड़ों के साथ निष्ठुरता करने के लिए चार सौ सैंतालीस मनुष्यों को, बैलों के पीछे नौ हजार छः सौ पैंतीस मनुष्यों को और भैंसों के पीछे अठहत्तर मनुष्यों को दण्ड दिलाया।

कलकत्ते में एक साल में ६ हजार दो सौ ग्यारह को गिरफ्तार कराया गया जिनमें से ६ हजार बाईस को दण्ड मिला और बाकी एक सौ उन्नीस को धमका कर छोड़ दिया गया।

लोक-सेवकों का कर्तव्य है कि वे इस सम्बन्ध में पहले कानून हस्तगत करें, फिर उस कानून की जानकारी स्वयं प्राप्त करें तथा दूसरों को भी उस कानून का ज्ञान करादें। निष्ठुरता के विरुद्ध लोकमत बनावें। निष्ठुरता रोकने वाली सभा हो तो उसकी

सहायता करें, न हो तो उसकी स्थापना करें। इस विषय पर निबन्ध लिखावें और सर्वोत्तम निबन्धों को छपा कर बँटवावें। पहले-पहल स्वयं अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करें और यदि किसी को निष्ठुरता करते देखें, तो उसे चेतावनी दें। चेतावनी पर भी न माने तो उसकी रिपोर्ट कर दें।

—— ——

यात्रियों की सेवा

यात्राओं में जो कष्ट और खतरे होते हैं वे किसी से छिपे नहीं हैं। भीड़ के समय, रेलों और मेलों में तो इन कष्टों और खतरों की संख्या और भी अधिक बढ़ जाती है। स्त्रियाँ और बच्चे बिछुड़ जाते हैं, पाप-व्यवसायी उन्हें उड़ा भी ले जाते हैं। फलत: ऐसे अवसर सेवा के सुअवसर हुआ करते हैं और हर्ष की बात है कि समाज-सेवियों का ध्यान इस ओर गया है और उन्होंने इस कार्य को अपना लिया है। मेलों और पर्वों के अवसरों पर सेवा-समितियाँ समाज-सेवा का काम जितने सुचारु तथा सङ्गठित रूप से करती हैं, उसको सभी सराहते हैं। कहीं-कहीं रेलों में स्टेशनों पर पानी का प्रबन्ध भी सेवा-समितियाँ करती हैं!

परन्तु साधारणत:, रेल के मुसाफिरों की सेवा करने की ओर लोगों का ध्यान अभी उतना नहीं गया, जितना जाना चाहिए। यद्यपि सच बात यह है कि अपढ़-कुपढ़ और कठिनाई में पड़े हुए मुसाफिरों की सेवा करने में प्रत्येक लोक-सेवी को स्वयं अपने बल पर, व्यक्तिगत रूप से और एकाकी, जितने अवसर मिलते हैं, उतने और किसी एक स्थान पर शायद ही मिलें। उदाहरण के लिए बेपढ़े लोग अपनी टिकट पढ़वा कर

यह जानना चाहते हैं कि वह टिकट कहाँ की है तथा उसमें किराया कितना लिखा है ? इनमें से अपरिचित और अनुभव-हीन व्यक्ति यह जानना चाहते हैं कि वे जहाँ जाना चाहते हैं वहाँ जाने के लिए कौन-सी गाड़ी में बैठें और वह गाड़ी किस प्लेटफार्म से जाती है ? जो गाड़ी इस समय उधर को जा रही है, वह जिस स्टेशन पर वे उतरना चाहते हैं उस पर ठहरेगी या नहीं ? जिस दरजे में वे बैठना चाहते हैं, वह उस दर्जे से ऊँचा दरजा तो नहीं है, जिसकी टिकट उनके पास है ? बहुधा तीसरे दरजे के मुसाफिरों को टिकट मिलने में भी बहुत असुविधा होती है और टिकट मिलने पर उनके लिए गाड़ी में बैठना बहुत मुश्किल हो जाता है। इन और इसी प्रकार के अवसरों पर उनकी सहायता करना, उनके प्रश्नों को सहानुभूति के साथ सुनना तथा प्रेम के साथ उनका उचित उत्तर देना सेवा के अति सुन्दर कार्य हैं ! मुसाफिरों को एक-दूसरे की तथा रेलवे कुलियों वगैरः की ज्यादती से बचाना और खुद अपना व्यवहार ऐसा बना लेना, जो दूसरों के लिए आदर्श-स्वरूप हो, जिससे दूसरों की असुविधाएँ यदि दूर न हों, तो कम जरूर हो जायँ और जिसे देख कर दूसरे समझदार यात्री भी उसी तरह आचरण करने लगें, इस सेवा-कार्य का प्रधान अङ्ग है। इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी ने पढ़े-लिखे लोगों के लिए जो कर्त्तव्य प्रकाशित किये थे वे विचारणीय और अनुकरणीय हैं। महात्मा गांधी ने स्वयं बरसों तीसरे दरजे में सफर करके मुसाफिरों की तकलीफों को देखा और उनका अनुभव किया और फिर उस निजी ज्ञान और अनुभव के आधार पर मुसाफिरों के कष्टों को कम करने के अधोलिखित उपाय बताये—

रेल के कर्मचारियों और यात्रियों से निवेदन

रेलवे द्वारा यात्रा (सफर) करने में मुसाफिरों को तकलीफें

होती हैं, इसमें किसी को सन्देह न होगा। इसमें बहुत-सी तक-लीफों का इलाज हमारे ही हाथ में है। आज हिन्दुस्तान में चारों ओर ऐक्य-भाव का विस्तार हो रहा है। इसी के उपयोग से बहुत-कुछ तकलीफें हट सकती हैं। ऐसी तकलीफों के हटाने का इलाज इस लेख में बताया गया है। पाठकों से भी यह विनती है कि इस लेख को सावधानी से पढ़ कर दूसरों को जो पढ़ना नहीं जानते इसका मतलब समझावें।

रेल के अधिकारियों से प्रार्थना

यदि आप स्टेशन मास्टर हैं, तो आपसे मुसाफिरों की तक-लीफों का बहुत-कुछ निवारण हो सकता है। गरीब मुसाफिरों के साथ नम्रता का बर्ताव रख कर अपने आधीन कर्मचारियों के लिए आप स्वयं आदर्श बन सकते हैं।

यदि आप टिकट देने वाले (टिकट बाबू) हैं, तो थोड़ा ही विचार करने से आप समझ सकते हैं कि जितना समय आप पहिले और दूसरे दर्जे के मुसाफिरों को टिकट देने में बिताते हैं, उतना समय तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के लिए भी बिताना आव-श्यक है। रेलवे गरीबों के पैसों पर निर्भर है और उन्हीं के पैसे पर आपके वेतन का बहुत-कुछ आधार है। कोई-कोई टिकट देने वाला अधिकारी गरीबों को गाली देता और दुतकार देता है। इतने पर भी, जितनी हो सकती है उतनी ही देरी से टिकट देता है। इसमें कुछ भी बड़प्पन नहीं। मुसाफिरों क समय पर टिकट देने से उनका बहुत-कुछ समय बच सकता है और आपकी भी कोई हानि नहीं होती।

यदि आप सिपाही हैं तो घूंस (रिश्वत) से बचना चाहिए। गरीबों को धक्का देने का निश्चय न करना चाहिए और उन पर दया-दृष्टि रखनी चाहिए। आपको यह भी समझना चाहिए

कि हम जन-समाज के नौकर हैं, न कि मालिक! उन्हें तकलीफ में सहायता देना आपका कर्त्तव्य है। दुःख देने में आप यदि स्वयं दृष्टान्त स्वरूप बनें, तो यह निरा अन्याय है।

शिक्षित मुसाफिरों से प्रार्थना।

यदि आप पढ़े-लिखे हैं और देश-प्रेमी हैं, यह भाव आप प्रायः दूसरों पर जमाना चाहते हैं। देश-सेवा करने का मौका आपको अनायास मिला है। आप अपने देश-प्रेम का उपयोग अपने प्रसंग में आने वाले गरीब या अशिक्षित मुसाफिरों के दुःख मिटाने में कर सकते हैं। उदाहरण के लिए जैसे किसी मुसाफिर पर अत्याचार होता हो, तो आप अनेक प्रकार से उनकी सहायता कर सकते हैं। यदि आप तीसरे दर्जे में रेल-यात्रा नहीं करते, तो अनुभव के लिए उसमें यात्रा कर सकते हैं। इससे तीसरे दर्जे के मुसाफिरों को बहुत-कुछ लाभ होने की सम्भावना है। आप अपना ऊँचा दर्जा न प्रकट करके यदि तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के साथ पीछे रह कर टिकट लें, तो अपने गरीब भाइयों की अवस्था जानने और उसे सुधारने में अधिक उपयोगी हो सकते हैं। और आप अपने लिए जो कुछ भी सुभीता पायेंगे, वह थोड़े ही समय में जन समाज को मिल सकेगा। अधिकतर शिक्षित-वर्ग तीसरे दर्जे के मुसाफिरों पर होने वाले अत्याचारों का साधन बनते हैं। वे अपने लिए विशेषतः जल्दी टिकट माँगते हैं। इससे बेचारे गरीबों पर मुसीबत पड़ती है। इस प्रकार अत्याचार का साधन बनने से शिक्षित लोगों का बचना आवश्यक है। जो कुछ कभी आप स्टेशन पर या गाड़ी में देखें इसके विषय में अधिकारियों के पास लिखना आपका कर्त्तव्य है।

साधारण मुसाफिरों से प्रार्थना ।

आप चाहे किसी प्रकार के मुसाफिर हों, शिक्षित या अशिक्षित, गरीब या अमीर, नीचे लिखी सूचनाएँ याद रक्खें, तो मुसाफिरों की बारह आना तकलीफ दूर हो सकती है—

(१) स्टेशन या गाड़ी में जबरदस्ती न घुस कर, यदि आप सब से पीछे रहेंगे तो कोई हर्ज नहीं, यह समझ कर बर्ताव करेंगे तो आपको कोई हानि न होगी और दूसरों को आपकी मर्यादा से लाभ होगा।

(२) गाड़ी में बैठने के बाद आप याद रखिये कि जब तक लोगों की संख्या पूरी न हो, तब तक किसी भी व्यक्ति को उसमें बैठने का आपके बराबर अधिकार है। इसलिए यदि आप किसी को भीतर आने से रोकेंगे, तो नीति के विरुद्ध-असत्य भाषण के आप दोषी होंगे। साथ-ही-साथ रेलगाड़ी के नियम को भी भंग करेंगे।

(३) तीसरे दर्जे के मुसाफिरों को जितना सामान लेकर चलने का अधिकार है 'उतना ही सामान आप अपने साथ रक्खें' तो दूसरे आराम से बैठ सकेंगे। अधिक सामान ले जाना हो तो आपको ब्रेक (माल रखने की गाड़ी) में रखना चाहिए।

(४) आपका सामान उस ढङ्ग का होना चाहिए जो बैठने की पटरी के नीचे या ऊपर की पटरी पर सहज में रक्खा जा सके।

(५) आप धनी हों और तीसरे दर्जे में आप के बैठने का कारण परोपकार न हो, तो आप को ऊँचे दर्जे में बैठ कर सुख प्राप्त करना चाहिए। केवल कंजूसी के कारण ऊँचे दर्जे में न बैठने से आप तीसरे दर्जे के मुसाफिरों पर बोझ रूप होंगे। लेकिन यदि ऊँचे दर्जे में आप बैठना न चाहें, तो आपको अपने धनीपन का उपयोग ऐसा करना उचित नहीं, जिससे आपके

साथ बैठे हुए भाइयों को आप और आपका सामान कष्ट देने वाला हो।

(६) आप को याद रखना चाहिए कि दूर की यात्रा करने वाले मुसाफिरों को कुछ-न-कुछ सोने का स्थान मिलने का अधिकार है, इसलिए आप अपने भाग ही पर निद्रा देवी की अराधना कर सकते हैं।

(७) यदि आप बीड़ी के व्यसनी हैं, तो गाड़ी में बैठने के बाद आप को ख्याल रखना चाहिए कि दूसरों को तकलीफ न दे कर उनसे पूछ कर ही बीड़ी पियें।

(८) आप को थूकना हो, तो बाहर थूकें। यदि गाड़ी के भीतर पैर रखने की जगह पर आप थूकेंगे, तो उससे बहुत गन्दगी पैदा होगी और सफाई के नियम पालन करने वाले को इससे असह्य दुःख होगा। इस आदत से रोगों के फैलने की भी सम्भावना है।

(९) आप रेलगाड़ी के पायखाना का उपयोग सावधानी से करें, तो सब मुसाफिरों के सुख में वृद्धि होगी! लापरवाही से उपयोग कर के चले जाने पर आप अपने पीछे रह जाने वाले मुसाफिरों का लेशमात्र भी विचार नहीं करते।

(१०) यात्रा के समय आप ब्राह्मण, क्षत्री या शूद्र अथवा और दूसरे वर्ण के हैं, या आप हिन्दू और मुसलमान हैं, या आप बिहारी और दूसरे बंगाली हैं इन भेद-भावों को अलग रख कर परस्पर द्वेष न करते हुए—सब हिन्दुस्तान की सन्तान हैं और आज प्रसंगवश एक छत्र के नीचे एकत्र हुए हैं, यह भ्रातृ-भाव रक्खें, तो बड़ा सुख हो और भारत का प्राचीन गौरव बढ़े।

———

स्वाध्याय द्वारा सेवा

"दानों में ज्ञान-दान सब से श्रेष्ठ है।" —नीतिवाक्य

ज्ञान की महिमा

अपरम्पार है! संस्कृत में एक श्लोक है जिसका अर्थ यह है कि जिसके पास बुद्धि है उसी के पास बल है, निर्बुद्धि के पास बल कहाँ से आया? अंग्रेजी में भी एक कहावत है कि "ज्ञान ही बल है।" (Knowledge is Power) "लोक-सेवक ज्ञान-द्वारा जितनी लोक-सेवा कर सकता है उतनी और किसी प्रकार से कदापि नहीं कर सकता। सेवा, दान का ही एक रूप है और गीता में कृष्ण भगवान ने कहा है कि जो दान देना चाहिए, यह समझ कर तथा देश-काल-पात्र का विचार करके अनुपकारी को, अर्थात् ऐसे को, दिया जाता है जिससे प्रत्युपकार की आशा नहीं, वही दान सात्विक दान है। इससे स्पष्ट है कि दान देने के लिए देश-काल-पात्र का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। यही बात सेवा के लिए भी लागू होती है। देश-काल-पात्र पर विचार किए बिना जो सेवा की जाती है, उससे लाभ के पहले बहुधा हानि पहुँच जाती है। इसलिए लोक-सेवी के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस देश व प्रदेश

की सेवा करना चाहता है, उसकी तथा उस समय की जिसमें वह काम कर रहा है तथा उन लोगों की पात्रता-अपात्रता की, जिनकी सेवा करना उसे अभीष्ट है, पूरी जानकारी प्राप्त करले।

अर्वाचीन समाज-शास्त्र

की शब्दावली में इसी बात को यों कहा जाता है कि सेवा करने से पहले सामाजिक अवस्थाओं की जांच करके (Survey of social conditions) समस्त आवश्यक सामग्री प्राप्त कर लेनी चाहिए। क्षमता-विज्ञान (Science of efficiency) के अनुसार संसार की उन्नति यथार्थ ज्ञान—सही सूचनाओं (Exact information) पर निर्भर है। इस प्रकार सही सूचनाएँ इकट्ठी करके उन्हें सब लोगों के लिए उपलब्ध करना, मनुष्य जाति के लिए अत्यन्त हितकर है, अर्थात् यह दिशा लोक-सेवा की एक अत्यन्त उपयोगी दिशा है। यदि हम अपना कार्य-क्रम यथार्थ ज्ञान के आधार पर बनावेंगे, तो हमें अपने कार्य में निश्चित सफलता मिलेगी। प्रसिद्ध जर्मन कवि गेटे का कहना है कि कार्य में अज्ञान से बढ़ कर हानिकर और कुछ नहीं। यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके लिए हमें खोज के वैज्ञानिक ढङ्ग (Scientific mathod of investigation) से काम लेना चाहिए। इस वैज्ञानिक-पद्धति का मूल मन्त्र यह है कि अपने विश्वासों को तथ्यों से सदैव सामञ्जस्य रक्खो! अर्थात् अपने विश्वासों को सदैव वास्तविक तथ्यों की कसौटी पर कसते रहो और यदि वे वास्तविक तथ्यों के प्रतिकूल मालूम पड़ें, तो उनमें उचित तथा आवश्यक विवेक-सम्मत परिवर्त्तन करने के लिए तैयार रहो। वैज्ञानिक ढङ्ग के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए लोक-सेवकों को बेकन, डैस्कार्टे और कौम्टे

(Bacon, Descarte and Comte) की इस विषय सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए; परन्तु जिन लोक-सेवकों को अंग्रेजी-भाषा का इतना ज्ञान नहीं है अथवा जिनके पास इतना समय और इतने साधन नहीं हैं, उनके लिए यहाँ क्षमता-विज्ञान को सबसे अधिक लोकप्रिय बनाने वाले हैरिङ्गटन एमर्सन (Harrington Emerson) के क्षमता के व्यावहारिक सिद्धान्तों का दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। एमर्सन कथित क्षमता के व्यावहारिक सिद्धान्त ये हैं—(१) हमारे लिए यह लाजिमी है कि हम ताजे-से-ताजे विश्वास योग्य, पर्याप्त और स्थायी लेखों (Records) का उपयोग करें। (२) हम जो कुछ चाहते हैं और जो कुछ करना चाहते हैं, उस सब की एक निश्चित-योजना (plan) बनाना लाजिमी है। (३) अपने समय, सामग्री, साधन तथा शक्तियों के सदुपयोग के लिए हमें निश्चित माप-आदर्शों (Standard) के आधार पर बनी हुई सूचियाँ (Schedules) बना लें। (४) हमें अपने कामों को निबटा देने की आदत डाल लेनी चाहिए। (५) हमारे लिए यह लाजिमी है कि हम सब दशाओं और अवस्थाओं के स्टेण्डर्ड बना डालें अर्थात् हमारे सामने इस बात के निश्चित माप-आदर्श हैं कि अमुक-अमुक दशाओं और अवस्थाओं में हमें इतना काम अवश्य ही कर लेना चाहिए। (६) हमें समय और क्रिया का अध्ययन करके हर-एक काम के स्टेण्डर्ड बना डालने चाहिए। (७) कार्य के सम्बन्ध में जो लिखित स्टेण्डर्ड हिदायतें हों, उनका अध्ययन करना और उनके अनुसार काम करना हमारे लिए सामग्री है। क्षमता के इन व्यावहारिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त एमर्सन ने समता के कुछ नैतिक सिद्धान्त भी स्थिर किये हैं। वे ये हैं—जीवन के वाँछनीय पदार्थों और अभीष्टों को प्राप्त करने के सब से अच्छे, सब से आसान और

सब से जल्दी फल देने वाले मार्गों की खोज कर के उन पर चलने के लिए, (१) इस बात के हमारे पास स्पष्ट और निश्चित आदर्श होने चाहिए कि जीवन की अभीष्ट और वांछनीय वस्तुएँ क्या हैं ? और (२) उन वस्तुओं को प्राप्त करने, अपने आदर्शों तक पहुँचने और उनकी पूर्ति के लिए हम जिन साधनों से काम लें उनको हमें सामान्य बुद्धि (Common Sense) की कसौटी पर कसते रहना चाहिये। (३) हमें सदैव योग्य और विशेषज्ञ व्यक्तियों की सलाह लेकर उसके अनुसार कार्य करना चाहिए, (४) उन चीजों पर शासन करने वाले जो सिद्धान्त, कानून और कायदे हों, हमें अपने को सदैव उनके अनुशासन में रख कर उनसे क्रियात्मक सामञ्जस्य स्थापित कर लेना चाहिये यानी उन सिद्धान्तों, कानूनों और कायदों पर चलना अपना सहज स्वभाव बना लेना चाहिये, (५) हमें सदैव न्याय पर रहना चाहिये अर्थात् अपने साथ न्याय कराना चाहिये और दूसरों के साथ भी न्याय करना चाहिये और हमें सदैव अपनी क्षमता के पारतोषिक प्राप्त करने की उत्कट इच्छा होनी चाहिये, उसे प्राप्त करने के लिए सोत्साह उद्योग करना चाहिये और अध्यवसाय के साथ अपने पारितोषिक की माँग करनी चाहिये। संक्षेप में, "हमें अपने कार्य का क्रम (ढाँचा) स्थिर कर लेना चाहिये और उस क्रम के अनुसार कार्य करना चाहिये।" जिस मनुष्य के कार्य का कोई क्रम नहीं होता वह न तो अपना सर्वोत्तम कार्य ही कर सकता है और न अपनी शक्ति भर ही ! यह क्रम सही सूचनाओं पर, यथार्थ ज्ञान पर, पर्याप्त और विश्वास योग्य लेखों पर अवलम्बित होना चाहिये। क्रम की मदें अलग-अलग हों, अन्यथा वह पूरा नहीं हो सकेगा। तात्पर्य यह कि हमारे आदर्श की परिभाषा सुनिश्चित हो, जिससे वह आसानी से समझ में आसकें। हमें उस आदर्श की प्राप्ति की उत्कट

अभिलाषा हो, हम अपने तथा दूसरों के साथ न्याय करें, अपनी बुद्धि से पूरा काम लें, योग्य और अनुभवी व्यक्तियों से सहायता लें और आदर्श के अनुसार अपने आचरणों को नियमित करें। जो लोक-सेवी इस विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहें उन्हें आचार्य व्यक्ति Harrington Emerson की "Home course in Personal Effeciency" तथा "Twelve Principles of Effeciency" का अध्ययन करना चाहिए। वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों (Principles of Scientific Management) की जानकारी हासिल करने के लिए लोक-सेवकों को Comte (कौम्टे) की पुस्तकों का विशेषकर फ्रैडरिक विन्स्लो टेलर (Frederick Winslow Taylor) की Scientific Management नामकी पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए। वास्तव में वैज्ञानिक प्रबन्ध-पद्धति के अर्वाचीन आचार्य टेलर ही हैं। उनके बताये हुए, वैज्ञानिक प्रबन्ध के चार मुख्य सिद्धान्त ये हैं:—(१) हर एक काम या प्रक्रिया के सच्चे विज्ञान का विकास यानी प्रबन्धकों का यह काम होना चाहिए कि वे अपने अधीन काम करने वाले हर एक कर्मचारी को यह बतावें कि उनका काम किस प्रकार जल्दी से जल्दी और अच्छे से अच्छा हो सकता है, और इस उद्देश्य से हर एक काम को जल्दी से जल्दी और अच्छे से अच्छे ढङ्ग से करने के तरीके सोचते रहें, (२) कर्मचारियों का वैज्ञानिक चुनाव, यानी जो आदमी जिस काम में हुशियार हो, उसको उसी में लगाना, (३) कर्मचारियों को उनके काम की वैज्ञानिक शिक्षा देना और उनका विकास करना अर्थात् उनकी क्षमता और उपयोगिता बढ़ाते रहना, उनको उनके काम के उपयुक्त साधन देना, (४) प्रबन्धकों और कर्मचारियों में घनिष्ट तथा मैत्रीपूर्ण सहयोग। अब तक जो कुछ कहा गया है उससे

खोज और अध्ययन

का तथा कार्य-क्रम (Plan) बनाये जाने की आवश्यकता स्वयं स्पष्ट हो जाती है। हमारे देश में सार्वजनिक सेवा के भाव और सार्वजनिक सेवा-सम्बन्धी ज्ञान की कमी का सब से बड़ा और शोचनीय उदाहरण यही है कि अभी तो हम लोगों को इस बात की कल्पना तक नहीं है कि सार्वजनिक सेवा करने के लिए किन-किन बातों की आवश्यकता है और किस बात का कितना महत्व है ? अभी तक हम खोज, अध्ययन और कार्य-क्रम बनाने के काम के महत्व को भी नहीं समझ सके हैं—इस कार्य का महत्व समझना तो दूर हम में से अनेक प्रतिष्ठित और उत्साही कार्यकर्त्ता भी इस बात को नहीं जानते कि इस प्रकार के कार्य की भी आवश्यकता है ! विचारों के महत्व को तो हमारे देश-वासियों ने अभी तक बिल्कुल नहीं समझ पाया है। विचारों के महत्व को तो वे पीछे समझें, अभी तक तो वे प्रचार-कार्य और प्रचारकों के महत्व को भी भली भाँति नहीं जान पाये हैं। यदि वे प्रचार की आवश्यकता को समझ जाएँ, तो यह बात भी उनकी समझ में आ सकेगी कि प्रचार के लिए जिन युक्तियों और प्रमाणों तथा और अंगों की आवश्यकता है वे खोज और अध्य-यन के बिना, विचारकों के उद्योग के बिना कहाँ से आवेंगे ? लोक-सेवकों को यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिए कि यह घोर अज्ञान ही लोक-सेवा के शुभ-कार्य का सब से बड़ा बाधक कारण है, इसलिए उन्हें स्वयं खोज और अध्ययन करने तथा सुनिश्चित कार्य-क्रम तैयार करने के कार्य में लगने के साथ-साथ लोगों को इस कार्य के महत्व को बताने का भी उद्योग करना पड़ेगा। मनुष्य जाति की जितनी अधिक सेवा विचारकों की खोज के कारण हुई है उतनी और किसी उपाय से नहीं हुई। अगर "टाम काका की कुटिया" का लेखक अमेरिका के नीग्रो

(हब्शी) लोगों की दुर्दशा की खोज कर के उसे लोगों पर प्रकट न करता, तो क्या हब्शियों की गुलामी की प्रथा के विरुद्ध उत्तरी अमेरिका की अन्तरात्मा कभी भी इतनी उत्तेजित हो सकती थी ? अगर इङ्गलैंड के चार्ल्स का वहाँ के शहरों में गरीबों की दशा की उनके रहने के घरों की दुर्दशा और उनका पारिवारिक बजट की जाँच करके उनकी गरीबी की हृदय-विदारक दृश्य स्वदेश-वासियों और संसार के सामने न रखते, तो क्या गरीबों की गरीबी दूर करने और उनके लिए मनुष्यों के रहने योग्य घर बनवाने के शुभ कार्य की ओर वहाँ के लोगों का इतना ध्यान आता ? इसलिए यह आवश्यक है कि लोक-सेवक, खोज की, अनुसन्धान की आदत डालें। अपने कार्य के सम्बन्ध में वे जितनी ही अधिक खोज करेंगे, उस कार्य का उन्हें जितना ही अधिक ज्ञान होगा उतनी ही अधिक उनकी सेवा करने की क्षमता और योग्यता बढ़ती जायगी। उदाहरण के लिए—

नगर-सेवा

को ही लीजिए। नगर-सेवा की समस्या के सम्बन्ध में अभी हमारे देश में कितना विकट अज्ञान फैला हुआ है ? बड़े से बड़े शहरों में भी आपको एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा, जिसे अपने नगर की दशा का पूर्ण ज्ञान हो ? नगर-सेवा-कार्य के सम्बन्ध में अभी तक हमारे यहाँ कोई पुस्तक ही नहीं निकली। अंग्रेज़ी में आचार्य शिवराय एन० फेरवानी ने MunicipalEfficiency नाम की एक पुस्तक लिखी है; परन्तु अन्य देशी भाषाओं का तो कहना ही क्या राष्ट्र-भाषा हिन्दी में भी इस विषय पर कोई पुस्तक नहीं ! कोई पुस्तिका भी नहीं !! मासिक-पत्रिका में तथा साप्ताहिक और दैनिक पत्रों में इस विषय के लेख तक नहीं !!! अंग्रेजी जानने वालेलोक-सेवकों को आचार्य

फेरवानी की यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक से उन्हें नगर-सेवा के सम्बन्ध में प्रत्येक नगर-सेवी लोक-सेवक को कितनी पुस्तकें पढ़ने को आवश्यकता है, कितनी रिपोर्टें, ब्लूबुक्स वगैर: पढ़ने की जरूरत है तथा स्वयं खोज करने की कितनी—इन सब में अधिक आवश्यकता है—इस बात का अनुमान हो जायगा। जब तक शहर की अपनी खास जरूरतों का, उसकी तकलीफों और कठिनाइयों का तथा इनको रफा करने के साधनों का पता न हो, तो तब तक शहर के सुधार का कोई निश्चित कार्य-क्रम कैसे बनाया जा सकता है और जब तक कोई निश्चित कार्य-क्रम न हो, तब तक शहर-सुधार के कार्य में सफलता कैसे मिल सकती है? कारगर सेवा-कार्य-क्रम बनाने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि पहले शहर-सुधार के उद्देश से शहर के सब बोर्डों की सब तरह की आर्थिक, सामाजिक, प्राकृतिक, शिक्षा तथा आरोग्य-सम्बन्धी, सब धार्मिक और राजनैतिक जाँच (Survey) करली जाय। जो लोक-सेवक अपने शहर की सेवा करना चाहते हैं, उन्हें प्रतिनिधि-स्वरूप व्यक्तियों, परिवारों और मुहल्लों की दशा की जाँच द्वारा हर एक वार्ड की दशा की पूरी-पूरी जानकारी हासिल करके उसे लिपिबद्ध कर लेना चाहिये। और स्वयं कम से कम नीचे लिखी पुस्तकों का अध्ययन कर लेना चाहिये—

'American Municipal Progress' by Zueblin, published in the Social Science Series by Macmillan, Newyork. Pollockarse Morgan's 'Modern cities', published by Funk & wagra-llis, London.

James's Municipal Functions' and Henry Bruere's 'The New city Government' of the

Municipal League series published by Appoleton, New york.

'Organising the community' by Macclepan in the Century Social Science series New-york and 'Town planning in Madras' by Yaneaster.

इन या ऐसी पुस्तकों के अध्ययन के अलावा लोक-सेवक को अपने यहाँ की म्यूनिस्पैलिटी की रिपोर्टों, सभी प्रमुख शहरों की म्यूनिसिपल रिपोर्टों तथा दूसरे प्रान्तों के प्रमुख शहरों की म्यूनिस्पैलिटियों की रिपोर्टों का अध्ययन तथा उनकी तुलना और म्यूनिस्पैलिटियों के कार्य पर प्रतिवर्ष के सरकारी प्रस्तावों तथा तत्सम्बन्धी सरकारी रिपोर्टों का और म्यूनिस्पैलिटीज-एक्टों का अध्ययन करना चाहिए।

लोक-हित-शास्त्र के विद्यार्थी के लिए मेरे नगर की अधिक से अधिक उन्नति किस प्रकार हो सकती है, इस प्रश्न का अध्ययन परमावश्यकीय है। अपने नगर की म्यूनिस्पैलिटी के बजट को उठालो। देखो कि बजट की भिन्न-भिन्न मदों में कितना खर्च होता है, वह कुल का कितना फीसदी है? क्या हरएक मद में जितना खर्च किया जारहा है, वह उस मद की सार्वजनिक उपयोगिता को देखते हुए ठीक होरहा है, या न्यूनाधिक? दूसरे देशों की, विशेषकर अपने देश व अपने प्रान्त की अच्छी म्यूनिस्पैलिटियों के वजट के प्रति मद के प्रतिशत खर्च से उसकी तुलना करो। इस बात की खास तौर पर जाँच करो कि तुम्हारी म्यूनिस्पैलिटी का दफ्तर वगैरः का खर्च, प्रतिशत के हिसाब से अधिक तो नहीं हो रहा? अगर वह अधिक होरहा है, तो जिन उत्तम म्यूनिस्पैलिटियों में इस मद में प्रतिशत खर्च कम हो रहा है उसकी तुलना द्वारा तथा वहाँ खर्च की कमी के

कारणों को बता कर अपने यहाँ की फिजूलखर्ची कम करने की कोशिश करो।

नगर-सुधार की म्यूनिस्पैलिटी के सुप्रबन्ध को समस्या का अध्ययन करने के लिए अध्ययन-मण्डल (study circles) कायम करो और लोक-सेवी सज्जनों तथा म्यूनिसिपैलिटी के मैम्बरों को इस अध्ययन-मण्डल में शामिल होकर नगर-सुधार की भिन्न-भिन्न समस्याओं का अध्ययन करने के लिए प्रेरित करो। इस बात का अध्ययन करो कि आपकी म्यूनिस्पैलिटी के प्रबन्ध में क्षमता-शास्त्र की दृष्टि से क्या-क्या त्रुटियाँ हैं? काम होने में कितनी देर लगती है? नामंजूर कितना काम होता है? तेली का काम तमोली से तो नहीं लिया जाता? क्या म्यूनिस्पैलिटी के सब साधनों का पूर्ण उपयोग किया जाता है? या कुछ साधन अनुपयुक्त या अल्पप्रयुक्त पड़े रहते हैं? इत्यादि बातों का अध्ययन करके प्रबन्ध सम्बन्धी त्रुटियाँ बताओ और दूसरे देशों, प्रान्तों और नगरों की म्यूनिसिपैलिटियों के आधार पर अथवा अपनी युक्ति से इन त्रुटियों को दूर करने के व्यावहारिक और कारगर उपाय बताओ। नीचे लिखी छः कसौटियों पर अपने नगर की म्यूनिसिपैलिटी के प्रबन्ध को कसो—

१—नगर-वासियों की जरूरतों को सावधानी के साथ पूरी-पूरी शुमार कर ली गई हैं या नहीं?

२—इस तरह मालूम की हुई जरूरतों और उनको रफा करने के साधनों के आधार पर नगर-सेवा का उपर्युक्त कार्य-क्रम बनाया गया है या नहीं?

३—इस नगर-सेवा के कार्य-क्रम की हर एक मद को पूरा करने के लिए सबसे अच्छे, सबसे सुगम और सबसे शीघ्र फल देने वाले उपायों का विकास और उनका अनवरत प्रयोग किया गया है या नहीं?

४—नगर-सेवा के इस कार्यक्रम को पूरा करने के लिए नगर की समस्त कार्यकारिणी शक्तियों का समुचित वर्गीकरण, व्यवस्था और सङ्गठन कर लिया गया है या नहीं ?

५—सेवा-कार्य-क्रम को पूरा करने के लिए माकूल तरीके सोचने, उनकी निगरानी करने और उनसे काम लेने के लिए जो लोग रक्खे गये हैं, वे अपने काम की विशेष शिक्षा पाये हुए, समाज-सेवा के भाव से भरे हुए, सुसंचालित तथा स्थायी रूप से नियुक्त व्यक्ति हैं या नहीं ?

६—कुल नागरिकों में से कितने प्रतिशत में नगर-हित के कामों में स्थायी रूप से दिलचस्पी लेने और नगर-हित की समस्याओं का ज्ञान प्राप्त करने की भावना तथा योग्यता उत्पन्न कर दी गई है ?

इन सब बातों का अध्ययन किये बिना नगर की सुचारु-सेवा करना सम्भव नहीं। जिस क्षेत्र की सेवा करना अभीष्ट हो उसके सम्बन्ध की सभी ज्ञातव्य बातों को जान लेना पहला कार्य है। वैज्ञानिक-पद्धति यही है कि उन्नति का प्रयत्न करने से पहले मामले को समझ लो। किसी बात की वकालत करने से पहले उसकी जाँच तो कर लो। अमेरिका के कई नगरों की म्यूनिसिपैलिटियों ने अपने शहर की दशा और उसकी जरूरतों की पूरी-पूरी जाँच कर ली है। पिट्सबर्ग और कीनलैण्ड की म्यूनिसिपैलिटियाँ इस बात के लिए मशहूर हैं। इस प्रकार की जाँचों के नक्शे लैङ्कास्टर (Lanchaster) की "Town Planning in Madras" नामक पुस्तक में दिये हुए हैं। लोक-सेवक इस विषय का विशेष ज्ञान नीचे लिखी पुस्तकों से प्राप्त कर सकते हैं।

Caroe Aronovicis "The Social Survey" published by Harpea Press, Philadelphia.

Elmer's Technique of Social Survey and Social Efficiency by Proff. S. N. Pherwani M. A.

इस बात की खोज करो कि अपने नगर में वोटरों की कितनी लीगें हैं? कर-दाताओं की कितनी सभाएँ हैं? क्या इन सभाओं की मीटिङ्ग नियमित रूप से होती है? क्या इन मीटिङ्गों में म्यूनिसिपैलिटी के मेम्बरों और कर्मचारियों के कार्यों की आलोचना होती है? क्या आपके यहाँ के नागरिक तथा उनकी संस्थाएँ नगर-हित के सब कार्यों में उचित सहयोग देने को सदैव तैयार रहते हैं? नागरिकों के सङ्गठन के प्रश्न के अध्ययन के लिए Ward की The Social Centre नाम की पुस्तक का, मेम्बरों की शिक्षा और उसके सङ्गठन के प्रश्न के लिए Zeublim की American Municipal Progress नाम की पुस्तक तथा म्यूनिसिपल कर्मचारियों के सुसङ्गठन के प्रश्न के लिए Church की Science of Management नाम की पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए। पिछली पुस्तक Industrial Management Library series में प्रकाशित हुई है। अपने नगर की म्यूनिसिपैलिटी के कार्यों को म्यूनिसिपल कार्यों की बारह कसौटियों पर कसो! प्रबन्ध का जो भाग किसी भी कसौटी पर कसने से खोटा मालूम पड़े उसे ठीक करने की कोशिश करो। बारह कसौटियाँ ये हैं—

१—स्वास्थ्य-सम्बन्धी कसौटी—नगर-निवासियों का स्वास्थ्य-सुधारने, बीमारियों को रोकने और मृत्यु को टालने के लिए आपकी म्यूनिसिपैलिटी क्या कर रही है? क्या आपके शहर की मृत्यु-संख्या प्रान्त अथवा देश और विदेश के दूसरे नगरों की मृत्यु-संख्याओं से सब से कम है? यह मृत्यु-संख्या घट रही है या बढ़ रही है? आरोग्य-संरक्षण-शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान का प्रचार करने के लिए क्या किया जा रहा है? क्या शिक्षा-

विभाग इस सम्बन्ध में अपने कर्त्तव्य का पूर्णतया पालन कर रहा है? क्या प्रजनन-शास्त्र का उपयोग किया जा रहा है? बच्चों और जच्चाओं की सेवा-शुश्रूषा का क्या प्रबन्ध है? बच्चों के लिए दूध का प्रबन्ध कैसा है? बाल-माताओं की शिक्षा का क्या प्रबन्ध है? शराबखोरी, उपदंश, तपेदिक आदि बीमारियों से ग्रस्त लोगों को सन्तानोत्पत्ति करने से रोकने का क्या प्रबन्ध है? स्कूल के लड़कों के लिए शारीरिक व्यायाम और खेल-कूदों का क्या प्रबन्ध है? मातृत्व की शिक्षा तथा खुली हवा में शिक्षा देने का कुछ प्रबन्ध है? क्या आपके नगर के स्कूलों में विद्यार्थियों के दाँतों को साफ रखना सिखाया जाता है? जनता को नगर के स्वास्थ्य की दशा का, मृत्यु-संख्या और रोगी-संख्या का ज्ञान कराने के लिए क्या किया जाता है? क्या इस विषय के तुलनात्मक परचे अथवा पोस्टर प्रति माह मुहल्ले-मुहल्ले में चिपकाए जाते हैं? क्या म्यूनिसिपल बजट का कम-से-कम तीस फीसदी हिस्सा नगर के स्वास्थ्य के लिए खर्च किया जाता है? क्या हर एक वार्ड में स्वास्थ्य-सम्बन्धी छोटा-सा पुस्तकालय है? इन और ऐसे सभी प्रश्नों के सम्बन्ध में खोज और अध्ययन की आवश्यकता है। नगर के सर्वश्रेष्ठ स्वस्थ परिवारों के इतिहास, जीवन-चरित्र तथा उनकी जीवन-चर्चा इकट्ठी करके छपाइए, जिससे दूसरों को प्रोत्साहन तथा पथ-प्रदर्शन हो।

२—शिक्षा-सम्बन्धी कसौटी—कितनी फीसदी आबादी के लिए उचित शिक्षा का प्रबन्ध है? कितने फीसदी को स्कूलों में शिक्षा दी जा रही है? शिक्षा की भिन्न-भिन्न श्रेणियों की उत्तमता तथा प्रति विद्यार्थी खर्च का पता लगाइए। क्या जो शिक्षा दी जा रही है उससे नगर-निवासियों का नैतिक सुधार हो रहा है? क्या उस शिक्षा के फलस्वरूप नगर-निवासियों में परस्पर प्रेम, सद्भाव, तथा ज्ञान, कौशल और आत्म-संयम की

वृद्धि हो रही है? या आपसी ईर्ष्या-द्वेष से परेशान, जीवन की वास्तविकताओं से दूर, हास्य-कला और ललित कलाओं की दिशा में कुछ भी कर सकने में असमर्थ, और नशेबाजी, ऐय्याशी, जुए, पाप तथा अपराधों की दासता में निमग्न हो कर अपने जीवन के घातक बन बैठे हैं? जितने बालक स्कूल में पढ़ने लायक हैं, क्या उनकी ज्यादा से ज्यादा फी सदी तादाद स्कूलों में शिक्षा पा रहे हैं? जितने बालक स्कूल में भरती हैं क्या उनमें हाजिरी की तादाद बहुत अच्छी है? क्या इन सबको पूर्ण प्रारम्भिक शिक्षा मिल जाती है? और क्या यह शिक्षा सर्वोत्कृष्ट शिक्षा है? और क्या सब बातों पर ध्यान रखते हुए शिक्षा पर कम-से-कम खर्च हो रहा है? यानी शिक्षा पर खर्च होने वाले रुपये की पाई-पाई का पूर्ण सदुपयोग हो रहा है? सर्वोत्तम शिक्षा वह है जिसमें विद्यार्थी के पार्थिव घेरे का यानी देश की आवश्यकताओं का स्वयं विद्यार्थी की प्रवृत्ति और अवस्था का तथा तत्कालीन सामाजिक आवश्यकताओं का पूर्ण ध्यान रक्खा गया है। क्या आपके यहाँ की शिक्षा में इन बातों का ध्यान रक्खा है? सत्संग का, सम्मिलित खेलों, गानों, वाद्यों और नाटकों आदि का प्रबन्ध है? John Adams की Modern Developments in Education Practice नामक पुस्तक का अध्ययन करो। पुस्तक University of London Press से प्रकाशित हुई है।

३—जानोमाल की रक्षा सम्बन्धी कसौटी—आग से बचाने, आग बुझाने आदि का प्रबन्ध करके, पुलिस का तथा रोशनी और रास्तों तथा चौराहों पर सवारियों के निकलने का पर्याप्त प्रबन्ध करके नगर की म्यूनिसिपैलिटी आपके नगर की जानोमाल की रक्षा का कैसा इन्तजाम कर रही है? आग से होने वाली हानि में स्वयं मनुष्यों की असावधानी का कितना हिस्सा

है? इस प्रश्न का अध्ययन कीजिये और इस असावधानी से होने वाली हानि को लोकमत की शिक्षा द्वारा बचाइये। इस सम्बन्ध में चित्रों द्वारा प्रचार करने के लिये Community Life and Civic Problems नाम की पुस्तक के दो सौ बाईसवें पृष्ठ पर दिये गये चित्रों से बहुत सहायता मिलेगी। शहर में रोशनी के प्रबन्ध में चोरी और बदइन्तजामी से कितनी फिजूलखर्ची होती है, इस प्रश्न की खोज तथा उसका अध्ययन करो और अपने नगर की म्यूनिसिपैलिटी को भारी हानि से बचाओ।

४—सार्वजनिक सदाचार-सम्बन्धी कसौटी—सार्वजनिक सदाचार की रक्षा किस हद तक की जा रही है? नशेख़ोरी, दुराचार, जुआरीपन और हुल्लड़बाजी की रुकावट किस हद तक कामयाब हुई है? क्या गन्दे और छोटे घरों में कई परिवारों को एक साथ रहने से बचने के लिए पर्याप्त प्रबन्ध किया गया है? लोगों को नशेखोरी की हानियाँ बताने के लिए, उनको नशेखोरी से बचाने के लिए उनके लिए निर्दोष विनोदों और स्वस्थ जीवन तथा कारखानों आदि का क्या प्रबन्ध किया गया है? अपने नगर की वेश्यागमन-सम्बन्धी समस्या का अध्ययन करो? वेश्याएँ इस पाप-मय जीवन की ओर क्यों प्रवृत्त होती हैं, इसके कारणों को खोज और फिर उन्हें मिटाने का उद्योग करो। वेश्यापन को बन्द या कम करने के लिए जो उपाय काम में लाने चाहिए क्या वे सब आपके शहर में काम में लाये जा रहे हैं, इस विषय का अध्ययन करो।

५—बच्चों और जच्चाओं की शिक्षा-सम्बन्धी कसौटी—बच्चों और जच्चाओं की जान बचाने के लिए आपकी म्यूनिसिपैलिटी क्या कर रही है? न्यूजीलैण्ड में जितने बच्चे पैदा होते हैं, उनमें से प्रति सहस्र सैंतीस एक वर्ष के होने से पहले ही मर जाते हैं,

परन्तु यहाँ इस उम्र तक छीज जाने वाले कच्चे फलों की—बच्चों की तादाद, इसकी दस-पन्द्रह गुनी यानी चार सौ से लेकर छः सौ प्रति सहस्र है ? प्रतिवर्ष सैंकड़ों बच्चों को बेमौत मरने से बचाने के लिए आपकी म्यूनिसिपैलिटी क्या कर रही है ? बच्चों और जच्चाओं के लिए शुद्ध दूध का प्रबन्ध करने के लिए आपकी म्यूनिसिपैलिटी ने क्या किया है ? क्या बाल-हितकारी केन्द्रों में अथवा कन्या पाठशालाओं में मातृत्व की—बच्चों के लालन पालन की—शिक्षा दी जाती है ? दाइयों की शिक्षा का कैसा प्रबन्ध है ? क्या पर्याप्त शिक्षित और अपने कार्य में दक्ष दाइयाँ नगर में हैं ? मातृत्व और शिशुपालन के सम्बन्ध में नीचे लिखी पुस्तकें उपयोगी हैं—

Feeding and care of Baby by Dr. Truby King issued by the Society for the health of women and children published by Macmillan 1918.

The Mother and the infant by Edith Ekhard published by Bell & sons 1921.

६—सार्वजनिक दान-सम्बन्धी कसौटी—शहर भर में जितने धर्मादे या दातव्य संस्थाएँ हैं, उन सब का क्या कोई रजिस्टर है ? सार्वजनिक दान के सुप्रबन्ध के लिए सार्वजनिक दान-कमेटी नाम की कोई कमेटी है ? दान पात्रों को ही दिया जाय, इस बात का आपके शहर में क्या प्रबन्ध है ? क्या जो दान दिया जाता है वह देशकालावस्था का, पात्रापात्र का विचार करके दिया जाता है ? क्या उससे शहर की गरीबी कम हो रही है ? क्या दान सुसङ्गठित ढङ्ग से दिया जा रहा है ?

७—नगर-व्यवस्था-सम्बन्धी कसौटी—क्या आपका नगर किसी सुव्यवस्था के अनुसार बसाया गया है ? तो पहले से बसे हुए नगर को सुव्यवस्थित करने के लिए किसी सुन्दर

योजना के अनुसार काम किया जा रहा है? क्या इस व्यवस्था अथवा योजना में वर्त्तमान अथवा स्थायी विकास-सम्बन्धी, उद्योग-धंधों और विश्राम तथा विनोद-सम्बन्धी आवश्यकताओं का पूर्ण ध्यान रक्खा गया है? क्या जिस स्थान पर नगर बसाया गया है, वह अच्छा है? दूसरे शहरों तथा गाँवों के लिए सड़कों, रेलों और मार्गों का प्रबन्ध कैसा है? शहर की सफाई और उसके स्वास्थ्य का प्रबन्ध कैसा है? पानी काफी मिल जाता है? क्या पानी मकानों के सब खनों तक पहुँच जाता है? क्या पानी साफ और नीरोग मिलता है? नालियों और नालों का मैला ढोने, बहाने और गाड़ने आदि का प्रबन्ध कैसा है? कूड़े-करकट तथा मरे जानवरों आदि के ढोने आदि का, महामारियों के रोकने का प्रबन्ध कैसा है? क्षयी का अस्पताल कहाँ है? शहर को आग से और भूकम्पों से बचाने का क्या प्रबन्ध है? सैनफ्रांसिस्को (अमेरिका) में आग तथा भूकम्पों से शहर की रक्षा करने के लिए पचास लाख खर्च कर दिये गये, लेकिन इस पचास लाख की वजह से पैंतीस करोड़ का नुकसान बच गया। शहर में गलियों का प्रबन्ध कैसा है? वे वृन्दावन की कुञ्ज-गलियों अथवा बनारस की गलियों की तरह से तङ्ग, गन्दी और खतरनाक तो नहीं हैं? मुहल्ले-मुहल्ले में खेल-कूद के मैदानों, जनाने-मर्दाने पार्कों वगैरः का कैसा इन्तजाम है? स्नानागारों, सभा-भवनों आदि का कैसा प्रबन्ध है? क्या आपके शहर में फैक्टरियों के लिए सस्ती जमीनों का काफी इन्तजाम है? शहर के आस-पास की बस्तियों का प्रबन्ध कैसा है? शहर की सुव्यवस्था के लिए शहर की अवस्था की खोज (Civic survey) करो। पहले इस सम्बन्ध में एक प्रश्नावली बनाओ। फिर उन प्रश्नों के उत्तरों से जो सामग्री मिले, उसको इकट्ठा करके उसके नक़शे वगैरः

बनाओ। इस सामग्री, नक्शों तथा तालिकाओं की व्याख्या करो और इन सब बातों के परिणामों को मूर्त्तियों के रूप में उपस्थित करो। प्रश्नावली की मदों का बहुत सुन्दर ब्यौरा नौलिन् साहब (Nolen) ने अपनी New Ideals in the planning of cities and towns and villages नामक पुस्तक में दिया है। अमेरिका में लोगों के रहने के घरों के नौ विभाग इस प्रकार किये गये हैं—(१) एक परिवार का घर, (२) दो परिवारों का घर, (३) एक परिवार के लिए किरायेदारों के रहने के लिए अलग स्थान-सहित घर, (४) मर्दाने होटल, (५) स्त्रियों के ठहरने के लौज, (६) पुरुषों के ठहरने के लिए लौज, (७) स्त्रियों के लिए होटल, (८) किरायेदारों के लिए घर, (९) बोर्डिङ्ग हाउस।

नगर व्यवस्था के सम्बन्ध में निम्नलिखित पुस्तकें पठनीय हैं—
Garden cities of tomorrow by Elenezer Howard
Town planning in Theory and Practice by Unmin

पहली पुस्तक सस्ती होने के साथ-साथ बहुत ही स्फूर्त्ति-प्रदायक है। दूसरी के दाम अधिक हैं; परन्तु अपने विषय की प्रामाणिक पुस्तक है।

८—बजट की क्षमता-सम्बन्धी कसौटी—जनता को बजट सम्बन्धी आवश्यक बातें ज्ञान कराने का क्या प्रबन्ध है? क्या बजट-सम्बन्धी महत्वपूर्ण बातें पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजी जाती हैं? जनता को इन बातों का ज्ञान कराने के लिए कोई प्रयत्न किया जाता है? क्या हिसाब ठीक तरह से पेश किया जाता है और क्या बजट पर स्वतन्त्रतापूर्वक पूरी बहस की जाती है? अलग-अलग मदों के लिए बजट में जितना रुपया रक्खा जाता है, वह प्रत्येक मद के महत्व और उसकी सार्वजनिक उपयोगिता को पूर्णतया ध्यान में रख के रखा जाता है, या वैसे ही? क्या फिर

उसका खर्च मितव्ययिता के साथ किया जाता है? अपनी म्यूनिसिपैलिटी के हिसाब रखने के तरीके की जाँच कीजिये और देखिये कि उसमें हिसाब की गड़बड़ी के, गबन के, कितने मौके हैं? कोशिश कीजिए कि आपकी म्यूनिसिपैलिटी का हिसाब दर्पण की तरह साफ रहे।

९—पब्लिक वर्क-सम्बन्धी कसौटी—सड़कें, इमारतें वगैरः बनाने तथा स्टोर खरीदने के लिए स्टैण्डर्ड स्पेसीफिकेशन—नपे तुले नमूने हैं? इन नमूनों की जाँच करने के लिए कोई प्रयोग-शाला अथवा अन्य प्रबन्ध है? सड़कें बनाने का, भिन्न-भिन्न तरह तथा भिन्न-भिन्न चौड़ाई की सड़कें बनाने का फी-मील खर्चों का हिसाब रक्खा जाता है? गलियों की रोशनी तथा सिंचाई और सफाई वगैरः की जाँच भी इस तरह की जाती है या नहीं?

१०—लोकोपयोगी कार्यों-सम्बन्धी कसौटी—बिजली, रोशनी ट्राम, टेलीफोन वगैरः लोकोपयोगी कार्य आपकी म्यूनिसिपैलिटी स्वयं करती है या नहीं?

११—सार्वजनिक भूस्वामित्व की कसौटी—आपके नगर की म्यूनिसिपैलिटी को अपने कार्य के लिए जितनी इमारतों की आवश्यकता है क्या वे सब म्यूनिसिपैलिटी की हैं, या किराये की? उसके अपने भावी विकास के लिए जितनी जमीन की आवश्यकता है, उसमें से कितनी जमीन स्वयं म्यूनिसिपैलिटी की है? क्या जमीनों के दाम और उनके किराये जमींदार मन-माने बढ़ा देते हैं, या म्यूनिसिपैलिटी ने लोगों के लिए कम किराये पर अच्छे मकानों का प्रबन्ध कर दिया है?

१२—पार्कों और खेल-मैदानों-सम्बन्धी कसौटी—प्रत्येक वार्ड में फीसदी कितनी ज़मीन मकानों के लिए है और कितनी पार्कों तथा खेल-कूद के मैदानों के लिए? क्या हर एक गृहस्थ

अपने घर से चल कर पाँच मिनट के अन्दर खुले मैदान में पहुँच सकता है? क्या पेड़ों की गणना कर ली गयी है? क्या आपके नगर में "हरियाली-दिवस" द्वारा शहर में हरियाली धीरे-धीरे बढ़ाई जा रही है?

जर्मनी ने अपने नगरों की उन्नति वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर की है। वहाँ के ढङ्गों, तरीकों और कार्यक्रमों का अध्ययन करो तथा उनमें से जो अपने नगर के लिए उपयोगी प्रतीत हों, उनका उपयोग करने में तनिक भी सङ्कोच मत करो।

इस प्रकार नगर-सेवी सहज ही इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि नगर-सेवा के लिए कितने स्वाध्याय की, कितने अध्ययन और अनुसन्धान की आवश्यकता है?

यह सब उदाहरणात्मक है।

एक ही विषय के पूर्ण अध्ययन का एक ढाँचा आगे दिया जाता है। मान लीजिये, आपका समाज बीमारियों और दुर्घटनाओं आदि से अपनी रक्षा का प्रबन्ध कैसे करता है? किन-किन एहतियातों से काम लेता है; इस विषय से जानकार होना चाहते हैं तो आपको निम्नलिखित बातों का अध्ययन करना होगा—

शहर के स्वास्थ्य-विभाग का सङ्गठन कैसा है? विभाग के कर्मचारियों के कर्त्तव्य और उनके वास्तविक कार्य क्या हैं? स्वास्थ्य-निरीक्षकों की नियुक्ति की क्या आवश्यकता है? स्वास्थ्य निरीक्षकों के निरीक्षण के बारे में सम्भवतः क्या-क्या आपत्तियाँ की जा सकती हैं? स्वास्थ्य-निरीक्षकों में व्यक्तिगत और अपने व्यवसाय-सम्बन्धी क्या-क्या गुण होने चाहिए? इन गुणों से सम्पन्न आदर्श व्यक्ति कहाँ मिल सकता है? अपने शहर के स्वास्थ्य का नियम-पूर्वक निरीक्षण कराने के लिए किन-किन

साधनों से काम लेना चाहिए? खाद, मल-मूत्र और कूड़े-करकट की तथा सड़े पानी के कुओं और खुली नालियों की उपेक्षा से क्या-क्या हानियाँ होती हैं? स्वास्थ्य-विभाग के अधिकारी को अपने अध्ययन-मण्डल में बुलाइये और उससे उसके कार्य का विवरण सुनिये तथा उस सम्बन्ध में उचित और आवश्यक प्रश्न पूछिए। परन्तु इससे भी अच्छा यह होगा कि आपका मण्डल स्वयं किसी मकान, कुएँ या पाखानों की सफाई के काम में योग दे या किसी मकान में चीजों को सड़ने से बचाने वाली, हानिकर कीटाणुओं को मारने वाली और बदबू दूर करने वाली औषधियों का, पोटाशपरमेगनेट और फिनाइल वगैरः का प्रयोग करे, जिससे कि उस मकान के निवासी इन चीजों के प्रभाव को अपनी आँखों से देख सकें। इस समय आपके नगर में नागरिकों के स्वास्थ्य की रक्षा किस प्रकार की जा रही है? उसमें क्या-क्या सुधार हो सकते हैं? इस सेवा-कार्य में लोक-सेवकों को क्या-क्या अवसर मिल सकते हैं? साधारण नागरिक इस काम में किस प्रकार सहायता कर सकते हैं? इन बातों का बुद्धिमत्तापूर्ण वर्णन लिखने से आपके विचार स्थिर और स्पष्ट हो जायँगे। इस सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त करने अथवा अमली सेवा करने के लिए स्वास्थ्य-विभाग के अफसर सिविल सर्जन, योग्य डाक्टर आदि से परामर्श और सहायता लेना अच्छा है!

इसी प्रकार पुलिस-विभाग, शिक्षा-विभाग, इञ्जीनियरिङ्ग-विभाग आदि के अध्ययन के लिए ढाँचे बनाये जा सकते हैं।

अपने नगर की म्यूनिसिपैलिटी के सङ्गठन का अध्ययन करके उसका वर्णन कीजिए। नागरिकों के कर्त्तव्य क्या हैं? इन कर्त्तव्यों के प्रति सत्पुरुषों की उदासीनता के उदाहरण खोजिए और बताइये कि आपकी समझ में इन नागरिकों की

इस शोचनीय उपेक्षा के मुख्य कारण क्या हैं? क्या जो मनुष्य अपने पेट और परिवार के पीछे अपने नगर-हित के कार्यों की पूर्ण उपेक्षा करता है वह देश-भक्त कहलाने योग्य है?

अपने नगर के मानचित्र के साथ शहर भर के सार्वजनिक पुस्तकालयों और वाचनालयों के प्रारम्भिक इतिहास की रिपोर्ट तैयार करवाइये। यह इतिहास सविस्तार होना चाहिए, जिससे सफल व्यक्तिगत उद्योगों के, तथा प्रारम्भ में छोटे प्रयत्नों के धीरे-धीरे विशाल संस्था का रूप धारण करने वाली संस्थाओं के ज्ञान से आपके मण्डल के सदस्यों को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा। पुस्तकालय कमेटी पहले-पहल किसने कायम की? आरम्भ में उन्हें कितने काल तक कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा? अन्त में उन पर विजय कैसे पाई? लोक-सेवक इन पुस्तकालयों की उपयोगिता किस प्रकार बढ़ा सकते हैं? इन प्रश्नों का अध्ययन कीजिए। इसी प्रकार अपने नगर की रात्रि-पाठशालाओं की गणना कीजिए तथा उनका इतिहास तैयार कराइए। पाठशाला किसी एक व्यक्ति के प्रयत्न का परिणाम है, या किसी सङ्गठित समाज अथवा समुदाय के प्रयत्नों का? उसको कितनी सहायता मिलती है? कहाँ से? फीस क्या ली जाती है? प्रबन्ध कैसा है? उनको किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर इतिहास में होना आवश्यक है। इन रात्रि-पाठशालाओं में पढ़ने से जिनका जीवन उन्नत हुआ हो, उनकी स्फूर्ति-प्रदायक गाथाएँ भी इतिहास में दीजिए। पाठशाला कमेटी के मेम्बर, अपने सत्परामर्श से स्वयं अध्यापन-कार्य करके अथवा उसकी छात्र संख्या बढ़ा कर रात्रि-पाठशाला की सहायता किस प्रकार कर सकते हैं, यह अपने इतिहास में बताइये। इन रिपोर्टों के लिए सामग्री इकट्ठा करने के लिए पाठशाला का निरी-

क्षण करना पड़ेगा, उसकी रिपोर्टों की फाइलें पढ़नी होंगी, तथा पाठशाला के हेडमास्टर, मंत्री, हितैषियों और पुराने विद्यार्थियों से बात-चीत करनी पड़ेगी। इतिहास का मुख्य उद्देश्य लोक-सेवकों को यह बताना होगा कि वे ऐसी पाठशालाओं की स्थापना या उनकी सहायता किस प्रकार कर सकते हैं?

इस तरह अपने नगर की परोपकारिणी संस्थाओं का अध्ययन कीजिए। अपने शहर के अनाथालयों धर्मशालाओं, सरायों होटलों, अजायबगृहों, अस्पतालों और दीन-गृहों की एक तालिका बनाइये। योग्य पथ-प्रदर्शक की संरक्षता में इन संस्थाओं के मंत्री या प्रबन्धक से आज्ञा लेकर उनका निरीक्षण कीजिए। निरीक्षण की रिपोर्ट में संस्था की स्थापना का इतिहास हो, उसकी तैयारी, उसके प्रबन्ध, उसको मिलने वाली सहायता तथा उस संस्था की उपयोगिता का वर्णन हो। क्या यहाँ कंजर जातियों की समस्या का हल करने का कोई प्रयत्न किया गया है? वे भिन्न-भिन्न मार्ग क्या हैं, जिनके अनुसार दूसरे देशों अथवा नगरों ने इन जातियों की समस्या का हल करने में सफलता पाई है। लोक-सेवक उस परोपकारिणी संस्था की सहायता किस प्रकार कर सकते हैं? जिन अनाथों का घर, दर तथा सर्वस्व अनाथालय ही है, उनकी सहायता लोक-सेवी नागरिक कैसे कर सकते हैं? जो नागरिक अनाथालयों में प्रवेश पाने योग्य हैं, उनको उनमें प्रवेश पाने के लिए कैसे प्रोत्साहित किया जा सकता है? इन सब प्रश्नों के उत्तर परोपकारिणी संस्था-सम्बन्धी रिपोर्ट में होने चाहिए।

सड़कों पर पड़े रहने वाले लूले-लङ्गड़े और अन्धे भिक्षुकों की दैनिक आय की औसत का पता लगाइये। इस जाँच में विश्वासनीय सूचना पाने के लिए बहुत ही बुद्धिमानी की आवश्यकता है। काफी सहानुभूति और धैर्य से काम लेना होगा

तथा समय भी अपेक्षाकृत अधिक ही देना होगा। परन्तु अगर जाँच अच्छी और सच्ची हो गयी, तो जाँच से प्राप्त ज्ञान से, भारी लाभ पहुँचेगा।

इसी प्रकार मद्य-पान-सम्बन्धी समस्या का विशेष अध्ययन किया जा सकता है? नगर में मद्य का व्यापार कैसे होता है, जाँच करके लिखिए। कितनी दुकानें हैं? लोग क्या नशा करते हैं? कौन-कौन सी जातियों में नशेखोरी प्रचलित हैं? इन जातियों में नशेखोरी अधिक होने के क्या कारण हैं? मादक-द्रव्यों पर कर-सम्बन्धी सरकारी नीति से नशेखोरी पर क्या असर पड़ता है? नशेखोरी से होने वाली हानियों के व्यक्तिगत उदाहरण इकट्ठे करके उनका वर्णन कीजिये। इसी प्रकार नगर को अन्य उपयोगी समस्याओं का स्वाध्याय कीजिये।

गाँवों की समस्या का स्वाध्याय

हमारे देश में अभी गाँवों की समस्याओं के सम्बन्ध में अनुसन्धान की कितनी अधिक आवश्यकता है? इतनी समस्यायें अभी यों ही पड़ी हुई हैं? उनका हल होना तो दूर उनके सम्बन्ध में पूरी जानकारी भी किसी को नहीं है। पब्लिक और सरकार दोनों ही अँधेरे में टटोल रही हैं। लोक-सेवियों के लिए इस दशा में स्वाध्याय का सुविशाल क्षेत्र पड़ा हुआ है।

खेती की तरक्की के बारे में खोज करने के लिए सरकार की तरफ से अनुसंधान विभाग (Research department) काम कर रहा है; परन्तु इस महकमे से देश की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती। सैमहिगिन बोटम साहब का कहना है कि भारत सरकार के "कृषि विषयक खोज-सम्बन्धी कार्य-क्रम का सब से बड़ा दोष यह है कि वह देश की आवश्यकताओं की दृष्टि से बहुत ही कम है!" पहले तो इस महकमे की खोज का

दायरा ही बहुत ही कम है।" वह ग्रामों की समस्याओं के संसार में से केवल एक जिले का अध्ययन कर रहा है—केवल इस सम्बन्ध की खोज करता है कि कौन-कौन से नाजों की खेती करने से खेती की पैदावार और उसकी कीमत बढ़ सकती है? कौन-सा बीज उत्तम है? फसल की बीमारियों और फसल के दुश्मन कीड़े-मकोड़ों को मारने के लिए क्या उपाय किये जाने चाहिए? और जिले की खोज करने के लिए भी उसके पास काफी साधन नहीं है! इन बातों से लोक-सेवक स्वाध्याय के लिए गाँवों की समस्याओं की विशालता का अनुमान कर सकेंगे।

गाँवों की शिक्षा को ही ले लीजिये। अभी तक हमारे यहाँ यह सवाल ही तय नहीं हुआ कि गाँवों के लिए किस प्रकार की शिक्षा उपयोगी होगी? अभी तक, शहरों की पढ़ाई गाँवों में पढ़ाई जा रही है! और कैसी पढ़ाई? जो शहरों के लिए भी सर्वोत्तम नहीं है। निरक्षरता दूर करने का भी कोई निश्चित और सुव्यवस्थित कार्यक्रम नहीं है। शिक्षा-सम्बन्धी भिन्न-भिन्न पद्धतियों का अध्ययन कीजिये। उनमें से सर्वोत्तम पद्धति को चुन लीजिये? और फिर इस बात का अध्ययन कीजिये कि अपनी देश-कालावस्था के अनुसार कौन-सी पद्धति सब से अधिक व्यावहारिक रहेगी? मि० डरगार्टन, माँटेसेरी, क्रैचैज आदि पद्धतियाँ क्या हैं? हिन्दुस्तान जैसे गरीब देश में इन पद्धतियों में कौन-सी पद्धति ग्राम-निवासियों को सस्ती से सस्ती और अच्छी-से अच्छी शिक्षा दे सकती है, इस प्रश्न का अध्ययन और अनुसन्धान करना लोक-सेवा के सर्वोच्च कार्यों में से, स्वाध्याय के सर्वोत्तम विषयों में से है। कृषि-विषयक शिक्षा की समस्या भी अभी यों ही पड़ी हुई है। ग्राम-निवासियों की संस्कृति और उनकी बौद्धिक पूँजी की आम सतह क्या है? जब तक यह न मालूम हो जाय, तब तक इस बात का निर्णय कैसे

किया जा सकता है कि कृषि-विषयक विशेष शिक्षा से किसान कितना लाभ उठा सकते हैं? भैंस को सङ्गीत की शिक्षा स्वयं तानसेन भी दे, तब भी कोई लाभ नहीं होगा। उसी प्रकार जिन लोगों में किसी शिक्षा को प्राप्त करने की प्रवृत्ति और सामर्थ्य नहीं है उनको वह शिक्षा देना व्यर्थ है। परन्तु क्या अभी तक हमने अपने ग्राम-निवासियों की मानसिक प्रवृत्तियों और उनकी मानसिक सामर्थ्य की माप कर पाई है? किसानों के ऋण की समस्या का अध्ययन सैकड़ों लोक-सेवियों का जीवन-कार्य हो सकता है। किसानों के ऋण के कारण क्या-क्या हैं? इस ऋण में से कितना ऋण उत्पादक है और कितना अनुत्पादक? अनुत्पादक ऋण को किस प्रकार रोका जा सकता है? ऋण की मात्रा को किस प्रकार कम किया जा सकता है? ऋण का भार क्या है? वह किस प्रकार हल्का किया जा सकता है? किसानों की सम्पत्ति, उनकी आमदनी और मालगुजारी से उनके ऋण का अनुपात क्या है? खेती का लगान, मजूरी वगैर: के लिए किसानों को रुपये की जो जरूरत पड़ती है, उसको पूरा करने के लिए इस समय उनके पास क्या-क्या साधन हैं? क्या ये साधन पर्याप्त हैं? इन साधनों में क्या-क्या दोष हैं? व्याज की दर क्या है? ऋण के साधनों में क्या-क्या सुधार संभव हैं? इन सुधारों से ऋण का भार कम करने में कितनी सहायता मिलेगी? दूसरे देशों ने इन समस्याओं के हल करने के लिए किन-किन उपायों से काम लिया है? आपके देश की देशकालावस्था के अनुसार उनमें से कौन से उपाय काम में लाये जा सकते हैं? इन सब प्रश्नों का स्वाध्याय बहुत ही मनोरञ्जक, उपयोगी और शिक्षाप्रद है! इन समस्याओं के आधार पर ही गाँवों का पुनस्सङ्गठन सम्भव है।

तकावी-पद्धति में क्या-क्या दोष हैं? वे दोष कैसे दूर किये

जा सकते हैं? सहयोग-समितियों के दोषों का भी अध्ययन कीजिये और उन्हें दूर करने के उपाय बताइये। गाँव वाले तकावी-पद्धति और सहयोग-समिति के बारे में क्या राय रखते हैं, इसकी जाँच कीजिये। उनकी रायों में जो गलतियाँ हों वे उन्हें बताइये, समझाइये तथा उनकी माकूल शिकायतों की जाँच करके उन्हें दूर कराइये। ये सब बातें स्वाध्याय द्वारा ही सम्भव हैं।

सरकार की ओर से कृषि-समस्या के भिन्न-भिन्न अङ्गों के जो विशेषज्ञ हैं, उनकी विशेषज्ञता की क्या उपयोगिता है? किसानों को उस विशेषज्ञता से क्या लाभ है? मैसर्स हरिदत्त-सिंह एण्ड संस फ्रूट फार्मर्स एण्ड नर्सरी मैन के सरदार हरिदत्त-सिंह का यह कथन कहाँ तक ठीक है कि "ज्यादातर हिन्दुस्तान में कृषि-विशेषज्ञ कहलाने वाले लोगों का ज्ञान दिखाऊ तथा उथला होता है। उन्हें खेती के असली काम का कोई निजी अनुभव नहीं होता। इस महकमे के ऊँचे-से-ऊँचे अफसर से लेकर नीचे-से-नीचे कर्मचारी अनिश्चितता के भँवर में गोते खा रहे हैं। उन्होंने प्रयोगशाला में बहुत-से संग्राम जीते होंगे; परन्तु उन्होंने जेठ के जलाने वाले सूर्य की छत्रछाया में, भारत की भूमि पर, खेतों की प्रयोगशाला में कुछ भी नहीं किया! वे एक बात में विशेषज्ञ होते हैं लेकिन दूसरी बातों से बिलकुल कोरे।" अगर इस कथन में कुछ भी सत्य है, तब इस समस्या के सम्बन्ध में अभी कितना अज्ञान है इस बात का अनुमान कीजिये।

जमीन बन्धक रखने वाली बैंकों की क्या उपयोगिता है? ऐसी किसी अच्छी बैङ्क के संगठन और उसके संचालन-सम्बन्धी नियमों तथा सिद्धान्तों का अध्ययन कीजिये और अपने यहाँ एक जमीन-बन्धक रखने वाली बैंक की योजना बनाइये।

शाही कृषि-कमीशन के चेयरमैन ने संयुक्त प्रान्तीय सरकारी कृषि-विभाग के डाइरेक्टर से पूछा कि "क्या आपके सूबे में

किसानों के कर्ज का शुमार किया गया है ?" डाइरेक्टर साहब ने उत्तर दिया, "नहीं ! मुझे भय है, इस विषय में मैं बहुत कम जानता हूँ। इसलिए इस सम्बन्ध में कोई भी उपयोगी बात नहीं बता सकता।"

इस बात को आज आठ वर्ष हो गये; परन्तु अभी तक कर्ज की पूरी-पूरी शुमार नहीं हो पाई। जोतों के औसत आकार की भी जाँच नहीं हुई है, और कृषि-विभाग के डाइरेक्टर साहब का कहना है कि "सबसे पहले मैं यह चाहूँगा कि गाँवों के कुल समूहों की पूरी-पूरी आर्थिक जाँच की जाय। यह काम सबसे पहले करने का है।"

यद्यपि तब से इस सम्बन्ध में कई काम किये जा चुके हैं। बैंकिङ्ग जाँच कमेटी की रिपोर्टों में इस विषय की सामग्री मिल सकती है। संयुक्तप्रान्त में कृपकों को कर्ज की पीड़ा से मुक्त करने के उपाय सोचने वाली कमेटी की जाँच के फलस्वरूप जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उससे इस विषय की काफी सामग्री मिल सकती है। Malcom Lyall Darling की The Punjab Peasant in Prosperity and Debt. नामक पुस्तक इस विषय का बोध कराने वाली बड़ी अच्छी पुस्तक है। वर्त्तमान यूजरस लोन्स (अति व्याज-विरोधी) ऐक्ट में क्या-क्या संशोधन होने चाहिए, जिससे वे ग्रामवासियों पर इस सम्बन्ध में जितनी आपत्तियाँ तथा बेईमानियाँ होती हैं, उनको रोकने में बहुत हद तक कारगर हो सकें। ऐग्रीकल्चरल लोन्स ऐक्ट में क्या-क्या संशोधन होने चाहिए जिससे किसानों को खेती की जरूरतों और तरक्की दोनों के लिए उससे रुपये की मदद मिल सके ? दूसरे देशों के ऐसे ऐक्टों का अध्ययन कीजिए जहाँ के ऐक्टों से सब से अधिक लाभ पहुँचा हो। उससे अपने देश की परि-स्थितियों के अनुसार काम लीजिए।

गाँवों की आर्थिक दशा की जाँच का प्रश्न बहुत ही व्यापक और महत्त्वपूर्ण है। इस जाँच की आवश्यकता अब पब्लिक और सरकार दोनों ही मानने लगे हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में अभी पर्याप्त परिश्रम नहीं किया गया। सरकार द्वारा इकट्ठी की हुई कुछ सामग्री अब तैयार हो गई है, परन्तु लोक-सेवकों ने इस ओर अभी विशेष उद्योग नहीं किया। गाँवों की सेवा करने के लिए जो लोक-सेवी कटिबद्ध हों, उन्हें गाँवों की आर्थिक दशा की जाँच के काम को अपने हाथ में लेना चाहिए। इस विषय की प्रश्नावली संयुक्त प्रान्तीय ऐग्रीकल्चरल डैट एनक्वायरी कमेटी की प्रश्नावली के आधार पर बनाई जा सकती है। एक दूसरी प्रश्नावली Gilbert Slater की Some South Indian Villages नामक पुस्तक में मिल सकती है। लोक-सेवकों को गाँवों की आर्थिक जाँच करते समय इस प्रकार के प्रश्नों का भी अध्ययन तथा अनुसन्धान करना चाहिए। सामाजिक रीति-रिवाजों में ग्राम-निवासियों की आमदनी का कितना हिस्सा प्रति वर्ष खर्च होता है? Field and Farmers in Oudh नाम की पुस्तक के पाँचवें अध्याय में लिखा हुआ है कि हरदोई जिले के पालीपाड़ा नामक गाँव में हर साल तीन हजार रुपये मुकदमेबाजी में बरबाद हो जाते हैं। आप अपने यहाँ के कुछ गाँवों का अनुसन्धान करके पता लगाइये कि मुकदमेबाजी में वहाँ हर साल कितना रुपया नष्ट होता है? साथ ही इस बात की भी जाँच कीजिए कि पटवारी, पतरौल, पुलिस, जमींदार, बौहरे वगैरः हकों, नजरानों, भेंटों और रिश्वतों के नाम पर तथा बेईमानी और जोर-जुल्म से, सब गैर कानूनी तरीकों से, गाँव से प्रति-साल कितना रुपया ले लेते हैं और इस रकम का गाँव वालों के पारिवारिक बजट पर क्या असर पड़ता है? कुछ प्रतिनिधि स्वरूप गाँव वालों के पारिवारिक बजट का अध्ययन

कीजिए और उसमें क्या-क्या सुधार सम्भव है यह बताइए। निजी अनुसन्धान द्वारा इस प्रकार इकट्ठी की हुई सामग्री सेवा का अनन्त स्रोत सिद्ध होगी। लोक-सेवकों को, इन प्रश्नों के अध्ययन और अनुसन्धान में निम्नलिखित पुस्तकें उपयोगी और सहायक होंगी—

Life and labour in a south Gujrat village by G. G. Mukhtyar.

Land and labour in a Deccan village by H. H. Mann.

The Economic life of a Bengal district by J. C. Jack.

Village uplifted India by F. Z. Brayne.

The Remaking of village life by F. Z, Brayne.

The Indian peasant uprooted by M. Reade.

The Indian peasant by Lord Zinling.

Reports of the Banking Enquiry committies.

Agricultural Indebtedness in India by S. C. Roy.

Caste and credit in Rural Areas by S. S. Nehru.

Rural India by Chaudhary Mukhtyar singh.

The Economic life of a Punjab village by E. D. Lucas.

An economic Survey Bairampur by R. L. Bhalla.

The Wealth and welfare of the Punjab by Calvert.

Rural Economy in Bombay Deccan by Keatenys.

Studies in Indian Rural Economics by S. Keshava Iyongar.

Report of Royal commission on Agriculture in India.

The Pressure of Population by Jaikishor Mathur M. A.

Over population in Jaunpur by Bholanath Misra M. A.

Report of the Select committie's on the Agricultural Relief bill, the reduction of interest bill and the various Loans Bill 1933 U. P.

ऐसी औसत जोत (Economic holding) का पता लगाइए जिससे औसत दर्जे के किसान-परिवार का गुजारा आसानी से हो सके। इस प्रकार की पारिवारिक जोत (Family farm) तथा आर्थिक जोत के बारे में विशेषज्ञों के अनुमान एक-दूसरे से भिन्न हैं। यदि कोई लोक-सेवी इस विषय का अध्ययन और अनुसन्धान करके औसत आर्थिक जोत का निर्णय कर दे तो परम उपकार हो।

ग्रामीण साहित्य की खोज कीजिए। कहावतों, गीतों, तथा कथा-कहानियों के रूप में गाँवों में कितना साहित्य भरा पड़ा है; परन्तु उससे पहुँचने वाला लाभ बहुत ही परिमित है। इस साहित्य को इकट्ठा करके इसके लाभ को व्यापक बनाइये। इस साहित्य में मनुष्य-जाति का युगों का अनुभव है, उससे मनुष्य-जाति का वञ्चित रहना बहुत ही परिताप की बात है। ग्रामीण

मनुष्य-चिकित्सा और पशु-चिकित्सा सम्बन्धी औषधियाँ, ग्राम वालों के खेती-सम्बन्धी अनुभवों और प्रयोगों को खोजना, उनको इकट्ठा करना और उन्हें लोक-हितार्थ प्राप्य करना स्वाध्याय का अत्यन्त उपयोगी कार्य है।

ग्रामीण साहित्य की खोज के सम्बन्ध में डी० ए० वी० कालेज के एक छात्र श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने जो उद्योग किया है वह अनुकरणीय है। उन्होंने सन् १९२५ से कन्धे में झोली डाले हुए, एक भिक्षु की भाँति, भारतीय ग्राम-साहित्य के प्रचार, अन्वेषण और संकलन के लिए, देश के प्रान्त-प्रान्त में फेरी लगाई है।

जोतों का बँटवारा घट रहा है या बढ़ रहा है? इस कुप्रवृत्ति को कैसे रोका जा सकता है? गहरी खेती (intense farming) से छोटे-छोटे किसानों की गरीबी कितनी हद तक दूर हो सकती है? क्या वर्त्तमान परिस्थियों में गहरी खेती व्यावहारिक लाभप्रद साबित होगी? परिस्थिति में क्या-क्या परिवर्त्तन और होने चाहिए जिससे गहरी खेती सफलतापूर्वक की जा सके? किन,किन नाजों की खेती अधिक लाभप्रद होगी? आपके यहाँ की किस-किस किस्म की जमीन में कौन-कौन-सी खेती अधिक उपयोगी साबित होगी? बागीचों और तरकारी की खेती की सम्भावनाएँ क्या हैं?

सिंचाई की समस्या का अनुसन्धान तथा अध्ययन कीजिये? क्या अधिक नहरों के बनने की कोई गुञ्जायश है? या उसकी सम्भावना समाप्त हो चुकी! कुएँ सिंचाई की समस्या को कहाँ तक हल कर सकते हैं? क्या छोटे-छोटे किसानों के लिये ट्यूब वैल लगाना उपयोगी सिद्ध होगा? संयुक्त प्रान्त के सम्बन्ध में डाक्टर पार का कहना है कि शारदा नहर बन जाने के बाद, इस सूबे में नदी के पानी द्वारा यानी नहरों द्वारा सिंचाई की सम्भा-

चना समाप्त हो जायगी। पोखरों तथा तालाबों से सींचे जाने वाले क्षेत्र-फल में भी कहने योग्य वृद्धि नहीं हो सकती। सिंचाई का एक मात्र स्रोत जमीन के नीचे का पानी रह जाता है। सूबे में कुल जितना पानी बरसता है, उसका बारह इञ्च भीतर जमीन में जज्ब हो जाता है। सो, प्रत्येक एकड़ भूमि में, इस प्रान्त में बारह इञ्च पानी मौजूद है जब कि गेहूँ की सिंचाई के लिए प्रति एकड़ सिर्फ नौ इञ्च पानी चाहिये, और क्योंकि खेती सिर्फ आधी भूमि में ही होती है इसलिए कुओं द्वारा सूबे में सब खेतों की सिंचाई हो सकती है।" यू० पी० सरकार के एक ऐग्रीकल्चरल इञ्जीनियर मिस्टर एफ० एच० हौवार्ड बिक का कहना है कि, "इस सूबे में जमीन से पानी खींचने की सम्भावनाओं के बहुत व्यापक ज्ञान के आधार पर मुझे यह विश्वास है कि यहाँ कुओं से पानी खींचने के नये तरीकों द्वारा तथा कुएँ को बोर करके बहुत तरक्की की जा सकती है। मुझे यह मालूम है कि जमीन में पूर्णतया कभी न खत्म होने वाला पानी है और वह इतना कम गहरा है कि पानी खींचने के यन्त्रों द्वारा आसानी से खींचा जा सकता है! सूबे की खेती के लिए इस बात की बहुत अधिक आवश्यकता है कि पानी खींचने के जरिये बहुत बड़े पैमाने पर अख्तियार किये जाएँ। छोटे-छोटे किसानों को इन्हीं जरियों से फायदा पहुँचाया जा सकता है।"

उक्त दोनों कथनों की सत्यता की जाँच कीजिए और अपने यहाँ की सिंचाई की समस्या का अध्ययन करके उसको हल करने की पञ्चवर्षीय योजना बनाइए। रहट की सिंचाई कहाँ-कहाँ उपयोगी और मितव्ययी सिद्ध हो सकती है? कुएँ कहाँ आसानी से बन सकते हैं? ट्यूब वेलों से कहाँ विशेष लाभ हो सकता है? ये सब प्रश्न अनुसन्धान करने योग्य हैं।

खाद की किस्मों की जाँच कीजिए। किस किस्म की जमीन

में किस किस्म की खाद देने से ज्यादा फायदा होता है? छोटे छोटे किसानों के लायक सस्ती और अच्छी खादें कौन-कौन-सी हैं? वे कैसे तैयार हो सकती हैं या यहाँ से मिल सकती हैं? इन प्रश्नों से जानकारी हासिल करके किसानों को लाभ पहुँचाइये।

फसल की बीमारियों और फसल के दुश्मन कीड़े-मकोड़ों से फसल को बचाने के सस्ते, कारगर और उपयोगी तरीकों का पता लगा कर किसानों को वे तरीके बताइये।

पशु-पालन की समस्या का अध्ययन कीजिये।

ऐसे छोटे-छोटे घरेलू धन्धों का पता लगाइए जिन्हें किसान आसानी से अपनी फुरसत के वक्त कर सकें। प्रान्तीय सरकार का उद्योग-धन्धा-विभाग इस सम्बन्ध में क्या कर सकता है? लोक-हितैषी संस्थाओं के उद्योग से इस सम्बन्ध में क्या किया जाता है? इन प्रश्नों पर विचार करके इनका उत्तर दीजिए।

खेती के मजदूरों की समस्या का, जंगलात की समस्या का, जंगलात से किसानों को ज्यादा-से-ज्यादा लाभ पहुँचाने के सवाल का, किसानों और मजदूरों की दृष्टि से अध्ययन कीजिए। और ऐसे विधेयात्मक तथा सहायक प्रस्ताव उपस्थित कीजिए जिन पर प्रयत्न किया जा सके और जिन पर प्रयत्न करने से इन समस्याओं को हल करने में सहायता मिले। सरकार की करैंसी (प्रचलन) नीति का, वैदेशिक विनिमय सम्बन्धी नीति (Exchange policy) का, रेलों और जहाजों के भाड़ों का, आयातों और निर्यातों पर यानी बाहर से देश में आने वाले और देश से बाहर जाने वाले माल पर सरकार जो कर लगाती है उनका खेतों से किसानों की आमदनी पर, तथा छोटे-छोटे घरेलू धन्धों पर क्या असर पड़ता है इन प्रश्नों का अच्छी तरह अध्ययन करके, सरल भाषा में तथा रोचक ढंग से बात-चीत

अथवा कहानियों के रूप में उनका वर्णन करके इन वर्णनों को छोटी-छोटी पुस्तिकाओं अथवा परचों के रूप में प्रकाशित कराइये, जिससे इस सम्बन्ध में ग्राम-निवासियों का अज्ञान दूर हो?

भूमि-कर-सम्बन्धी समस्या का अध्ययन और अनुसन्धान हमें ग्राम-निवासियों के उत्थान की समस्या के मूल तक ले जाता है। इस समस्या की अब तक कोई समुचित खोज नहीं हुई। यहाँ तक कि शाही कृषि-कमीशन के लिए भी इस समस्या की खोज करना विषय से बाहर की बात थी! गाँव की आबादी और बरबादी से भूमि-कर का क्या सम्बन्ध है? किसानों की गरीबी और उनके कर्ज के लिये भूमि-कर कहाँ तक उत्तरदायी है? भूमि-कर का भार कितना है? सब बातों को देखते हुए यह भार घट रहा है या बढ़ रहा है? भूमि-कर की उत्पत्ति, उसके विकास और उसकी वृद्धि का इतिहास क्या है? भूमि-कर, कर के रूप में लिया जाना चाहिए या लगान के रूप में? भूमि का स्वामी कौन है? स्वामी होना किसे चाहिए? भूमि-कर के स्वामित्व का इतिहास क्या है? जमींदारी-प्रथा की उत्पत्ति कैसे हुई? उसके विकास का इतिहास क्या है? इस समय जमींदारों से समाज को क्या लाभ पहुँचता है? क्या जमींदारी-प्रथा समाज के लिए जरूरी और उपयोगी है? इस प्रथा से इस समय लाभ अधिक है या हानि? हमारे देश में पहले भूमि का स्वामी कौन था? जमींदार, राजा या किसान? अब तक इस प्रथा में, भूमि के स्वामित्व में हमारे देश में क्या हेर-फेर हुए और क्यों? शुद्ध वैज्ञानिक और लोक-हित की दृष्टि से भूमि का स्वामी किसे होना चाहिए? इस सम्बन्ध में अन्य देशों का इतिहास क्या है? वहाँ क्या-क्या संशोधन, परिवर्त्तन तथा हेर-फेर हो रहे हैं और क्यों? भूमि-कर और खेती की तरक्की का परस्पर क्या सम्बन्ध

है ? भूमि-सम्बन्धी अधिकारों से, स्वामित्व के प्रश्न से, भूमि पर किसानों के अधिकार के न्यूनाधिक्य से खेती की तरक्की पर तथा समाज की शान्ति और उन्नति पर क्या असर पड़ रहा है ? इन और ऐसे सब प्रश्नों का अध्ययन और अनुसन्धान करके उनका समुचित उत्तर देना परले सिरे की लोक-सेवा का काम है, जिसकी उपयोगिता से संसार भर का कोई भी समझदार व्यक्ति इनकार नहीं कर सकता।

ग्राम्य-समाज-शास्त्र, (Rural Sociology) ग्राम्य-अर्थ-शास्त्र (Rural Economics) और ग्राम्य-मनोविज्ञान (Rural Psychology) का अध्ययन कीजिये और उनके सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए इस बात का पता लगाइये कि गाँवों की भलाई के कामों के लिये गाँवों का संगठन किस प्रकार किया जा सकता है ? गाँवों के संगठन में क्या-क्या मुख्य बाधाएँ हैं ? उन बाधाओं पर विजय कैसे पाई जा सकती है ? उन बाधाओं के होते हुए भी गाँवों की बेहतरी और उसके सङ्गठन के काम को कैसे बढ़ाया जा सकता है ? गाँवों की आर्थिक दशा कैसे सुधारी जा सकती है ? गाँवों में प्रचार का काम सफलता-पूर्वक किस प्रकार किया जा सकता है ? गाँवों की निरक्षरता को देखते हुए प्रचार के कौन-कौन-से साधन उपयोगी तथा कारगर सिद्ध होंगे ? स्वदेशी तथा परम्परागत किन-किन साधनों का इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए सदुपयोग किया जा सकता है ? इत्यादि प्रश्नों के अध्ययन और अनुसन्धान की परमावश्यकता है।

इस विषय का अध्ययन करने के लिये लोक-सेवी निम्न-लिखित पुस्तकों से लाभ उठा सकते हैं—

Field and Farmers in Oudh. by Radha-Kamal Mukherjee.

Report on Agriculture in U. P.

The making of Rural of Europe, by Miss Helen Douglas Irwin.

The Farmer and the New Day by keaton L. Butterfield.

The Peasant Proprietorship in India by Prof. Dwijdas Dutta.

Rural Credits by Henerick.

अन्य प्रश्नों का स्वाध्याय

इसी प्रकार दूसरे लोकोपयोगी प्रश्नों का अध्ययन तथा अनुसन्धान किया जा सकता है; जैसे—हरिजनों की समस्या का अध्ययन। आपके यहाँ कितने हरिजन हैं? उनकी भिन्न-भिन्न जातियाँ कितनी हैं? प्रत्येक जाति की मर्दुमशुमारी, आर्थिक दशा और सामाजिक स्थिति क्या है? इन जातियों को इसी दलित अवस्था में पड़े रहने देने से देश की आर्थिक और सामाजिक हानि कितनी होती है? क्या इस जाति के बालक भी सज्जन और उपयोगी नागरिक नहीं बनाये जा सकते? इन जातियों का जैसे मेहतरों का कार्य कितना रूखा तथा अस्वस्थ होता है? उनकी वर्त्तमान परिस्थितियों का, उनकी नैतिक और बौद्धिक वृद्धि और सम्भावनाओं पर क्या असर पड़ता है? इन जातियों के बालकों के प्रारम्भिक भावों और आदतों के निर्माण पर इन परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ता है? सुखी घर और सुखी जीवन के लिए जिन-जिन चीजों और बातों की आवश्यकता है उनमें से कौन-कौन-सी इनकी शक्तियों से बाहर हैं? महामारियों में और दरिद्रता में तथा दरिद्रता और अनुचित आहार-विहार में परस्पर क्या सम्बन्ध है? भंगियों आदि की बस्तियों का धार्मिक जीवन तथा शहर के नगर और गाँव के स्वास्थ्य और नैतिक चरित्र पर क्या असर पड़ता है। इसी प्रकार अपने यहाँ की नैतिक असफलता यानी सार्वजनिक

सदाचार, मृत्यु-संख्या, पशुओं के प्रति निष्ठुरता, इत्यादि प्रश्नों का अध्ययन तथा अनुसन्धान किया जा सकता है।

दान की समस्या का स्वाध्याय लोक-सेवा का राज-पथ खोल सकता है। धर्मादों और दातव्य संस्थाओं में जितना रुपया जमा पड़ा है उसके मुकाबिले में सरकार की सम्पत्ति कुछ भी नहीं। सूरत के पास के रैण्डर नाम के एक छोटे से कसबे में धर्मादे का चालीस लाख रुपया था। यदि लोक-सेवा के लिए इस सब रुपए का संगठित, सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से सदुपयोग हो सके तो देश की ऐसी कौन-सी आवश्यकता है जो पूरी न हो सके।

लोक-सेवियों को

स्वाध्याय की शरण लेनी चाहिए। उन्हें स्वयं विचार करने, स्थिर होकर धैर्य तथा स्वतन्त्रतापूर्वक प्रत्येक प्रश्न का अध्ययन करने की और अनुसन्धान की आदत डाल लेनी चाहिए। उन्हें किसी न किसी विषय का विशेषज्ञ बनने का उद्योग अवश्य करना चाहिए। अब तक जो कुछ लिखा गया है उससे खोज की आवश्यकता के विषय में किसी को किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह सकता। स्वयं प्राप्त ज्ञान और व्यक्तिगत अनुभव को जितना महत्त्व दिया जाय थोड़ा है। जो लोग वास्तव में लोक-सेवा के लिए उत्सुक हैं वे जानते हैं कि सेवा-कार्य में कितने विचार और अनुभव की आवश्यकता है? अध्ययन बिना समाज की अधिक उपयोगी सेवा करना सम्भव नहीं। बुद्धिमानी से काम करने के लिए अवस्थाओं का ज्ञान अनिवार्यतः आवश्यक है। परन्तु अनेक कार्यकर्त्ता अभी इस कथन के महत्व को समझ ही नहीं सके हैं। यह भी है कि समाज-सेवा के कार्य को बुद्धिमानी से करने के लिए अङ्कों और तथ्यों को

संग्रह करने का, खोज और अध्ययन का काम कठिन, नीरस और कष्टप्रद प्रतीत होता है। परन्तु लोक-सेवी के लिए सिवा इसके और कोई चारा नहीं कि वह कष्टों और कठिनाइयों की परवाह न करके स्वाध्याय के कार्य में निरत हो जाय। स्वाध्याय के लिए जहाँ तक सम्भव हो,

स्वाध्याय-मंडल

स्थापित करना अधिक लाभप्रद और फलप्रद होगा। मंडल के सदस्य पाँच से लेकर आठ तक होने चाहिये जिससे वाद-विवाद के लिए पर्याप्त समय मिल सके। छोटे समुदाय में प्रत्येक सदस्य वाद-विवाद में भाग ले सकता है, और वाद-विवाद द्वारा निकले हुए परिणामों और सूचनाओं का मूल्य जितना स्थायी होता है उतना एक वक्ता के व्याख्यान अथवा निबंध को सुन या पढ़ लेने से नहीं होता। यद्यपि अधिकारी व्यक्तियों के व्याख्यानों तथा निबन्धों का सुनना-पढ़ना भी स्वाध्याय का अच्छा साधन है। स्वाध्याय का उद्देश यह होना चाहिये कि थोड़े-से लोगों को अधिक-से-अधिक लाभ पहुँचे! थोड़ी संख्या पर गहरा और स्थायी प्रभाव पड़े जिससे कि उनके हृदयों पर सदा के लिए नागरिक कर्त्तव्यों की यथार्थता और गम्भीरता का भाव अंकित हो जाय। स्वाध्याय-कार्य को वास्तविक सेवा-कार्य समझ कर करना चाहिये। यह स्वाध्याय केवल मानसिक व्यायाम ही नहीं है उससे एक महान व्यावहारिक कार्य की पूर्त्ति में भी सहायता मिलती है। स्वाध्याय-मण्डलों द्वारा लोगों में स्वाध्याय की नई रुचि और नई आदतें पैदा हों तथा सेवा करने की इच्छा उत्पन्न हो तभी उनका उद्देश सफल हो सकता है। मंडल के नेता का चुनाव सावधानी से किया जाना चाहिये और सुयोग्य नेता को अपने कर्त्तव्यों का पालन इस रीति से करना चाहिये

जिससे मण्डल के सब सदस्यों के विचारों को उत्तेजना मिले, सब को विचार-सामग्री मिले। स्वाध्याय के परिणामों को लेखों तथा पुस्तक-पुस्तिकाओं द्वारा प्रकट करने से भी बहुत अच्छी लोक-सेवा की जा सकती है। स्वाध्यायी लोक-सेवी अपने मण्डल की ओर से हस्त-लिखित मासिक या त्रैमासिक पत्र भी निकाल सकते हैं! लोक-सेवियों के श्रेष्ठ कामों का वार्षिक वर्णन प्रकाशित कर के भी लोगों को लोक-सेवा के पुण्य कार्य की ओर प्रोत्साहित किया जा सकता है।

सारांश यह कि स्वाध्याय-सेवा का ऐसा अनुरोध है जिसकी उपेक्षा कोई भी लोक-सेवी नहीं कर सकता।

———

साहित्य और लेखनी द्वारा सेवा
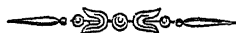
साहित्य और लेखनी द्वारा प्रत्येक व्यक्ति एकाकी सहज ही अपने समाज तथा मनुष्य-जाति की स्थायी सेवा कर सकता है। शिक्षा मनुष्य के लिए सरस्वती का भण्डार खोल देती है। शिक्षित व्यक्ति उस अटूट भण्डार से एक-से-एक अनमोल रत्न चुन कर उनका उपयोग कर सकते हैं। अपने इस दिव्य आनन्द में दूसरों को साझी बनाने से उस आनन्द की मात्रा और उपयोगिता दोनों ही बढ़ जाती हैं। शिक्षितों को यह बात भली भाँति जान लेनी चाहिए कि उन्होंने जो उच्च शिक्षा प्राप्त की है उसने उनके ऊपर एक गहन उत्तरदायित्व लाद दिया है—उस शिक्षा ने उन्हें अपने देश-बन्धुओं की अधिक तथा उपयोगी सेवा करने योग्य बना दिया है। अब उनका कर्त्तव्य है कि वे अपने दूसरे बन्धुओं के पास भी ज्ञान का प्रकाश पहुँचावें और यह तभी हो सकता है जब कि हम साहित्य के उस भण्डार को जिस तक हमारी पहुँच है अपनी भाषा-भाषियों के लिए भी प्राप्य कर दें।

उदाहरण के लिए ऐसे पढ़े-लिखे और विद्वानों की संख्या बहुत ही कम है जिन्होंने अँग्रेजी-साहित्य की उत्तमोत्तम बातों को राष्ट्र-भाषा हिन्दी जानने वालों के लिए सुगम कर दिया हो।

अंग्रेजी-पुस्तकों के आधार पर लिखी हुई पुस्तकों द्वारा अथवा उनके स्वतन्त्र भावानुवाद अथवा अनुवाद द्वारा हिन्दी-साहित्य के भण्डार की वृद्धि की हो अथवा जिन्होंने अँग्रेजी से हिन्दी में पुस्तकों अथवा लेखों का अनुवाद करने की योग्यता प्राप्त कर ली हो! स्वामी रामतीर्थ इस बात पर बहुत जोर देते थे। उन्होंने अपने एक लेख में कहा था कि प्रत्येक देश-भक्त को पत्र-पत्रिकाओं में कुछ-न कुछ लिखना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिये। सचमुच, संसार के सर्वोत्कृष्ट ज्ञान को सर्व-साधारण को प्राप्य बनाना मनुष्य-जाति की अत्यन्त स्थायी और उच्चकोटि की सेवा है।

अनुवाद के अभ्यास के लिए पहले छोटे-छोटे लेखों से प्रारम्भ करना चाहिए। प्रारम्भ में सम्भवतः इस प्रकार अनुवादित किये गये आधे अथवा पूरे दर्जन लेख किसी पत्र-पत्रिका में छपाइये, परन्तु इस परिश्रम से अनुवाद करने की साधारण योग्यता अवश्य आ जायगी। इसके बाद किसी लेख के छप जाने पर प्रोत्साहन मिलेगा तथा आत्म-विश्वास बढ़ेगा! जब अनुवादित लेख साधारणतः पत्र-पत्रिकाओं में स्थान पाने लगें तब पुस्तकों का अनुवाद प्रारम्भ किया जा सकता है। यही बात स्वतन्त्र लेखन के लिए भी लागू है। पहले लेखों से या संवादों से प्रारम्भ कीजिए। फिर लेखों का अभ्यास हो जाने पर पुस्तकों की ओर कदम बढ़ाइये।

शिमला के कैनन एच० यू० वीट ब्रैस्ट पी० एच० डी० की सलाहें, अनुवाद के सम्बन्ध में, विचारणीय हैं। उनका कहना है कि प्रारम्भ में भावी अनुवादक को यह भली भाँति जान लेना चाहिए कि अनुवाद करना एक श्रेष्ठ कला है। एक दिन में कोई अनुवादक नहीं हो सकता। अनुवादक बनने के लिए, धैर्य, बोध, अभ्यास, अनुभव और निरीक्षण-शक्ति की आवश्यकता है। शब्दों और वाक्यों को एक भाषा से दूसरी भाषा में ले

जाना अनुवाद नहीं है, शब्दों में व्यक्त किये गए भावों को एक भाषा से दूसरी भाषा में प्रकट करना अनुवाद है। भाषा के रूप में अनुवादक को पूर्ण स्वतन्त्रता है परन्तु विचार-व्यंजन में उसे बहुत सावधानी से काम लेना चाहिए।"

अनुवादक के लिए यह आवश्यक है कि वह जिस विषय की पुस्तक का अनुवाद करे उसमें पारङ्गत हो, उससे पूर्णतया भिज्ञ हो। प्रत्येक वाक्य और पैरा के विचारों को अपना कर उसके भावों को स्वतन्त्रापूर्वक व्यक्त करे मानो वह अपनी भाषा में मौलिक पुस्तक लिख रहा है। परिणाम यह होगा कि अनुवाद मौलिक के समान ही पठनीय होगा। सर्वाङ्गपूर्ण अनुवाद वही है जो मूल पुस्तक के समान सुपाठ्य हो, धार्मिक और औद्योगिक पुस्तकों के अनुवाद करते समय पारिभाषिक शब्दों का अनुवाद बड़ी सावधानी से करना चाहिए।

गल्प और उपन्यासों का अनुवाद करते समय अनुवादक अत्यन्त स्वतन्त्रता से काम ले सकता है। किसी भी कहानी को पाठकों के देश-काल और विचारों के अनुकूल बनाने के लिए उसका सम्पूर्ण कथानक बदला जा सकता है। परन्तु इस बात को स्पष्ट प्रकट कर देना चाहिए जिससे पाठक धोखे में न रहें।

पादरी ई० एम० हैरी डी० डी० के ये विचार ध्यान देने योग्य हैं—

(१) अनुवाद की शैली मूल पुस्तक की शैली के अनुरूप ही होनी चाहिए। यह नहीं होना चाहिए कि सरल शैली में व्यक्त किये गए भावों को आलंकारिक शैली में व्यक्त किया जाय तथा आलंकारिक शैली का अनुवाद सरल भाषा में किया जाय।

(२) मुहाविरों का अनुवाद शब्दशः नहीं होना चाहिए। भाषा विशेष के मुहाविरे से उस भाषा के अनुरूप जो विचार व्यक्त किए गए हों उन्हीं विचारों को पूर्णतया समझ कर

अपनी भाषा के अनुरूप शब्दों अथवा मुहाविरों में व्यक्त करना चाहिए।

(३) अनुवाद के भावों को व्यक्त करने में शब्दों को भी बाधक नहीं होने देना चाहिए। हाँ, मौलिक वाक्यों और अनुच्छेदों के विचार ऐसे शब्दों में व्यक्त करना आवश्यक है जिनसे उन वाक्यों और अनुच्छेदों में व्यक्त किए गए भाव पूर्ण-तया व्यक्त होते हों।

(४) अनुवादक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह मूल पुस्तक के वाक्यों और वाक्यसमूहों को हूबहू अनुवाद में लाने का उद्योग करे।

इस प्रकार लेखनी द्वारा होने वाली सेवा केवल मौलिक अथवा अनुवादित लेखों और पुस्तकों तक ही नहीं परिमित है। पत्रों द्वारा अनुपम समाज-सेवा की जा सकती है। उदार बुद्धि द्वारा, निस्वार्थ भाव से, दूसरों को ढाढ़स, सलाह, प्रसन्नता और उत्तेजना प्रदान करने के लिये लिखे गये पत्रों में लेखक का भाव लेखनी की धातु को स्वर्ण में परिवर्त्तित कर देता है। प्रेम, प्रोत्साहन, कृतज्ञता और गुणग्राहकता प्रकट करते समय लोहे का पाता सोने का हो जाता है और काले अक्षर सुनहले मालूम होते हैं।

पत्रों से मनुष्यों को सहज ही प्रेम होता है। ऐसा कौन है जो उत्सुकता के साथ डाक की बाट न देखता हो? यदि किसी को अचानक ऐसा पत्र मिले जिसमें निस्वार्थ प्रेम प्रकट किया गया हो, या सत्कार्य या परोपकार के लिए कष्ट सहने के लिए प्रोत्साहन हो, दान, सेवा, बलिदान आदि गुणों को स्वीकार किया गया हो, किये गये उपकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट की गई हो तो उसका हृदय आनन्द से भर जायगा और उसकी आत्मा को बल, स्फूर्ति और प्रेरणा मिलेगी। यदि आप किसी बच्चे

को केवल उस पर अपना प्रेम प्रकट करने तथा उसे प्रसन्न करने और प्रोत्साहन देने के लिए पत्र लिखेंगे तो उसे पाकर उसके हर्ष का ठिकाना नहीं रहेगा और उसके हृदय पर उस पत्र का अमिट प्रभाव पड़ेगा। जिस मनुष्य ने आपका खूब आतिथ्य सत्कार किया हो उसको धन्यवाद तथा प्रसन्नता-सूचक पत्र लिखना साधारण शिष्टता की बात होनी चाहिए। समाचार पत्र में पढ़कर, या दूसरी प्रकार से सुन अथवा देखकर यदि आप किसी को उसके सत्कार्य के लिए, लेखक को उसको अच्छे लेख के लिए, सम्पादक को उसकी अच्छी टिप्पणी के लिए, कवि को उसको मर्मस्पर्शी कविता के लिए, संगीताचार्य को उसके मनोहर गान तथा चित्रकार को उसके अच्छे चित्र के लिए और व्याख्याता को उसके मनोमुग्धकारी व्याख्यान के लिए, किसी अधिकारी का उसके सुप्रबन्ध या उसकी कर्त्तव्य-परायणता के लिए, किसी लोक-सेवक को उसके सुन्दर सेवा-कार्य, त्याग अथवा बलिदान के लिये प्रशंसात्मक पत्र लिख भेजें तो उससे आपकी आत्मा को भी आनन्द अनुभव होगा और पत्र पाने वाले को भी परम प्रसन्नता और प्रेरणा मिलेगी। इस प्रकार आप सहज ही एक दिव्य सेवा-कार्य कर लेंगे क्योंकि गुणों की उचित प्रशंसा के बराबर आत्मा को ऊँचा उठाने वाली, पवित्र जीवन की ओर प्रेरित कराने वाली और वैसे शुभ कार्यों की फिर करने की इच्छा को प्रबल करने वाली वस्तु और कोई नहीं! पति-पत्नी को तो अवश्य ही अलग होने पर एक दूसरे को प्रेम-पत्र लिखते रहने चाहिये क्योंकि वियोग में इन पत्रों से बड़ी सान्त्वना मिलती है। कभी-कभी ऐसा किया जासकता है कि घर रहते हुए भी अपनी पत्नी या पति के लिए, माता-पिता तथा पुत्र के लिये भाई-भावी अथवा देवर के लिए अपने हृदय के प्रेम-भाव को प्रकट करने वाला पत्र लिखकर डाक से डाल दो और जब

वह पत्र उनके पास आवे तब आँखों से ओझल हो जाओ। उस समय देखोगे तो मालूम होगा कि उस पत्र को पढ़ते समय जिनको पत्र मिला उनको कितना आनन्द मिला! व्याख्यानों का और बातचीत का उतना प्रभाव कभी नहीं पड़ता जितना ऐसे पत्रों का। ऐसे पत्रों का विस्मरण करना कठिन है और बहुधा वे चिरकाल तक सुरक्षित रक्खे जाते हैं। पौल ने ईसाई धर्म के प्रचार में इतनी अधिक सफलता पत्रों द्वारा ही प्राप्त की थी। प्रत्येक लोक-सेवक को ऐसे स्वर्ण-पत्र लिखने का सुअवसर कभी भी हाथ से नहीं जाने देना चाहिये।

विद्यार्थी और लोक-सेवा
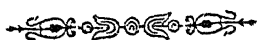
प्रत्येक विद्यार्थी अपने सर्वोच्च आदर्श या आदर्श-कल्पना के लिए उस समाज का ऋणी है जिसका कि वह सदस्य है। प्रत्येक विद्यार्थी को सदैव यह स्मरण रखना चाहिये कि वह जो शिक्षा पा रहा है उसके लिए पूर्णतया समाज का ऋणी है और वह इस भारी ऋण से उस समय तक उऋण नहीं हो सकता जब तक कि अनवरत लोक-सेवा द्वारा वह उस ऋण को न चुका दे। हमारे विश्व-विद्यालय वास्तव में सेवा-मन्दिर होने चाहिये जिनमें रहने से विद्यार्थियों के हृदयों में आजीवन समाज-सेवा करने के पवित्र भाव अमिट हो जाएँ! शिक्षा का मुख्य उद्देश्य भी यही है कि वह मनुष्य की सर्वोच्च शक्तियों को विकसित करे और समाज-सेवा से अधिक ऊँची और पवित्र बात दूसरी हो ही नहीं सकती। विश्व-विद्यालयों में स्वाध्याय तथा समाज-सेवा के केन्द्र होने चाहिये जिनके द्वारा विद्यार्थी सामाजिक विषयों का चिन्तन, मनन और अध्ययन कर सकें, सेवा-कार्य की व्यावहारिक शिक्षा पा सकें और अपनी समाज-सेवा की सुभावनाओं को सदा के लिए स्थायी बना सकें।

सन् १९२६ में भारतवर्ष की कृषि-सम्बन्धी कुछ समस्याओं की जाँच के लिये शाही कमीशन नियुक्त हुआ था। उसने अपनी

रिपोर्ट के सरसठवें पृष्ठ पर लिखा है कि "ग्राम-निवासियों में सेवा और नेतृत्व के भाव भरने की अत्यधिक आवश्यकता है और हम अपना यह विश्वास स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए विश्व-विद्यालय अत्यन्त महत्व-पूर्ण कार्य कर सकते हैं। इन विश्व-विद्यालयों का सर्वोच्च उद्देश्य यही है कि वे अपने छात्रों में लोक-सेवा के ऐसे भाव भर दें, अपने भाइयों, दूसरे मनुष्यों के हित के कार्य करने के लिए इतना उत्साह उत्पन्न कर दें कि जिससे जब वे संसार में जाकर प्रविष्ट हों तब वह उन्हें उस समाज की सेवा-कार्य में पूर्ण योग देने के लिए प्रेरित करें जिसमें उन्हें जीना और मरना है। हम भारतीय नवयुवकों से अपील करते हैं कि उनके तन-मन-धन पर ग्रामवासियों का बहुत अधिक अधिकार है। विश्व-विद्यालयों के नये और पुराने सभी छात्रों से भी हम जोरदार अपील करना चाहते हैं कि वे ग्रामों की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं की ओर ध्यान दें—उनको हल करने में जुट जायँ जिससे वे इस योग्य हो जायँ कि ग्राम-निवासियों के उत्थान के लिए जो उद्योग किया जा रहा है उसका नेतृत्व कर सकें हमें विश्वास है कि विश्व-विद्यालयों के अधिकारी और शिक्षक अपनी समस्त शक्ति से इन समस्याओं के अध्ययन के कार्य को प्रोत्साहित करेंगे। जो लोग अपनी-अपनी जगहों में नेतृत्व और समाज-सेवा के क्षेत्र में निस्वार्थ तथा देश-भक्ति पूर्ण भाग लेना चाहते हैं और उसमें भाग लेने में समर्थ हैं उनके लिए भारत में असीम अवसर हैं। ग्राम-पञ्चायत, डिस्ट्रिक्ट अथवा तालुका बोर्ड वगैरः की मेम्बरी में सहयोग-समितियाँ स्थापित करने, बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करने के शुभ कार्य में, तथा ग्राम-निवासियों की बेहतरी और उनकी भलाई के लिए गैर-सरकारी संस्थाएँ जो कार्य कर रहीं हैं उनमें समाज-

सेवियों की योग्यता और सुप्रवृत्ति के लिए सर्वोत्तम क्षेत्र विद्यमान है। इस प्रकार की सेवा राज्य के लिए भी अमूल्य है क्योंकि किसानों का हित और सुख अधिकतर उस क्षमता और पवित्रता पर निर्भर है जिससे स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं का प्रबन्ध किया जाता है। शताब्दियों की अकर्मण्यता केवल उन लोगों के उत्साह आत्म-त्याग और समुचित उद्योगों द्वारा ही हो सकती है जिन्होंने स्वयं उदार शिक्षा का प्रसाद पाया है।"

विद्यार्थियों और विश्वविद्यालयों को उनके पवित्र कर्त्तव्य की याद दिलाने के लिए इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है। और जो बात ग्रामोत्थान के लिए कही गई है वही दूसरे सेवा-कार्यों के लिए भी सोलहो आने सही है। जैसा कि प्रोफेसर शिवराम एम० फेरवानी के निम्नलिखित कथन से स्पष्ट है—

"हमारे कालेज शहरों से इतने अलग हैं कि उनकी प्रयोगशालाएँ म्यूनिसिपैलिटी की समस्याओं की जाँच करके उनके हल करने के काम में तथा म्यूनिसिपैलिटी को उसके कार्यों और चीजों को जाँचने की बँधी हुई कसौटियाँ बनाने के काम में नहीं आतीं। शहरों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में परस्पर क्या सम्बन्ध होना चाहिए इसका हमारे पास बहुत अच्छा उदाहरण विद्यमान है। सिनसिना ही विश्व विद्यालय में, "शहर से सहयोग" उसके सब कार्यों का मूल-मंत्र है। सहयोग के मानी यह हैं कि जीवन और लोक-सेवा की शिक्षा देने के लिए विश्व विद्यालय समस्त विद्यमान स्थानीय संस्थाओं से काम लेता है, फिर चाहे ये संस्थाएँ पब्लिक स्कूल हों या फैक्टरियों के अस्पताल, सामाजिक बस्तियाँ हों या अजायबघर अथवा पुस्तकालय, बनस्पति के बाग हों या वाटरवर्क, अथवा गैस और बिजली के कारखाने। वास्तविक जीवन

के लिए वास्तविक जीवन की ही शिक्षा देना इस विश्वविद्यालय का शिक्षा-सम्बन्धी सिद्धान्त है और सेवा कार्य में सहयोग करना उसका आदर्श। विद्यार्थियों की शिक्षा नागरिकों की रक्षा के कार्य का सुफल मात्र है। मेडिकल कालेज के लड़कों की सभा की ओर से शुद्ध दूध बेचने वाली दूकानें तथा जहाँ आवश्यकता हो वहाँ जाने वाली नर्सें रक्खी जाती हैं। इञ्जीनियरिङ्ग कालेज का रासायनिक विभाग म्यूनिसिपैलिटी जो माल खरीदती है उसकी जाँच करने वाली ब्यूरो का काम करता है। इस ब्यूरो ने एक साल में छः सौ साठ सैम्पलों की जाँच की। पेण्टों में टरपैण्टाइन के बजाय बैनजाइन पाया गया। वाटर प्रूफ, फैल्ट एसफैल्ट से लदी हुई पायी गयी और रबर पम्प वैल्व घास के बने हुए निकले। कोयले में चवालीस फीसदी राख मिली। हमारी म्यूनिसिपैल-टियाँ जो माल खरीदती हैं, उसमें से कितना माल अच्छा या सैम्पिल के मुताबिक होता है?—कौन कह सकता है? यहाँ तो कालेजों में और शहरों में कोई सहयोग ही नहीं! कालेज शहरों की समस्याओं में कोई दिलचस्पी ही नहीं लेते। इस अभाव को दूर करा के समाज-सेवा-कार्य का एक भारी अभाव दूर किया जा सकता है।

सेवकों की शिक्षा वाले अध्याय में यह दिखाया जा चुका है कि इङ्गलैण्ड और अमेरिका के विश्वविद्यालय बाकायदा समाज-सेवा कार्य की शिक्षा देते हैं, लोकोपयोगी समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं, अपने विद्यार्थियों में इस अध्ययन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं, उनके अध्ययन-मण्डल स्थापित करते हैं, तथा समाज-सेवा केन्द्रों में उन्हें सङ्गठित करके उनसे समाज-सेवा का कार्य लेकर उन्हें उस कार्य की व्यावहारिक शिक्षा देते हैं। हमारे यहाँ भी कुछ विश्वविद्यालयों में अध्ययन और सेवा-कार्य का श्रीगणेश होने लगा है; परन्तु अभी उसका विस्तार

और क्रियाशीलता बहुत ही परिमित है। इस बात की परम आवश्यकता है कि विश्वविद्यालयों की प्रयोगशालाएँ सामाजिक समस्याओं के हल करने के काम में आवें, उनके प्रोफेसर और विद्यार्थी विशेष समस्याओं के विशेषज्ञ बन कर आवश्यक ज्ञान का प्रकाश फैलावें, और सर्वत्र अध्ययन-मण्डलों और समाज-सेवा-केन्द्रों की स्थापना कर के अपने परम पवित्र परन्तु अब तक उपेक्षित कर्त्तव्य का पालन करें।

विद्यार्थी क्या कर सकते हैं?

सब से पहला काम जो विद्यार्थी सहज ही कर सकते हैं और जो उन्हें अवश्य ही करना चाहिए कि वे स्वस्थ लोक-मत बनाना और स्वयं श्रेष्ठ तथा स्वस्थ सम्मति रखना अपना प्रथम सामाजिक कर्त्तव्य समझें। यानी स्वास्थ्य, सफाई, अनुशासन, सेवा आदि सभी सामाजिक प्रश्नों पर अपना उचित तथा गम्भीर मत रक्खें और लोगों को भी वैसा मत रखने के लिए प्रेरित करके उपयोगी तथा लाभप्रद नियमों को मनवावें।

प्रत्येक विद्यार्थी का दूसरा सामाजिक कर्त्तव्य यह है कि उसके आस-पास की विविध देशकालावस्था में जो कुछ उसके अपने जीवन का पोषक और सहायक हो उसी पर जोर दे, न कि उस पर और उल्टा बाधक हो। कोई विद्यार्थी इतना अन्धा नहीं होगा कि वह यह समझ बैठे कि समस्त सत्य और विकास उसकी मौरूसी हैं। और इसी प्रकार यह भी सच है कि कोई भी विद्यार्थी इस बात में सन्देह नहीं कर सकता कि दूसरों में भी कुछ अच्छापन है। उसे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि दूसरों में भी कुछ न कुछ अच्छापन अवश्य है। इसके विपरीत बात पर जोर नहीं देना चाहिए । किसी भी छात्र-समुदाय का यह विशेष गुण होना चाहिए कि वह अपने अपूर्ण जीवन

को सम्पूर्ण बनाने में अत्यन्त उत्सुकता प्रकट करे। हमें दूसरे पक्ष की अच्छाई देखने की ओर ही ध्यान देना चाहिए, बुराई तो सभी देख सकते हैं। अपने सहकारियों का ध्यान करते समय या उनके विषय में बात-चीत करते समय, उनके सद्गुणों को ढूँढ़ो, अवगुणों को नहीं। प्रशंसा का आश्रय लो, घृणा का नहीं। प्रत्येक मनुष्य में प्रेम करने योग्य गुणों को ढूँढ़ो और बुराई की ओर ध्यान देने की अपेक्षा उनके गुणों की ओर ध्यान लगाओ। कालेज-जीवन के चार वर्षों को व्यतीत करने का क ढंग अपने समुदाय विशेष की सीमा के भीतर बन्द रहना है। परन्तु ऐसे विद्यार्थी उस महान शिक्षा से वञ्चित रह जाते हैं, जो विवरण-पत्रिका में निर्दिष्ट कक्षा की शिक्षा से अधिक लाभदायक है।

विद्यार्थियों का तीसरा सामाजिक कर्त्तव्य—जिनके साथ वे रहते हैं उनके हिताहित का ध्यान रखना है। प्रत्येक कालेज और छात्रावास के चारों ओर मधुरता और प्रकाश का साम्राज्य होना चाहिए। यदि किसी कालेज और छात्रावास में यह बात नहीं है, तो अपने शिष्ट, नम्र और आनन्ददायक व्यवहार से उसे ऐसा बना दो।

स्वाध्याय में वर्णित सभी कार्यों को विद्यार्थी कर सकते हैं। वे स्वयं सामाजिक समस्याओं की खोज, अनुसन्धान और उनके अध्ययन का शुभ कार्य कर सकते हैं। विद्यार्थियों को सर्वत्र इस प्रकार के अध्ययन-मण्डल स्थापित करने चाहिए। सेवा-केन्द्रों में संघटित हो कर समाज-सेवा के शुभ-कार्य करना विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त हितकर तथा आवश्यक है। अपनी वाद-विवाद-सभाओं और अध्ययन-मण्डलों में सामाजिक समस्याओं पर व्याख्यान दिलवाओ, निबन्ध लिखवाओ, गाने कराओ और सर्वोत्तम व्याख्यानदाता, निबन्ध-लेखक तथा कवि

और गायक को पदक दो।

साहित्य द्वारा सेवा का कार्य भी विद्यार्थी सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। ऐसे अनेक विद्यार्थी मिलेंगे, जो थोड़े से प्रोत्साहन से अंग्रेजी से देशी भाषाओं के अनुवाद करने का कार्य कर सकें। यदि हमारे कालेज प्रतिवर्ष कुछ ऐसे विद्यार्थी तैयार कर सकें, जिनमें अनुवाद करने की योग्यता हो, तो देश को बहुत लाभ पहुँचे।

सामाजिक कुप्रथाओं के विरुद्ध तथा नवीन ज्ञान के पक्ष में लोकमत बनाने, निरक्षरता दूर करने गर्मी की छुट्टियों में समाज-सेवा के विविध कार्य करने में विद्यार्थियों को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

निरक्षरता जैसी विशालकाय राक्षसी का विनाश करने के लिए चीन के विद्यार्थियों ने जो आश्चर्यजनक सफल कार्य कर दिखाया वह संसार के इतिहास में स्वर्ण-अक्षरों में लिखा हुआ है और प्रत्येक विद्यार्थी को उसके कर्त्तव्य की पुकार सुनाता है। अभी-अभी बिहार के भूकम्प के समय दिल्ली आदि के विद्यार्थियों ने बहुत ही सराहनीय कार्य किया।

हैदराबाद म्यूनिसिपैलिटी की १९१८–१९ की रिपोर्ट में लिखा हुआ है कि स्कूल के विद्यार्थियों ने प्लेग-वाहन चूहों को मारने के काम में इतनी दिलचस्पी ली कि शहर के छत्तीस हजार चूहों में से दस हजार चालीस उन्होंने पकड़े। दूसरे साल उन्होंने दस हजार दो सौ सरसठ चूहे पकड़े। चूहे पकड़ने के लिए उन्हें फी चूहा एक पैसा इनाम दिया गया था। जो काम हैदराबाद की म्यूनिसिपैलिटी ने किया, उसे दूसरी म्यूनिसिपैलिटियाँ भी कर सकती हैं।

मलेरिया-वाहन मच्छर मारने के काम में भी विद्यार्थी बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। वे मच्छरों के निवास-स्थानों का

पता लगा कर उनकी रिपोर्ट करने का और फिर धीरे-धीरे तालाबों- पोखरों में मिट्टी का तेल डालने का, गड्ढे भरने, नालियाँ ठीक करने-कराने तथा पैदाइश के स्थानों को नष्ट करने का काम कर सकते हैं। फिलैडिलफिया ने इस प्रकार मच्छरों की पैदाइश की पिचहत्तर एकड़ ज़मीन को मलेरिया से मुक्त कर दिया। वहाँ १९१३ में स्कूल आदि में मलेरिया के सम्बन्ध में बीस सचित्र व्याख्यान दिये गये। अध्यापकों को राजी किया गया कि वे विद्यार्थियों को इस विषय की ओर आकर्षित करें। एक लाख पैम्फलेट स्कूलों में बाँटे गये। इसके बाद पोखरों तथा पैदाइश की जगहों को ठीक करने का काम हुआ, जिसका परिणाम बताया जा चुका है।

अमेरिका ने इस बात की खोज की है कि सभ्य मनुष्यों का जितना विनाश मक्खियाँ करती हैं उतना संसार-भर के सब हिंसक जङ्गली जानवर मिल कर भी नहीं कर पाते। वहाँ स्कूल के लड़कों और लड़कियों की बाल-सफाई-पुलिस (Junior Sanitary Police) सङ्गटित की गई जिसने बहुत से शहरों से मक्खियों का बीज-वंश तक मिटा दिया। लड़कियों ने खाद्य-पदार्थों के स्टोरों में जा-जाकर मक्खियों की गिनती की।

अपने यहाँ के विद्यार्थी गर्मी वगैरः की बड़ी-बड़ी छुट्टियों में जब गाँव में जावें, तब गाँव-भर के सब विद्यार्थियों को स्वाध्याय और सेवा-कार्यों के लिए सङ्गठित कर सकते हैं फिर चाहे वे विद्यार्थी भिन्न-भिन्न कालेजों में ही क्यों न पढ़ते हों।

वे पथ्य तथा उचित आहार-विहार-सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन कर सकते हैं, वीरोचित कार्य-कारिणी सभा, कुनैन सभा, अनाथों और भूले-भटके हुओं की सभा स्थापित कर सकते हैं। रात्रि-पाठशालाएँ तथा वयस्कों के लिए दैनिक पाठ-शालाएँ सङ्गठित कर सकते हैं। संक्षेप में, वे अपने छुट्टी के

दिनों को सरलतापूर्वक गाँव और समाज की सेवा के अनेक पुनीत कार्य करके बिता सकते हैं! यदि विद्यार्थी इस ओर अपने कर्त्तव्य का पालन करने लगें तो देश और समाज का परम उपकार हो सकता है।

विद्यार्थियों की तरह अध्यापक भी लोक-सेवा के अनेक कार्य कर सकते हैं। अपने प्रान्त के गाँवों और नगरों में तथा बाहर भी अध्यापकों को लोक-सेवा करने का जितना अवसर मिलता है, उतना दूसरे लोगों को नहीं मिलता। डाक्टर जे० सी० आर० ईविंग ने बहुत वर्ष हुए, सेण्ट्रल ट्रेनिंग कालेज के पारितोषिक-वितरणोत्सव पर वाइस चांसलर की हैसियत से जो व्याख्यान दिया था, उसमें उन्होंने अध्यापन-कार्य में सेवा करने के जो अवसर मिलते हैं, उनका अत्यन्त उत्साह के साथ वर्णन किया था। सफल विद्यार्थियों के प्रति वाइस चांसलर ने कहा:—

"तुममें से प्रत्येक व्यक्ति समाज का शिक्षित मनुष्य होगा। अनेक स्थानों में अध्यापक ही समाज में अवकाश वाला मनुष्य है। अध्यापक समाज का नेता है और वह अधिकारियों के सम्मुख समाज की वास्तविक आवश्यकताओं को प्रकट कर सकता है तथा अनेक विषयों में उन्हें सम्मति दे सकता है।"

वास्तव में शिक्षक के लिए समाज-सेवा करने के जो साधन प्राप्य हैं उनकी गणना करना साधारणतः असम्भव है। इनं साधनों के साथ-साथ सेवा करने की इच्छा भी हो तो सोने में सुगन्ध हो जाती है। गावों में अध्यापक ही समाज-सेवा-कार्य के सर्वोत्तम साधन हैं। मिस्टर ब्रेन ने अपने ग्राम-पथ-प्रदर्शकों के लिए अध्यापकों का ही भरोसा किया है। अध्यापक-गण नीचे लिखे सेवा-कार्य सहज ही कर सकते हैं:—

१—स्कूल या कालेज बन्द होने के लगभग दो सप्ताह पहले

से ऐसे साहित्य की प्रदर्शनी करना जिससे कि विद्यार्थियों को उनके सामाजिक-कार्य में निश्चित सहायता मिल सकती हो। ऐसी पुस्तकें लोक-सेवी संस्थाओं से मँगाई जा सकती हैं। उदाहरणार्थ मद्रास ईसाई साहित्य-सभा से सुधार और स्वच्छता सम्बन्धी सस्ती पुस्तकें। ज्वर, प्लेग, मलेरिया, तपेदिक, सहयोग-विभाग इत्यादि पर सरकारी पुस्तकें। ऐसी पुस्तकों को बेचने और बाँटने का काम तो बिना प्रदर्शनी के भी हो सकता है।

२—जिन विषयों के स्वाध्याय करने की आवश्यकता हो उनका साहित्य-सभाओं में प्रवेश कराना, उदाहरणार्थ—६ विद्यार्थियों को आपस में इस बात की होड़ करने के लिए तैयार करना कि गाँव के प्राइमरी स्कूल में दिए जाने लायक दस मिनट का व्याख्यान सब से अच्छा कौन दे सकता है?

३—कभी-कभी एक घण्टा नियत करके क्लास के प्रत्येक विद्यार्थी से स्वर्ण-लेखनी के पत्र लिखाना।

४—ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थियों को यह दिखाना कि स्वास्थ्य-विभाग के कर्मचारी मकानों को किस प्रकार शुद्ध करें।

५—छुट्टियों में विद्यार्थियों को दीन-गृह, अनाथालय, अजायब घर आदि दिखा कर उन्हें इन संस्थाओं की बाबत अच्छी तरह समझाना।

६—स्कूल-कालेज छोड़ते समय विद्यार्थियों से प्रति सप्ताह कुछ समय समाज-सेवा-कार्य में देने का अनुरोध करना।

७—आवश्यक सुधारों पर लोकमत-निर्माण करना।

८—उपयुक्त सामाजिक विषयों पर व्याख्यान कराना, तथा आवश्यक साहित्य-संग्रह करना।

९—देशी भाषाओं में अनुवाद किये जाने लायक पुस्तकों का चुनाव करना।

१०—सेवा-समिति तथा अनाथ-सहायक-समिति की स्थापना करना।

११—विद्यार्थियों की एक टुकड़ी को अस्पताल ले जाकर रोगियों के पत्र लिखाना तथा उन्हें फल-फूल खिलौने आदि दिलवाना। उन्हें आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा सिखाने का प्रबन्ध कराना।

१२—और पशुओं के प्रति होने वाली निष्ठुरता की ओर विद्यार्थियों का ध्यान दिलाना इत्यादि।

अध्यापकों को यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि वे विद्यार्थियों में समाज-सेवा का भाव भर के उनको जितना वास्तविक लाभ पहुँचाते हैं, उतना उनकी धन-सम्बन्धी और शारीरिक उन्नति करने से नहीं पहुँचासकते।

हर्ष की बात है कि देश के महान् व्यक्तियों का ध्यान इस ओर गया है और वे विद्यार्थियों और विश्वविद्यालयों को लोक-सेवा की ओर प्रेरित कर रहे हैं। पन्द्रह नवम्बर १९३२ को बम्बई यूनीवर्सिटी में भाषण देते हुए वहाँ के गवर्नर महोदय ने कहा कि सत्य की खोज और सत्य की शिक्षा यूनीवर्सिटी के प्रधान कार्य हैं। उन्हें खोज और अनुसन्धान में काफी समय देना चाहिए। चार नवम्बर १९३२ को आगरा विश्वविद्यालय के कन्वोकेशन में भाषण देते हुए सूब-ए-हिन्द के तत्कालीन गवर्नर नवाब छतारी ने विद्यार्थियों से कहा कि आपके सामने मातृ-भूमि की सेवा के लिए विस्तृत मैदान पड़ा है। मुझे आशा है है कि आप लोग भारत का भविष्य बनाने में विशेष रूप से भाग लेंगे, और साम्प्रदायिकता के विष को दूर करेंगे। महात्मा गांधी ने पाँच दिन बाद नौ नवम्बर को नागपुर विश्व-विद्यालय यूनियन में भाषण देते हुए विद्यार्थियों से अपील की

कि विद्यार्थियों को हरिजनों की सेवा के कार्य में क्रियात्मक सहायता देनी चाहिए। विद्यार्थियों की योग्यता का अन्दाज मनोहर व्यवहारों से नहीं, उनके द्वारा किये गये क्रियात्मक कार्यों से होगा।

———

संस्थाओं की सेवा

केवल दया अथवा परोपकार के भाव से प्रेरित होकर किसी की सेवा अथवा सहायता कर देना मात्र ही सेवा-धर्म का सर्वस्व नहीं है। यह तो लोग बहुत पहले से ही मानने लग गये थे कि इस प्रकार की सहायता से सहायता देने तथा लेने वालों की, दोनों की, नैतिक हानि होती है और उससे सामाजिक उद्देश्य को धक्का पहुँचता है—गरीबी, आलस्य आदि सामाजिक दुर्गुणों की वृद्धि होती है और मर्ज बढ़ता ही जाता है ज्यों-ज्यों दवा की जाती है।

इस समय संसार के समस्त श्रेष्ठ विचारकों का मत इस बात के पक्ष में है कि मनुष्य-जाति और समस्त संसार की सच्ची सेवा उस समय तक कदापि नहीं हो सकती, जब तक कि सामाजिक समस्याओं का हल सुसंगठित संस्थाओं द्वारा नहीं किया जाता।

भूत-काल में मनुष्य समझते थे कि वे तो प्रारब्ध के वश में हैं। आज वे इस बात पर तुले हुए हैं कि वे अपनी प्रारब्ध को अपने वश में कर लें। पहले सामाजिक व्यवस्था में कोई परिवर्त्तन करने के लिए हम वृद्धि की अज्ञात गति पर निर्भर रहते थे। सुनिश्चित दूरदर्शिता के कार्य

लगभग उपेक्षणीय थे; परन्तु अर्वाचीन मनुष्य बैठा-बैठा इस बात की राह नहीं देखना चाहता कि राम करे यह हो जाय, राम करे वह हो जाय। वह तो भविष्य और वर्तमान दोनों के लिए स्वयं ही कार्य-क्रम बनाना चाहता है।

अर्वाचीन सन्तति का नवीन आदर्श व्यवस्थित समाज है, और व्यवस्थित समाज तभी स्थापित हो सकती है, जब घोर व्यक्तिवाद 'सर्वहिताय' के नवीन आदर्श के सामने सिर झुकावे। इस दृष्टि से सर्वसाधारण की भलाई को वैयक्तिक स्वाधीनता से अधिक महत्व मिलना चाहिए। इस आदर्श का शुभागमन समाज की एकता का पुनर्जन्ममात्र है। घोर व्यक्तिवाद थोड़े दिनों का है, अब उसके दिन लद गये, अब उसे किसी बेहतर बात के लिए—सुविचारित सामाजिक व्यवस्था के लिए जगह खाली कर देनी चाहिए।

इसी विचार के फलस्वरूप समाज-सेवा के कार्य को सभ्य देशों की सरकारों ने स्वयं अपने हाथ में ले लिया है। अब सरकारों का कर्त्तव्य केवल लोगों की रक्षा करना मात्र ही नहीं है समाज की सेवा करना, सर्व साधारण के हित का काम करना भी उसके कर्त्तव्यों की श्रेणी में आगया है। स्वास्थ्य द्वारा सेवा वाले अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि इङ्गलैंड और अमेरिका के विश्व-विद्यालय सेवा-कार्य की शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं। यह बात इस कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वर्तमान-युग सुशिक्षित और सुसङ्गठित सेवा-कार्य का है।

एक उदाहरण लीजिए—सन् १९३३-३४ की सर्दी के दिनों में अमेरिका के तीस लाख परिवारों के लिए रोटी, मक्खन ईंधन घर और कपड़ों का प्रबन्ध करना था। पहले तो इस बात का पता सरकार जैसी विशाल संस्था के अलावा और

कौन लगा सकता था कि कितने परिवार कष्ट पीड़ित हैं ? फिर तीस लाख परिवार यानी डेढ़ करोड़ व्यक्तियों के लिए रोटी, कपड़े, घर, ईंधन वगैरः का प्रबन्ध करना कोई आसान काम नहीं जिसे टटपुँजिया संस्थाएँ कर सकें। इसलिए ह्वाइट हाउस के दक्षिणी लान पर खड़े होकर अमेरिका के वतमान प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट साहब को यह अपील करनी पड़ी कि देशभर की समस्त दातव्य संस्थाओं को सङ्गठित होकर अभाव और दरिद्रता के विरुद्ध युद्ध करना चाहिए ! यह युद्ध भी कोई साधारण युद्ध नहीं है। संसार के सब से अधिक अमीर देश अमेरिका की अमीर सरकार भी यह स्वीकार करती है कि लोक-सेवी और लोक-सेवकों की सहायता के बिना सरकार कुछ नहीं कर सकती। जिस समय प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट ने यह अपील की उस समय न्यूटन डी बेकर द्वारा सङ्गठित मानवी आवश्यकताओं (Human needs) पर नेशनल सिटीजन कमेटी के प्रतिनिधि तथा चौंतीस अन्य सहयोग-संस्थाओं के प्रतिनिधि वहाँ बैठे हुए थे। अमेरिका की सङ्घीय सरकार पर पहले ही से भारी बोझ लदा हुआ है। बेकारों की सहायता के लिए जो खर्च होता है उसमें पिचानवे फीसदी सरकार को करना पड़ता है। सरकार का परम पावन कर्त्तव्य है कि वह नागरिकों को भूखों मरने से बचावे। प्रेसीडेण्ट साहब ने यह भी कहा कि पीड़ित परिवारों को सहायता देने की समस्या स्थानीय समस्या है। जहाँ वे परिवार रहते हैं वहीं की समाज के नागरिकों को, चर्चों को, समाज के धर्मार्दों आदि को, सामाजिक और दातव्य संस्थाओं को उनकी सहायता करनी चाहिए।

इन डेढ़ करोड़ लोगों में क्या अमीर क्या गरीब सभी पेशों के लोग हैं, इनमें से चालीस फीसदी की उम्र सोलह वर्ष से कम है। और इस उम्र में काफी खुराक और नैतिक बन्धन

की आवश्यकता होती है। किसानों में तो हर सात परिवार पीछे एक परिवार सहायता पा रहा है। कुछ जगह तो गाँव के गाँव सदावर्त में खाना खाते हैं। एक दर्जन प्रान्तों में आधे से ज्यादा लोग सहायता माँगते हैं। इसी कारण कुछ रियासतों में सहायता पन्द्रह रुपये महीने से ज्यादा नहीं होती, कुछ में तो पाँच रुपये महीने से भी कम होती है। इस समस्या को हल करने के लिए १५ अक्टूबर १९३२ से १२ नवम्बर १९३२ तक प्रचण्ड प्रचार किया गया। पाठक इस बात का सहज ही में अनुमान कर सकते हैं कि अब समाज-सेवा की समस्याएँ केवल कुछ व्यक्तियों या दातव्य-संस्थाओं के बल-बूते पर नहीं हल की जा सकतीं।

इस प्रकार की सामाजिक बुराइयों का अध्ययन भी इसी विचार से किया जाता है कि उनके हल करने में जितना खर्च होगा, क्या वह उस हानि से ज्यादा है जो इन बुराइयों के रहने से होती है। उदाहरण के लिए अमेरिका के विशेषज्ञों का कहना है कि शहरों में गरीबों को जैसी गन्दी और अस्वस्थ काल कोठरियों में रहना पड़ता है, उससे अमेरिकन राष्ट्र को चालीस अरब रुपये साल तक नुकसान होता है क्योंकि इन्हीं घरों में जुर्मों की तथा नैतिक और मानसिक पतन की उत्पत्ति होती है। ऐसी दशा में यदि कई अरब रुपये साल खर्च करके भी गरीबों के लिए अच्छे, स्वास्थ्यप्रद मकानों का इन्तजाम कर दिया जाय, तो राष्ट्र को भारी आर्थिक लाभ होगा। इसी बात को दृष्टि में रख कर न्यूयार्क अमेरिका में वहाँ के अलस्मिथ नाम के एक प्रतिष्ठित सज्जन ने, जो चार बार अमेरिका की सब से धनी रियासत के गवर्नर रह चुके हैं और दो बार अमेरिका की प्रेसीडेण्ट-शिप के उम्मेदवार हो चुके हैं, गन्दे और अस्वस्थ मकानों को मेटने का बीड़ा उठा लिया।

न्यूयार्क के पूर्वी भाग में "लंग ब्लौक" नामक मुहल्ले के एक ऐसे मकान को स्वयं अपने हाथ से ढाहा। फिर क्या था? गन्दे मकान बात की बात में गिरा दिये गये और उनके स्थान पर 'निकर ब्रोकर' नाम का एक गाँव बसाया गया, जिसमें बगीचों के लिए जगह रक्खी गयी, नये जमाने के सभी आरामों का इन्तजाम है, दुमंजिले, चौमंजिले पर, बात की बात में पहुँचा देने वाले लिफ्ट, मकान को गरम रखने वाले प्रबन्ध, गैस तथा बिजली वगैरः सभी हैं और इनका किराया भी कुल पैंतीस रुपये महीने, अमेरिका को देखते हुए कुछ भी नहीं है। यह तभी सम्भव हो सका जब पुनस्संघटन फाइनैंस कारपोरेशन ने फ्रैंड एफ फ्रैञ्ज कम्पनी को इस तरह के मकान बनाने के लिए ढाई करोड़ का कर्ज दिया। गन्दे मकानों को तोड़ कर सुन्दर सदन बनाने का यह आन्दोलन सर्व साधारण का आन्दोलन है। न्यूयार्क में शुरू होने से पहले यह इङ्गलैंड में, वेल्स, स्काटलैण्ड और आयरलैण्ड, दक्षिणी अमेरिका, बम्बई, जर्मनी, फ्राँस तथा आस्ट्रीया और यूरुप के अन्य देशों में जारी हो चुका था। टर्की में तो कमाल पाशा फर्श से लेकर छत तक नया राष्ट्र बना ही रहा है। ब्रिटिश द्वीप समूह के हर एक शहर से गन्दे घरों को ढहाने के आन्दोलन में भाग लेते हुए प्रिंस आफ वेल्स ने कहा था कि इस गन्दगी को यानी गन्दे घरों को मिटा दो।

इसी तरह अमेरिका की डीलावेर (Delaware) रियासत में वयोवृद्धों की सहायता का सुन्दर प्रबन्ध करने का स्तुत्य उद्योग किया जा रहा है। सोलह सौ वृद्ध और दीन व्यक्तियों को इस योजना के अनुसार सहायता मिल रही है। पहले यहाँ के गरीबों को अपनी दाहिनी भुजा पर पीतल के "पी" के अक्षर लगाने पड़ते थे जैसे यहाँ पुलिस मैन आदि लगाते हैं। पर

अब बलवानों को घर में आराम से रहने की सुविधा है और अपाहिजों को सेवा-सदन (Welfare House) में रक्खा जाता है। यह सुधार अल्फ्रेड आई-डू-पौण्ट नाम के एक सज्जन ने किया है जिन्होंने इस समस्या का विशेष अध्ययन किया। इस समय सेवा-सदन में तीन सौ अड़तीस अपाहिज हैं और सौ उसमें भरती होने के लिए इन्तजार कर रहे हैं। डू पाण्ट का कहना है कि "वृद्धों के प्रति राज्य का उत्तरदायित्व है क्योंकि इन्होंने अपनी युवावस्था में जिस राष्ट्रीय सम्पत्ति की उत्पत्ति में सहायता की, मरते दम तक उसका कुछ हिस्सा पाने का उन्हें पूरा हक है।"

बेकारों को काम देने के लिए ऐसे काम जारी करना जिनसे पब्लिक को, समाज को और राष्ट्र को लाभ हो, समाज-सेवा का एक प्रधान कार्य है। परन्तु इस कार्य को भी सरकार ही कर सकती है। अमेरिका की सरकार ने सन् १९३३-३४ में इस काम के लिए डेढ़ अरब रुपया खर्च करना तय किया है। यह काम हैरी-एल-होपाकिन्स के जिम्मे है। उनके आधीन पिचहत्तर विशेषज्ञ काम करते हैं। उन्होंने सबसे पहला काम यह किया कि इस बात का पता लगाया कि अमेरिका में कितने परिवार सहायता पाते हैं? पता लगाने से मालूम हुआ कि कोई पैंतीस लाख परिवारों को सहायता मिलती है। इस रुपये से उन्होंने बेकारों से बगीचे लगवाये, तैरने के लिए सैकड़ों तालाब बनवाये, बेकारों की व्यावहारिक शिक्षा का प्रबन्ध किया, जङ्गलात के कैम्प बनवाये और पब्लिक वर्क के बहुत-से काम बनवाये। इसी रुपये से उन्होंने हमेशा के लिए मलेरिया को मार भगाने के उद्देश्य से नालियाँ बनवाईं। इसी फण्ड से गाँवों की पाठशालाओं के अध्यापकों को साहयता दी गई कि वे विवश होकर कहीं पाठशाला बन्द न कर दें।

न्यूयार्क की अमेरिकन ऐसोसिएशन और ओल्ड एज सैक्यूरिटी ने दीन-गृहों की पद्धति को बदल कर वृद्धों के लिए पेंशन का प्रबन्ध कराया। इस प्रबन्ध से पाँच बरस पहले अगर, एक तिहत्तर बरस की बुढ़िया जो न्यूयार्क के पूर्वी भाग के एक घर में रहती थी और झाड़ू लगाकर अपना पेट भरती थी, मदद के लिए अर्जी देती, तो पहाड़ी पर दीन-गृह में भेज दी जाती। नये प्रबन्ध के अनुसार उसे खाने, कपड़े और मकान किराये के खर्च के लिए माहवारी पेंशन मिलती है। इस समय बारह हजार व्यक्ति इस प्रकार की पेंशन पा रहे हैं। पचीस रियासतों में यानी आधी से अधिक अमेरिका में वृद्धावस्था की पेंशनों का कानून बन गया है। ये कानून भिखारीपन के भाव को दूर कर देता है। पेंशन पाते हुए बुड्ढे-बुढ़िया मजे से एक ही घर में साथ-साथ रह सकते हैं। उन्हें घर नहीं छोड़ना पड़ता। सम्मान के साथ अपनी गृहस्थी चला सकते हैं। गरीब-गृह की हीनता से बचते हैं। इस काम में सफलता पाकर यह संस्था सामाजिक बीमा के समस्त क्षेत्र में कदम बढ़ाने का संकल्प कर चुकी है। बेकारों, बीमारों और गरीबों का बीमा कराने के लिए यह संस्था उचित कानून बनवावेगी। इब्राहीम एप्स्टीन इस सभा के मंत्री होंगे और संस्था का नया नाम होगा अमेरिकन ऐसोसिएशन फार सोशल सैक्यूरिटी। १६२७ में जब यह संस्था कायम हुई थी, तब सिर्फ चार रियासतों में पेंशन का कानून था, जिससे एक हजार आदमियों को लाभ पहुँचता था। अब पच्चीस रियासतों में एक लाख आदमियों को सहायता मिल रही है। यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि सचाई के साथ उद्योग करने पर एक संस्था किसी सामाजिक समस्या को हल करने में कितनी सफलता प्राप्त कर सकती है।

पाश्चात्य देशों में सङ्गठित कार्य को, संस्थाओं की स्थापना

को, कितना महत्व दिया जाता है इस बात का एक प्रमाण लीजिये। बोस्टन की श्रीमती फ्रांसिसई-क्लार्क ने, जो इस समय तिरासी वर्ष की हैं, यङ्ग पीपिल्स सोसाइटी आफ क्रिश्चियन एण्डीवर नाम की एक संस्था कायम की। जून १९३३ में मिलवाकी नामक स्थान में इस सभा की छत्रच्छाया में संसार भर के युवकों की एक सभा युद्ध का विरोध और शान्ति का प्रचार करने के लिए हुई थी। देश-देश के कई हजार प्रतिनिधियों ने जुलूस निकाला था। इस समय एक सौ पाँच देशों में इस सभा की अस्सी हजार शाखाएँ हैं, जिनके चालीस लाख मेम्बर हैं।

रेड क्रास सोसाइटियाँ भी स्वावलम्बन अथवा जनता के उद्योग का ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित करती हैं। १८७०-७१ के युद्ध में कुछ स्वयंसेवक घायलों की सेवा के कार्य में जुट पड़े थे। उनके आदर्श ने इतनी स्फूर्ति उत्पन्न की कि सैकड़ों-सहस्रों स्त्री-पुरुष इस सेवा-कार्य के लिए प्रस्तुत हो गये। हजारों अस्पतालों तथा हजारों ही चलते-फिरते चिकित्सालयों का सङ्गठन किया गया। घायलों के लिए भोजन-सामग्री, कपड़ा और चलते-फिरते चिकित्सालय ले जाने के लिए रेलगाड़ियाँ छोड़ी गईं। इङ्गलैंड की रेडक्रास कमेटी ने वस्त्र, भोजन, औजारों आदि से युद्ध-पीड़ितों की भरपूर सहायता की। युद्ध से उजड़े प्रदेशों में खेती के लिये बीज, हल खींचने के लिए पशु, स्टीम के हल तथा उन्हें चलाने के लिए आदमी भेजे गये। गस्टेन मायनियर लिखित "Lacroix Roug" नामक पुस्तक में इस सुन्दर सेवा-कार्य का आश्चर्यजनक वर्णन पढ़ने को मिलता है। इस समय ऐसा कोई देश नहीं जिसमें रेडक्रास सोसाइटियाँ न हों। हिन्दुस्तान की रेडक्रास सोसाइटी का प्रधान कार्यालय दिल्ली में है। १९३४ के प्रारम्भ में इस सोसाइटी ने रेडक्रास सप्ताह

मनाया और उस सप्ताह के लिए सर्वोत्तम पोस्टर बनाने वाले के लिए डेढ़ सौ रुपए का इनाम दिया।

बालचर संस्था भी इसी प्रकार की एक संस्था है। ऐसा कोई देश नहीं जिसमें इस संस्था का सुप्रचलित संगठन न हो। सन् १६३३ में संसार भर के बालचरों की चौथी बैठक हुई थी, हंगरी देश के गौडिया नामक स्थान में इस उत्सव के अवसर पर सैंतीस देशों के तीस हजार बालचर इकट्ठे हुए थे। पच्चीस वर्ष पहले प्रधान बालचर लार्ड रौबर्ट बैडिन पावल ने इस संस्था की बात सोची थी। आज यह संस्था इतनी लोक-प्रिय हो गई है कि इस उत्सव के अवसर पर अमेरिका के प्रेसीडेण्ट रूजवैल्ट तथा प्रिंस आफ वेल्स ने उसके लिए शुभ कामना और सफलता के तार भेजे। सन् १६३१ के अन्त में पञ्जाब के चालीस हजार बालचरों ने जुलूस निकाल कर सप्ताह-भर, गानों, नारों और परचों द्वारा मुसाफिरों के लिए "बारों को चलो" "सब से पहले अपनी रक्षा का ध्यान रक्खो" आदि का प्रचार किया। इसी साल के अन्त में इलाहाबाद की सेवा-समिति के बालचरों का मेला हुआ।

जिस प्रकार भगवान को भक्तों के भक्त भक्तों से भी अधिक प्यारे होते हैं; उसी प्रकार लोक-सेवी संस्थाओं की सेवा का कार्य स्वतन्त्र सेवा-कार्य से कहीं अधिक उपयोगी और लाभप्रद होता है। और प्रत्येक लोक-सेवी इस कार्य को सहज ही में कर सकता है। अपने देश में साधारणतः अनेक निजी और सार्वजनिक दातव्य-संस्थाओं का प्रबन्ध अवैतनिक मन्त्री करते हैं। स्वभावतः ये लोग इस काम के लिए उतना समय नहीं दे सकते, जितना देना चाहिए अथवा जितना वे स्वयं देना चाहते हैं। लोक-सेवी उनका हाथ बँटा कर उपयोगी लोक-सेवा कर सकते हैं और स्वयं लोक-सेवा-कार्य की व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त कर

सकते हैं। लोक-सेवी विद्यार्थी म्यूनिसिपैलिटी के गरीबखानों में जाकर वहाँ के निवासियों को प्रसन्नता प्रदान कर सकते हैं, इस बात की देख-भाल कर सकते हैं कि नौकर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं या नहीं, और भोजन की नियत मात्रा गरीबों को देते हैं या नहीं? इसी प्रकार अनाथालय के अनाथों को उपयोगी व्यवसाय सिखाते समय वे जो मोजे, कमीज, कपड़े इत्यादि बनावें, उन्हें बेच कर अच्छी वैयक्तिक लोक-सेवा कर सकते हैं। गायकों का छोटा-सा दल अनाथालयों या औषधालयों में जाकर वहाँ के निवासियों को गाना सुना कर उनकी आत्मा को आह्लादित कर सकता है। सङ्गीत की महिमा सुप्रसिद्ध है। उसका प्रभाव बड़ा हृदयग्राही होता है। स्वाध्याय मण्डल ऐसे लेख, ऐसी कविताएँ और प्रहसनादि तैयार करवा सकते हैं जो धोबी-पाड़ों, मेहतरों के मुहल्लों तथा दातव्य संस्थाओं के निवासियों को प्रसन्न, उन्नत और आनन्दित कर सकें। किसी स्कूल अथवा अनाथालय में पुस्तकालय न हो, तो उसके लिए नागरिकों से पुस्तकें इकट्ठी कर के पुस्तकालय खोल देना परमोपयोगी सेवा है।

किसी संस्था या सेवा-कार्य के लिए रुपया इकट्ठा करने का एक बहुत ही मनोरञ्जक ढङ्ग यह है कि किसी क्लब या समूह के प्रत्येक सदस्य से यह प्रतिज्ञा कराई जाय कि वे अपने ही परिश्रम से एक रुपया कमावेंगे। नियत समय के पश्चात् इस सभा की एक बैठक करो। उस सभा में प्रत्येक सदस्य अपना-अपना रुपया देते हुए यह बताता जाय कि उसने कैसे रुपया कमाया? यह "अनुभव-सभा" बहुत ही शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक सिद्ध हो सकती है!

शारीरिक परिश्रम द्वारा भी सेवा की ओर की जा सकती है। सी० ई० एल० एम० एस० नाम की संस्था ने एक औष-

धालय बनवाते हुए विद्यार्थियों से सहायता माँगी क्योंकि मजूरों ने उन्हें बहुत तङ्ग कर रक्खा था। तुरन्त चार सौ स्वयं सेवक तैयार हो गये। उनका काम यह था कि दो फर्लाङ्ग दूर पोखर से ईंट-पत्थर ढो-ढोकर लावें। स्कूल के समय के बाद विद्यार्थी दो मील चल कर औषधालय-भवन आते थे और वहाँ से पोखर तक दो फर्लाङ्ग की कतार बाँध कर खड़े हो जाते तथा पोखर से ईंटें पहाड़ की चोटी पर पहुँचाते जाते, ठीक उसी तरह जिस तरह आग बुझाते समय पानी की डोलची डाली जाती है। नागरिकों के झुण्ड-के-झुण्ड इस दृश्य को देखने के लिए आते थे।

सारांश यह कि सेवा-भाव-सम्पन्न कोई भी युवक यदि वास्तव में सेवा करने के इच्छा रखता है, तो उसे अधिक प्रतीक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। उसे चाहिये कि वह अपने गाँव या नगर की किसी भी सार्वजनिक संस्था के मन्त्री के पास जाकर सहायता देने की इच्छा प्रकट करे, तो उसके लिए सेवा और अनुभव-प्राप्ति का द्वार खुल जायगा।

लोक-हित अथवा गरीबों की भलाई के लिए स्वाध्याय और सङ्गठित सदुद्योग भी तभी हो सकता है, जब लोक-सेवी व्यक्ति उपर्युक्त दोनों बातों के महत्व को अनुभव करके स्वाध्याय तथा संस्थाओं की सेवा करने की ओर झुकें। उदाहरण के लिए सामाजिक बीमे के प्रश्न को ही ले लीजिए। अब लोगों ने इस बात को भली भाँति मान लिया है कि गरीब मजदूरों के गरीबी के दुःख दातव्य संस्थाओं अथवा दीन-गृहों से नहीं दूर हो सकते, उन्हें दूर करने के लिए सामाजिक बीमा, बीमारी, बेकारी, गरीबी, दुर्घटना, बुढ़ापे वगैरः का बीमा कहीं अधिक उपयोगी और कारगर उपाय हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर कार्यालय प्रति साल एक ईयर बुक (वार्षिक-कोष) निकालता है। सन् १६३२ का जो वार्षिक-कोष उसने प्रकाशित किया है, उसके

तीसरे अध्याय में उसका वर्णन किया गया है कि सन् १६३२ में संसार में सामाजिक बीमे की कितनी उन्नति हुई। इस वर्णन में जापान से लेकर अर्जेण्टीना और फैसिस्ट इटली से लेकर कम्यूनिस्ट रूस तक सभी प्रकार के देशों का उल्लेख है। परन्तु इन सभी देशों में दो बातें एक-सी सामान्य पाई जाती हैं। एक तो यह कि सभी देशों में अब लोगों का ध्यान गरीब मजदूरों की भलाई की ओर गया है और दूसरे यह कि सब लोग इस बात को मानते जाते हैं कि गरीब मजदूर की तकलीफों को दूर करने का सर्वोत्तम उपाय सामाजिक बीमा है। भिन्न-भिन्न देशों में जो राष्ट्रीय सामाजिक बीमा-सम्बन्धी कानून बने हैं, उनमें यद्यपि पृथक-पृथक परिस्थितियों से उत्पन्न कुछ-न-कुछ भिन्नता अवश्य है; परन्तु उसके व्यापक अङ्गों में जो समानता है उस पर आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता। इससे प्राकृतिक परिणाम यह निकलता है कि जहाँ तक सामाजिक बीमे के आधारभूत सिद्धान्तों से सम्बन्ध है, वहाँ तक भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में बहुत कुछ मतैक्य है और यह बात इस बात का प्रमाण है कि अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-कार्यालय के सदुद्योग-स्वरूप सामाजिक बीमा के सम्बन्ध में संसारव्यापी लोकमत का धीरे-धीरे विकास हुआ है। एक संस्था के सदुद्योग से गरीबी के कष्टों को कम करने के एक कारगर उपाय के सम्बन्ध में संसार भर के लोगों का एक मत हो गया है।

सामाजिक बीमे की भिन्न-भिन्न योजनाओं में से राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा, बेकारी का बीमा, और कार्यकर्त्ताओं की क्षति-पूर्ति बीमा-सम्बन्धी योजनाएँ सब से अधिक उपयोगी और लोक-प्रिय साबित हुई हैं। जब मजदूर लोग बीमारी की वजह से काम पर नहीं जा सकते, तब उनके इलाज और खर्च का प्रबन्ध राष्ट्रीय स्वास्थ्य-बीमा द्वारा होता है। जब मजदूर लोगों

को कोई काम नहीं मिलता, वे बेकार बैठे रहते हैं तब उन्हें बेकारी के बीमे की तरफ से खाने-पीने का खर्च मिलता है। मिलों और कारखानों में काम करते हुए जब मजदूरों के चोट लग जाती है या उनका अङ्ग-भङ्ग हो जाता है अथवा उन्हें कोई ऐसी बीमारी हो जाती है जो वहाँ काम करने की वजह से ही हुई हो, तो उन्हें बीमा की तरफ से हरजाना मिलता है।

कितने परिताप की बात है कि हमारे देश में अभी सामाजिक बीमा प्रचलित नहीं हुआ। कोई भी लोक-सेवी सामाजिक बीमा की योजनाओं का अध्ययन करके और देश की, देश कालावस्था का अनुसन्धान करके, स्वाध्याय द्वारा, इस सर्वोपयोगी समस्या का विशेषज्ञ होकर ऐसी संस्था की स्थापना कर सकता है जो इस प्रश्न को अपने हाथ में लेकर इस सम्बन्ध में आदर्श उपस्थित करे, लोकमत निर्माण करे और सरकार को इस बात के लिए तैयार करे कि वह राष्ट्रीय तथा सामाजिक बीमा सम्बन्धी योजनाओं और कानूनों द्वारा गरीबों के कष्ट कम करने के इस कारगर उपाय से काम लेना आरम्भ करे।

लोक-सेवी संस्थाओं को अपना जीवन-दान देकर लोक-सेवक समाज की अनुपम सेवा कर सकते हैं। माननीय श्रीनिवास शास्त्री जैसे कार्यकर्त्ता जो महामति गोखले की भारत-सेवक-समिति में सौ रुपए मासिक पर काम करते थे, सहज ही में सरकारी नौकरी द्वारा पाँच हजार मासिक कमा सकते थे। यह उनन्चास सौ प्रति मास का दान, उनंचास सौ प्रति मास का ही दान नहीं है, उससे कहीं अधिक मूल्यवान है! यही बात लाला लाजपतराय के लोक-सेवक-मण्डल में काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टण्डन जिन्हें मण्डल के नियमानुसार सौ रुपये मासिक से अधिक नहीं मिल सकते, सहज ही में हजार-दो हजार

मासिक कमा सकते थे। इसलिए देश को सब से बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि लोक-सेवा-कार्य के लिए जीवन-दान करने वाले कार्य-कर्त्ता आगे आवें। परन्तु यह भी तभी हो सकता है, जब ऐसी संस्थाएँ हों जिनमें ऐसे स्वाभिमानी और स्वार्थ-त्यागी व्यक्ति काम कर सकें। इसके लिए यह आवश्यक है कि लोक-सेवी व्यक्ति इस सम्बन्ध में लोक-मत का निर्माण करें। इस प्रकार जीवन-दान करके, जीवन-निर्वाह मात्र के लिए लेकर अपना दिल, दिमाग़ और शरीर लोक-सेवा में लगा देना आदर और सम्मान की, ऊंचे आदर्श और स्वार्थ-त्याग की बात मानी जाय। इस प्रकार काम करने वाले कार्य-कर्त्ताओं का समुचित सम्मान हो और लोग ऐसी संस्थाओं की स्थापना करना अथवा उनके लिए दान देना सर्वोत्तम दान समझें।

आगरे की नागरी प्रचारिणी सभा की लगातार और अनवरत सेवा करके उसके मंत्री श्री महेन्द्र ने वहां की समाज में जो स्थान प्राप्त किया है, वह लोक-सेवकों के लिये काफी उत्साहजनक होना चाहिए। अधिकतर आपके ही उद्योग से इसके आज कई सौ सभासद हैं। पुस्तकालय में कई हजार पुस्तकें हैं, जिनसे बहुत लाभ उठाया जाता है। एक साहित्य विद्यालय चल रहा है जिसमें हिन्दी की ऊँची-से-ऊँची शिक्षा दी जाती है। खोज का काम भी होता है और समय-समय पर व्याख्यानों तथा अन्य उत्सवों का जो आयोजन किया जाता है, उसकी बड़ी चर्चा रहती है।

दान के सम्बन्ध में अर्वाचीन और वैज्ञानिक तथा विवेक-सम्मत भावों का प्रचार करने वाली किसी संस्था की सेवा करना प्रारम्भ कर दीजिए और यदि आपके गाँव, कस्बे, जिले अथवा शहर में इस प्रकार की कोई संस्था न हो, तो उसे स्वयं सङ्गठित तथा स्थापित कीजिये। यह सभा ऐसे प्रश्नों का अध्ययन करे,

जैसे—सुपात्र-कुपात्र का विचार किये बिना दान देने से व्यक्ति और समाज की क्या-क्या हानि हो सकती है? सच्चे दान का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह व्यक्तियों के नैतिक चरित्र, स्वाभिमान और उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुए उन्हें उनकी मुसीबत से पार पाने में मदद दे। दस मनुष्य मुसीबत में पड़े हुए हों और हम उनमें से केवल एक को दान दें, तो हमारा दान देना क्यों निरर्थक है। इस प्रश्न में दान की समस्या का सारा रहस्य छिपा हुआ है। आपत्ति-ग्रस्त मनुष्यों को रुपये की सहायता देने से बहुधा जितनी हानि होती है, उतना लाभ नहीं होता। धनाभाव और दुर्भाग्य-जनित आपत्ति की समस्या केवल सहायता की सङ्गठित प्रणाली से ही हल हो सकती है। व्यक्तिगत दान से रुपये-पैसे, नाज-कपड़े इत्यादि बाँटने से नहीं।

पाश्चात्य देशों में अब सहायता की सङ्गठित प्रणाली का ही प्रचार है। उदाहरणार्थ अभी हाल ही में मिस्टर हौरेस एच-सैखैम ने, जो अमेरिका के डिट्रौइट नगर में एटार्नी थे, दस करोड़ रुपये यानी तीन करोड़ डालर का दान किया है। इस दान से सुपात्र विद्यार्थियों की सहायता की जायगी। नागरिक, सामाजिक, साधारण और सार्वजनिक लोक-हित के काम किये जायँगे। गाँवों और शहरों में गरीबों के रहने के मकानों की दशा सुधारी जायगी। वृद्धों, बीमारों और असहायों की सेवा-शुश्रूषा तथा सहायता की जायगी। सार्वजनिक संस्थाओं और पवित्र विनोद, अध्ययन-अनुसन्धान और पुस्तक-प्रकाशन आदि का भी प्रबन्ध किया जायगा। अमेरिका में सन् १९३३ के पहले छः महीने में जितना दान दिया गया उसका सैंतालीस फीसदी यानी आधे के लगभग सहायता की सङ्गठित प्रणाली द्वारा खर्च किया गया। जो अधिकतर शिक्षा-प्रचार में पीड़ितों की सङ्गठित सहायता में, स्वास्थ्य-वृद्धि के कामों में और ललित-

कलाओं तथा खेल-कूद आदि का प्रबन्ध करने में लगाया गया।

हर्ष की बात है कि हमारे देश में भी सहायता की सङ्गठित प्रणाली का श्री गणेश हो गया है।

रामकृष्ण मिशन की कानपुर की शाखा ने अभी हाल में सन् १९३३ में, दुखिया-सेवा-सदन की स्थापना की है। श्री श्यामविहारी वकील ने इस कार्य के लिए अपना भवन दे दिया है, जिसमें बेकारों के लिए रहने व बीमारों के लिए अस्पताल का प्रबन्ध है। अस्पताल में मरीजों के लिए पच्चीस चारपाइयाँ हैं। वैसे सैकड़ों को मुफ्त दवा बाँटी जाती है, खाना खिलाया जाता है और ठहराया जाता है। भवन के एक हिस्से में गरीबों और बेकारों के लिए औद्योगिक भवन है। जिसमें उन्हें उपयोगी उद्योग-धन्धे सिखाए जाते हैं। इसमें अन्धों का मदरसा है। औद्योगिक-भवन में कई करघे हैं। दरी, कालीन, तौलिया आदि बुनना सिखाया जाता है। इनकी आमदनी कार्यकर्त्ताओं को बाँट दी जाती है। श्री रामकृष्ण मिशन देश भर में अनेक स्थानों पर इसी प्रकार सेवा का स्तुत्य तथा सराहनीय कार्य कर रही है। इस मिशन की काशी की शाखा ने सन् १९३२-३३ में अपने अस्पताल में सात सौ सात रोगियों का इलाज किया, जिनमें एक सौ छब्बीस स्वस्थ हो गये। चालीस हजार को दवा बाँटी। असहाय दीन-दुखियों को अन्य प्रकार से भी मदद की गई। इस वर्ष छियासठ हजार से ऊपर आमदनी और सत्तावन हजार रुपये के लगभग खर्च हुआ।

व्यक्तियों के उद्योगों के उदाहरण

एक विद्यार्थी जिस नगर में रहता था, वह शिक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ था। छत्तीस हजार की आबादी में से केवल चार व्यक्ति कालेज में पढ़ते थे। इस विद्यार्थी ने लोगों को कालेज में

अपने लड़के पढ़ने भेजने को राजी करने के उद्देश्य से एक समिति, खोली जिसमें सब जाति और मतों के लोग योग दे सकते थे। इस क्लब का पहला उद्देश शिक्षा प्रचार करना और व्याख्यानों द्वारा लोगों को शिक्षा प्रचार करने के लिए समझाना-बुझाना था। समिति ने एक कमरा किराये पर लेकर तथा हिन्दी-उर्दू और अंग्रेजी के तीन समाचार पत्र मँगवा कर वाचनालय खोल दिया तथा लोगों को वाचनालय में पढ़ने आने के लिए राजी किया। समिति की बैठक प्रति सप्ताह होती थी और उसमें शिक्षा-सम्बन्धी सभी विषयों पर व्याख्यान होते थे। एक विद्यार्थी ने वीर कार्यकारिणी सभा स्थापित की जिसका उद्देश्य स्त्रियों की रक्षा तथा उनकी उन्नति करना था। वीरों ने प्रतिज्ञा की कि वे शक्ति भर चौदह वर्ष से कम उम्र की लड़की का विवाह नहीं होने देंगे। इस प्रकार की संस्थाएँ इन दिनों बाल-विवाह-विरोधी कानून–शारदा कानून–से बहुत लाभ उठा सकेंगे।

अनाथों और भूले-भटके हुओं को मदद के लिये एक सभा कायम की गई, जिनमें समस्त विद्यार्थी और अध्यापक चन्दा देते हैं। इस सभा के द्वारा पचास निर्धन विद्यार्थियों को स्कूल की फीस दी जाती है, बीस को कपड़े दिये जाते हैं तथा उनके वास्तविक मुसीबत में उनकी परवरिश की जाती है। यह सभा छात्रों को, सुपात्रों को उचित ढंग पर दान देना, सार्वजनिक रुपये की बचत करके उसे सर्वोत्तम काम में लगाना और आपत्ति-ग्रस्त लोगों के साथ सहानुभूति करना सिखाती है तथा उनके हृदय को विशाल बनाती है।

बम्बई का सेवा-सदन भी व्यक्तियों के उद्योग का अति उत्तम उदाहरण है। यह सभा श्रीयुत बी० एम० मलाबारी तथा उनके मित्रों ने भारतीय स्त्रियों के हित के लिए स्थापित की थी। यह सेवा-सदन सेवा-गृह है, जिसमें मतमतान्तर का कोई भेद नहीं

और जिसका धर्म सेवा करना है। पहले पहल इसमें स्त्रियों का धाय, शिक्षिका और प्रबन्धिका का काम सिखाना तथा सेवा-कार्य के केन्द्र के लिए एक सदन या आश्रम स्थापित करना था। इस सदन ने थोड़े ही समय में जो कार्य कर दिखाया उसकी सभी प्रशंसा करते हैं।

लन्दन में एक वैयक्तिक सेवा-सम्मेलन है जिसमें पाँच सौ से ऊपर कार्यकर्त्ता थे। इन कार्यकर्त्ताओं ने यह प्रतिज्ञा की कि वे कम-से कम एक घण्टा प्रति सप्ताह किसी विपत्तिग्रस्त व्यक्ति या निर्धन कुटुम्ब से मित्रता प्राप्त करने में लगावेंगे। सभा का मुख्य उद्देश्य मनसा, वाचा, कर्मणा, व्यक्तिगत सेवा करना है।

दिल्ली क्लॉथ मिल्स लिमिटेड के लाला मदनमोहनलाल ने फरवरी १६२४ में पचीस हजार का दान देकर स्त्रियों के लिए एक औद्योगिक पाठशाला खोली है जिसमें स्त्रियों को बुनाई, सिलाई तथा जरी का काम और स्त्रियोचित अन्य काम सिखाये जायँगे। रुपये की ब्याज से संस्था चलेगी। धनी परिवारों की लड़कियों से फीस ली जायगी। गरीब स्त्रियों को मुफ्त शिक्षा दी जायगी। पर्दानशीन स्त्रियाँ अपने घरों से जो चीज बना कर बेचना चाहेंगीं, उन्हें यह पाठशाला लेकर बेच दिया करेगी। संस्था सफल हुई, तो लालाजी दान की मात्रा एक लाख तक बढ़ा देंगे। श्रीमती सुशीला शाममोहन इस पाठशाला की मुख्याध्यापिका नियत हुई हैं।

आगरे में सेठ मटरूमल बैनाड़ा ने आँखों का एक अस्पताल खोला है, जिसका कई सौ रुपये महीने का पूरा खर्च वे स्वयं देते हैं। इस औषधालय से सैकड़ों आदमी लाभ उठा रहे हैं। यहीं पर पिछले दिनों कई ग्रामों में भयंकर आग लगी जिनसे पचासों घर-बार नष्ट होगये। इन परिवारों की सहायता के लिए श्री महेन्द्र आदि व्यक्तियों ने चन्दा इकट्ठा करके उनके घर और

छप्पर बनवाने आदि में मदद दो। सन् १९२४ में जो भयंकर बाढ़ आई थी, उसमें पीड़ितों की सहायता करने, उन्हें भोजन-वस्त्र देने तथा ठिकानों पर पहुँचाने के काम में आगरे के कुँ० गणेशसिंह भदौरिया, बा० श्रीचन्द्र दौनेरिया, पं० कालीचरन तिवारी आदि लोक-सेवकों ने प्रशंसनीय कार्य किया।

जनवरी १९३४ में दिल्ली में उत्तरी भारत में अन्धों का संघ स्थापित हुआ, जिसका उद्देश अन्धेपन को रोकना और इलाज करना है। आस-पास के तथा अन्य स्थानों के अन्धों को बुला कर उनकी आँखों का आपरेशन कराया जाना तय हुआ।

हापड़ में हिन्दू-कला-भवन स्थापित हुआ है जिसमें सब जाति के हिन्दुओं को औद्योगिक शिक्षा दी जायगी। दर्जी क्लास खुल गया है।

इन उद्योगों से लोक-सेवी ऐसी तथा इस प्रकार की संस्थाएँ स्थापित करने अथवा पूर्व स्थापित संस्थाओं की सेवा करने के लिए प्रेरित हो सकते हैं।

———